

KÂVYAMÂLÂ 88.

—>o<—
THE
ANYOKT-MUKTÂVALÎ
OF
HANSAVIJAYA GANI.

—>o<—
EDITED BY

PAṆDITA KEDÂRNÂTHA

SON OF

MAHÂMAHOPÂDHYÂYA PAṆDITA DURGÂPRASÂD

AND

WÂSUDEVA LAXMAṆ SHÂSTRÎ PAṆASHÎKAR.

—>o<—
PRINTED AND PUBLISHED

BY

TUKÂRÂM JÂVAJÎ,

PROPRIETOR OF JÂVAJÎ DÂDÂJÎ'S "NIRṆAYA-SÂGARA" PRESS.

BOMBAY.

—
1907.
—

Price 1 Rupee.

SGDF
Sri Gangeswari Digital Foundation

(*Registered according to Act XXV of 1867.*)

[All rights reserved by the publisher.]

1907.

SGDF

Digitized by (Sri) Gargeshwari Digital Foundation

काव्यमाला ८८.

हंसविजयगणिसमुच्चिता

अन्योक्तिमुक्तावली ।

जयपुरमहाराजाश्रितेन महामहोपाध्यायपण्डितश्रीदुर्गाप्रसाद-
तनयेन पण्डितकेदारनाथेन, मुम्बापुरवासिना पणशी-
करोपाह्वलक्ष्मणतनुजनुषा वासुदेवशर्मणा च
संशोधिता ।

सा च

मुम्बय्यां निर्णयसागराख्ययन्त्रालये तदधिपतिना मुद्राक्षरैरङ्कयित्वा
प्राकाश्यं नीता ।

१९०७

(अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणादिविषये सर्वथा निर्णयसागरमुद्रायन्त्रालयाधिपते-
रेवाधिकारः ।)

मूल्यमेको रूप्यकः ।

SGDF

Shri Gangeshwari Digital Foundation

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भारतीय संस्कृत विश्वविद्यालय

१. शिक्षातन्त्रसूची

भारतीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली-११००६८

शिक्षातन्त्रसूची, १९८०-८१

१. शिक्षातन्त्रसूची, १९८०-८१

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

भारतीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली-११००६८

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

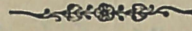
भारतीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली-११००६८

१. शिक्षातन्त्रसूची

१. शिक्षातन्त्रसूची

SGDF

विषयानुक्रमः ।



| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------|---------|------------------------------|---------|
| प्रथमः परिच्छेदः । | | | |
| १ मङ्गलाचरणमारम्भप्रस्तावना च | १ | करभस्य | ” |
| २ मूलद्वारवृत्तानि | ३ | वृषभस्य | ४४ |
| ३ प्रतिद्वारवृत्तानि | ४ | भषणस्य | ४६ |
| ४ देवाधिकारपद्धतौ | ” | सर्पस्य | ” |
| सूर्यस्य | ” | शेषनागस्य | ४७ |
| सामान्यचन्द्रस्य | ७ | ७ जलचराधिकारपद्धतौ | ” |
| शुक्लप्रतिपच्चन्द्रस्य | ११ | मत्स्यस्य | ” |
| द्वितीयाचन्द्रस्य | ” | दर्दुरस्य | ” |
| पूर्णाचन्द्रस्य | ” | तृतीयः परिच्छेदः । | |
| शनेः | ” | चित्रप्रक्रमः | ४९ |
| ग्रहगणस्य | ” | ८ प्रतिद्वारवृत्तानि | ५४ |
| ईश्वरस्य | १३ | ९ खचराधिकारपद्धतौ | ” |
| लक्ष्म्याः | ” | हंसस्य | ” |
| सामान्यमेघस्य | १७ | शुकस्य | ५९ |
| अकालजलदस्य | २१ | बकस्य | ६१ |
| प्रकाशवर्षस्य | २३ | खज्जनस्य | ६२ |
| अगस्त्यस्य | २४ | कोकिलस्य | ” |
| ध्रुवस्य | ” | काकस्य | ६६ |
| कल्पवृक्षस्य | ” | कुक्कुटस्य | ६८ |
| पारिजातस्य | २५ | मयूरस्य | ६९ |
| द्वितीयः परिच्छेदः । | | चक्रवाकस्य | ७० |
| ५ प्रतिद्वारवृत्तानि | ” | चातकस्य | ७२ |
| ६ स्थलचराधिकारपद्धतौ | २६ | चकोरस्य | ७५ |
| सिंहस्य | ” | सारसस्य | ” |
| गजस्य | ३१ | टिट्ठिभस्य | ” |
| हरिणस्य | ३८ | मयूरपिच्छस्य | ” |
| शशस्य | ४१ | चतुर्थः परिच्छेदः । | |
| जम्बुकस्य | ” | समवसरणबन्धचित्रम् | ७६ |
| | | १० प्रतिद्वारवृत्तानि | ” |

| विषयः | पृष्ठं. |
|----------------------------|---------|
| विकलेन्द्रियाधिकारपद्धतौ.. | ॥ |
| शङ्खस्य | ॥ |
| मत्कुणस्य | ७८ |
| खद्योतस्य | ॥ |
| भ्रमरस्य | ६९ |

पञ्चमः परिच्छेदः ।

| | |
|------------------------------|----|
| ११ प्रतिद्वारवृत्तानि | ८६ |
| १२ पृथ्वीकायपद्धतौ | ॥ |
| सामान्यपर्वतस्य | ॥ |
| मेरोः | ॥ |
| हिमालयस्य | ८७ |
| मैनाकस्य | ॥ |
| पूर्वाचलस्य | ॥ |
| विन्ध्यस्य | ॥ |
| मलयाचलस्य | ८८ |
| रोहणाचलस्य | ॥ |
| रत्नानाम् | ॥ |
| मौक्तिकस्य | ९१ |
| सुवर्णस्य | ९२ |
| पित्तलस्य | ॥ |

षष्ठः परिच्छेदः ।

| | |
|-------------------------------|-----|
| १३ प्रतिद्वारवृत्तानि | ९३ |
| १४ कायाधिकारपद्धतौ | ॥ |
| जलस्य | ९४ |
| समुद्रस्य | ॥ |
| क्षीरसमुद्रस्य | १०१ |
| सामान्यनदीनाम् | ॥ |
| गङ्गायाः | १०२ |
| तटाकस्य | ॥ |
| पद्मसरसः | १०३ |
| कूपस्य | १०४ |
| १५ तेजःकायाधिकारपद्धतौ | ॥ |
| अग्नेः | ॥ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------|---------|
| प्रदीपस्य | १०५ |
| दावानलस्य | ॥ |
| धूमस्य | १०६ |
| १६ वायुकायाधिकारपद्धतौ | ॥ |
| वायोः | ॥ |

सप्तमः परिच्छेदः ।

| | |
|----------------------------------|-----|
| १७ प्रतिद्वारवृत्तानि | १०८ |
| १८ वनस्पतिकायाधिकारपद्धतौ | १०९ |
| सामान्यवृक्षस्य | ॥ |
| किङ्केलिवृक्षस्य | ११४ |
| चन्दनस्य | ११५ |
| चम्पकस्य | ११७ |
| सहकारस्य | ११८ |
| अगुरोः | १२२ |
| मल्लिकायाः | १२३ |
| पाटलायाः | ॥ |
| पङ्कजस्य | ॥ |
| नलिन्याः | १२४ |
| मालत्याः | १२५ |
| वालकस्य | १२६ |
| केतक्याः | ॥ |
| घनसस्य | १२७ |
| कदल्याः | ॥ |
| द्राक्षायाः | ॥ |
| दाडिमस्य | १२८ |
| नालिकेरस्य | ॥ |
| तालस्य | ॥ |
| भूर्जस्य | १२९ |
| अश्वत्थस्य | ॥ |
| न्यग्रोधस्य | ॥ |
| मधूकस्य | १३० |
| इक्षोः | ॥ |
| पीलोः | १३१ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------|------------|
| बदर्याः | |
| शाल्मलेः | |
| निम्बस्य | १३२ |
| खदिरस्य | १३३ |
| वंशस्य | |
| वेतसस्य | |
| किंशुकस्य | |
| पलाशस्य | १३४ |
| बन्बूलस्य | |
| शाखोटस्य | १३५ |
| चिञ्चिण्याः | |
| करीरस्य | |
| कण्टकस्य | १३६ |
| कन्थेर्याः | |
| विल्वस्य | |
| अर्कस्य | |
| यवासस्य | १३७ |
| यवस्य | |
| शालेः | |
| तिलस्य | |

| विषयः | पृष्ठं. |
|---------------|------------|
| मञ्जिष्ठायाः | |
| विजयायाः | १३८ |
| तमाकोः | |
| लशुनस्य | |
| कर्पासस्य | |
| अरिष्टस्य | |
| कण्टकारिकायाः | १३९ |
| शणस्य | |
| धतूरस्य | |
| तृणस्य | |
| ताम्बूलस्य | १४० |
| तुम्ब्याः | |
| कारेल्याः | १४१ |
| कोहलिन्याः | |

अष्टमः परिच्छेदः

| | |
|-----------------------|------------|
| १९ प्रतिद्वारवृत्तानि | १४२ |
| २० संकीर्णान्योक्तयः | १४३ |
| ग्रन्थप्रशस्तिः | १५३ |

SGDF

अन्योक्तिमुक्तावल्याः शुद्धिपत्रम् ।

—००५००—

| पृ. | प. | शुद्धः पाठः । | पृ. | प. | शुद्धः पाठः । |
|-----|----|--|-----|----|---------------------------|
| ३ | ६ | जिह्वा पटुः | ३९ | २० | पर्णे, यान्ति |
| „ | „ | गुणागुणानाम् । | ४७ | १५ | चञ्चलतामिमाम् |
| „ | ७ | पिशुनयाचनया । | ४८ | १४ | शपति—च्युतसंस्कृति । |
| ४ | ११ | चन्द्रमउक्तयः । | ५८ | ८ | संप्रहरिष्यते |
| ४ | १५ | अकालजलदोक्तयः । | ५८ | १५ | केलिस्खल— |
| ४ | २३ | शशी | ५८ | १८ | आकाङ्क्षते |
| १० | १७ | कान्ता कैरविणी | ६६ | ५ | कोकिलैरिह |
| १४ | ६ | भविताभूवन् | ७१ | १५ | श्वसिति |
| १४ | ८ | संयुजिरे=च्युतसंस्कृति ॥ | ७४ | १२ | विश्रम्यताम् |
| १४ | २० | विरज्यसि | ७५ | ५ | मनयोः |
| १६ | ९ | खयमियम् | ७५ | ५ | चकोरावधारयसि । |
| १६ | ११ | संगमवती | ८१ | १० | रमसे |
| १६ | १८ | विफला | ९६ | ११ | संतिष्ठता—च्युतसंस्कृति । |
| १८ | २ | पयोराशेर्गर्जन् | १९७ | २१ | व्यधास्यद्विधिः । |
| १८ | १० | लभसे | १०३ | १७ | त्रोटीपुट— |
| २० | १ | रीतिरमला | ०७ | ६ | परितः परितो |
| २२ | २ | प्रतीक्षसे | ११० | २४ | भग्नापदोऽन्ये हुमाः । |
| २४ | ४ | तिष्ठ तिष्ठ | ११९ | १२ | संभाषसे |
| २४ | ७ | उपभोक्ष्यसीति च्युतसंस्कृति । | १२२ | ८ | गङ्गागृहम् |
| २६ | २५ | स्रवन्तु | १२४ | २२ | नलिन्यन्योक्तयः |
| २७ | १ | प्रचलते यदि पापमेकम्— च्युतसंस्कृति । | १२८ | ८ | नालिकेरान्योक्तयः |
| २७ | ३ | न कौर्यमालम्बितम् | १३६ | १२ | कथ्यर्याः |
| २७ | ६ | गण्डूषिताः | १३७ | ७ | त्वल्लक्ष्म |
| २९ | २२ | लेशानशान | १४० | ६ | महौजोत्कट—च्युतसंस्कृति । |
| ३४ | २३ | भ्रश्यद्दान— | १४० | १० | आज्यदध्यो |
| ३९ | ६ | हुतभुजा वलिता | १४० | २० | पत्राणि |
| | | | १४४ | १६ | अभिषिञ्चति |

काव्यमाला ।

श्रीहंसविजयगणिसमुच्चिता
अन्योक्तिमुक्तावली ।

प्रथमः परिच्छेदः ।

ॐ नमः शाश्वतानन्दसिद्धिसंतानदायिने ।

श्रीशङ्खेश्वरसत्पार्श्वतीर्थाधीशायतायिने ॥ १ ॥

यस्योत्तमाङ्गके सप्त फणा रेजुः फणाभृतः ।

किमु मन्ये सप्ततत्त्वपादपानां नवाङ्कुराः ॥ २ ॥

जयश्रियं यच्छतु पार्श्वदेवः सदेव निर्मापितपादसेवः ।

फणामिषाद्येन विदीर्णवादिस्रया नयाः सप्त धृताः स्वमौलौ ॥ ३ ॥

स्फुटाः स्फटाः सप्त विभान्ति यस्य रुचिप्रपञ्चोपचिताः सुमौलौ ।

जित्वेव सप्तापि कुलाचलान्किं धैर्येण पर्युन्नमिताः पताकाः ॥ ४ ॥

यत्पार्श्वदेवः समभीप्सितानि प्रदानतो भूवलयेऽत्र कामम् ।

वृन्दारकक्षोणिरुहामुपैति सवर्णतां स प्रभुरस्तु सिद्ध्यै ॥ ५ ॥

यः पार्श्वशंभुर्जयसौख्यलक्ष्मीसमर्पणे देवगणेः समत्वम् ।

यत्ते जगज्जन्तुगणैर्निकामं जेगीयमानप्रबलप्रभावः ॥ ६ ॥

श्रेयः श्रियं वितनुतां त्रिशलातनूजः

शिश्नाय यं जिनवरं प्रणयान्मृगारिः ।

प्राणिप्रवासनसमुत्थसमग्रपाप-

व्यापापनोदकृतये किमु लक्ष्मलक्षयात् ॥ ७ ॥

१. ओमिति अवतीत्यौणादिके मप्रत्यये 'ज्वरत्वर-' इत्यूठि गुणे खरादित्वादव्ययत्वे च सिद्धिः. तस्मै परब्रह्मस्वरूपायेत्यर्थः. अत्र धुरि मातृकायामिव ॐ नम इति पठितमन्त्रसिद्धमन्त्रोपन्यासः. प्रयोजनं चास्य निर्विघ्नमिष्टार्थसिद्धिरिति. २. 'महेन्द्रो मलयः सह्यो हिमवान्पारियात्रिकः । गन्धमादन उदयश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥'.

शिवश्रिये श्रीचरमो जिनेशो भूयादभिज्ञाननिभेन नूनम् ।
स्तम्बेरमारातिरवासवान्किं मृगेन्द्रतां यत्पदपर्युपास्तेः ॥ ८ ॥

श्रीवर्धमानः स्तात्सिद्धौ वर्धमानसुखप्रदः ।
सिद्धार्थसार्थसिद्धार्थवंशे मुक्तामणिप्रभः ॥ ९ ॥
चिदानन्दद्रुकन्दाय सर्वातिशयशालिने ।
नमः सर्वज्ञसङ्घाय तमःस्तोमांशुमालिने ॥ १० ॥
भाषा सुभाषां मे दद्याद्भूरिभूषणभासुरा ।
सिन्दूरपूरन्यत्कारकारिहारिकराम्बुजा ॥ ११ ॥

श्रीइन्द्रभूति वसुभूतिभूतं पृथ्वीसुतं भूमिपतिप्रपूज्यम् ।
श्रीगौतमाख्यं गणधारिसुख्यं वन्दे लसल्लब्धिसुलक्ष्मिगेहम् ॥ १२ ॥

शत्रुंजयादिसत्तीर्थकरमोचनकारकम् ।
प्रतिवत्सरषण्मासजीवामारिप्रवर्तकम् ॥ १३ ॥
श्रीवर्धमानसर्वज्ञसमानमहिमाम्बुधिम् ।
श्रीहीरविजयाह्वानसूरीन्द्रं समुपास्महे ॥ १४ ॥ (युग्मम्)
श्रीमत्सुसाधुश्रीवन्तनन्दनं जननन्दनम् ।
तपागणपयोजन्मपयो जन्म सुहृत्त्विषम् ॥ १५ ॥
सूरिश्रीविजयानन्दगुरुं गुरुगुणैर्गुरुम् ।
सौभाग्यभाग्यवैराग्यपरभागनिधिं स्तुवे ॥ १६ ॥ (युग्मम्)
श्रीसोमसोमविजयाभिधवाचकनायकम् ।
रङ्गद्वैराग्यसद्रङ्गरज्जिताङ्गमुपास्महे ॥ १७ ॥
ते सज्जनाः किल भवन्तु मम प्रसन्ना
ये प्रीणयन्ति जगतीजनतामनांसि ।

१. चिद्रूप आनन्दश्चिदानन्दः, चिदानन्द एव ब्रह्मश्चिदानन्दद्रुः, तस्य कन्दो मूलविशेषः. यद्वा कं पानीयं ददातीति कंदो मेघः, चिदानन्दद्रौ कन्दश्चिदानन्दद्रुकन्दः, तस्मै, 'कन्दोऽब्दे सूरणे सस्यभेदे' इति हैमानेकार्थकोशः. २. अयं श्रीशब्दो महत्त्वप्रतिपादकः पूज्यनामादौ लोकेऽपि प्रयुज्यते. ३. 'जगती विष्टपे भूम्याम्' इति विश्वः.

शश्वत्परोपकृतिकर्मपरा वचोभि-

वारांभरैर्घनघटा इव काननानि ॥ १८ ॥

कर्णेजपा अपि सदा कुटिलस्वभावा

दुष्टाशया निरभिसंधितवैरिभूताः ।

सौहार्दहृष्टहृदया मयि सन्तु येषां

जिह्वापटुर्विनिमयेषु गुणा गुणानाम् ॥ १९ ॥

किं वानयां पिशुनया च न यापि मे स्या-

न्मां स्वीकरोति यदि साधुजनो गुणज्ञः ।

पूर्णेन्दुना कुवलयं प्रतिबोधितं स-

त्समीलितं भवति किं तमसो वितानैः ॥ २० ॥

श्रीमत्तपागणनभोज्जणभासनैक-

भास्वत्प्रभाभरसुभासुरभव्यभानोः ।

संहभ्यते विजयराजगुरोर्नियोगा-

न्मुक्तावली ललितवृत्तमनोज्ञमुक्ता ॥ २१ ॥

शास्त्राम्बुराशेरधिगम्य रम्यश्रीमदुरोरानननीरजाच्च ।

अन्योक्तिमुक्ता जनरञ्जनाय मुक्तावलीयं क्रियतेऽभिरामा ॥ २२ ॥

यद्यस्ति व्याख्यानसमाजमध्ये स्थातुं च वक्तुं हृदयं प्रकामम् ।

निधाय कण्ठे विशत प्रबुद्धा मुक्तावलीं मौक्तिकमालिकावत् ॥ २३ ॥

दोषैरदुष्टां सुगुणैर्गरिष्ठां सद्वृत्तमुक्ताफलजालजुष्टाम् ।

परिस्फुरच्चारुविचित्रवर्णां विशञ्चितां चित्रकरीं कवीनाम् ॥ २४ ॥

(युग्मम्)

अथ मूलद्वारवृत्तानि ।

अथानुक्रमद्वाराणि विरच्यन्तेऽत्र वाङ्मये ।

अन्योक्तिसूक्तमुक्तालीं समुद्धृत्य श्रुताम्बुधेः ॥ २५ ॥

देवाः पूर्वपरिच्छेदे द्विधा पञ्चेन्द्रियाः पुनः ।

स्थलाम्बुसंभवाः सर्वे तिर्यञ्चश्च द्वितीयके ॥ २६ ॥

खगात्पञ्चाक्षतिर्यञ्चः परिच्छेदे तृतीयके ।
 त्रिधा तुर्यपरिच्छेदे ज्ञेया च विकलेन्द्रियाः ॥ २७ ॥
 पृथिवीकायिका जीवाः परिच्छेदे च पञ्चमे ।
 जलाम्निवायवः षष्ठपरिच्छेदे बुधैर्मताः ॥ २८ ॥
 सर्वे वनस्पतिकायाः समाख्याताश्च सप्तमे ।
 अष्टमे मरुस्थल्युक्तिः संकीर्णोक्तिस्तथा स्मृता ॥ २९ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

तत्रादिमपरिच्छेदे सुबोधार्थं विशेषतः ।
 वक्ष्यन्ते प्रतिद्वाराणि प्रोद्यन्मोदप्रदानि च ॥ ३० ॥
 सूर्यस्यान्योक्तयः पूर्वं सामान्येन्दुसदुक्तयः ।
 वलक्षपक्षप्रतिपच्चञ्चन्द्रमसूक्तयः ॥ ३१ ॥
 द्वितीया द्विजराजोक्ती राकारात्रिकरोक्तयः ।
 शनेरन्योक्तिराख्याता ग्रहान्योक्तिस्ततः परम् ॥ ३२ ॥
 ईश्वरान्योक्तयस्तद्वदिन्दिरान्योक्तयः पुनः ।
 सामान्यनीरदान्योक्तिरकारजलदोक्तयः ॥ ३३ ॥
 प्रकाशाम्बोधरान्योक्तिरगस्त्युक्तिर्ध्रुवोक्तयः ।
 कल्पद्रुमोक्तयो ज्ञेया पारिजातोक्तयोऽपराः ॥ ३४ ॥

अथ देवाधिकारपद्धतौ प्रथमं सूर्यान्योक्तयः ।

तत्सैवाभ्युदयो भूयाद्भानोर्यस्योदये सति ।
 विकासभाजो जायन्ते गुणिनः कमलाकराः ॥ ३५ ॥
 रवेरेवोदयः श्लाघ्यः कोऽन्येषामुदयाग्रहः ।
 न तमांसि न तेजांसि यस्मिन्नभ्युदिते सति ॥ ३६ ॥
 खद्योतो द्योतते तावद्यावन्नोदयते शशिः ।
 उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥ ३७ ॥

१. 'खद्योतो द्योतते तावत्तावद्गर्जति चन्द्रमाः । उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥' इत्यपि पाठान्तरम्.

करान्प्रसार्य सूर्येण दक्षिणाशावलम्बिना ।

न केवलमनेनात्मा दिवसोऽपि लघूकृतः ॥ ३८ ॥

यच्छल्ललमपि जलदो वल्लभतामेति सकललोकस्य ।

नित्यं प्रसारितकरः करोति सूर्योऽपि परितापम् ॥ ३९ ॥

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च ।

संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ ४० ॥

निमीलनाय पद्मानामुदयायाल्पतेजसाम् ।

तमसामवकाशाय व्रजत्यस्तमहो रविः ॥ ४१ ॥

एतावत्सरसि सरोरुहस्य कृत्यं भित्त्वाम्भः सपदि बहिर्विनिर्गतं यत् ।

सौरभ्यं विकसनमिन्दिरानिवासस्तत्सर्वं दिनकरकृत्यमामनन्ति ॥ ४२ ॥

देवो हरिर्वहतु वक्षसि कौस्तुभं तं

मन्ये न काचन पुनर्द्युमणेः प्रतिष्ठा ।

यत्पादसंगतितरङ्गितसौरभाणि

धत्ते स एव शिरसा सरसीरुहाणि ॥ ४३ ॥

यो भृङ्गानां क्लिश्यतां पद्मकोशकारागारे मोक्षमर्कश्चकार ।

तन्मालिन्यादेव नोपेक्षतेऽसौ प्रायः साधुः सर्वलोकोपकारी ॥ ४४ ॥

अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तविश्रमानन्दः ।

मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥ ४५ ॥

उदयमयते दिक्कालिन्यं निराकुरुतेतरां

नयति निधनं निद्रामुद्रां प्रवर्तयति क्रियाः ।

रचयतितरां स्वैराचारप्रवर्तनकर्तनं

बत बत लसत्तेजःपुञ्जो विभाति विभाकरः ॥ ४६ ॥

आगत्य संप्रति वियोगविसंस्थुलाङ्गी-

मम्भोजिनीं कचिदपि क्षपितत्रियामः ।

एतां प्रसादयति पश्य शनैः प्रभाते

तन्वङ्गि पादपतनेन सहस्ररश्मिः ॥ ४७ ॥

धिष्ण्या निरेकि मुनिजोदयगर्जितानि

दोषाबलेन शशलाञ्छनलालितानि ।

प्रातः स एव समुदेष्यति चण्डभानु-

र्यस्योदयेन रजनिर्न विधुर्न यूयम् ॥ ४८ ॥

उद्यन्त्वमूनि सुबहूनि महामहांसि

चन्द्रोऽप्यलं भुवनमण्डलमण्डनाय ।

सूर्यादिते न तदुदेति न चास्तमेति

येनोदितेन दिनमस्तमिते च रात्रिः ॥ ४९ ॥

येनोन्मथ्य तमांसि मांसलघनस्पर्धीनि सर्वं जग-

च्चक्षुष्मत्परमार्थतः कृतमिदं देवेन तिग्मत्विषा ।

तस्मिन्नस्तमिते विवस्वति कियान्कूरो जनो दुर्जनो

यद्वधाति दशं शशाङ्कशकलालोके प्रदीपेऽथवा ॥ ५० ॥

पातः पूष्णो भवति महते नोपतापाय यस्मा-

त्कालेनास्तं क इह न गता यान्ति यास्यन्ति चान्ये ।

एतावत्तु व्यथयति यदालोकबाह्यैस्तमोभि-

स्तस्मिन्नेव प्रकृतिमहति व्योम्नि लब्धोऽवकाशः ॥ ५१ ॥

गते तस्मिन्भानौ त्रिभुवनसमुन्मेषविरह-

व्यथाश्चन्द्रो नेष्यत्यनुचितमतो नास्ति किमपि ।

इदं चेतस्तापं जनयतितरामत्र यदमी

प्रदीपाः संजातास्तिमिरहतिबद्धोद्धुरशिखाः ॥ ५२ ॥

यत्पादाः शिरसा न केन विधृताः पृथ्वीभृतां मध्यत-

स्तस्मिन्भास्वति राहुणा कवलिते लोकत्रयीचक्षुषि ।

खद्योतैः स्फुरितं तमोभिरुदितं ताराभिरुज्जृम्भितं

धूकैरुत्थितमाः किमत्र करवै किं केन नो चेष्टितम् ॥ ५३ ॥

ध्वान्तं ध्वस्तं समस्तं विरहविगमनं चक्रवाकेषु चके

संकोचं मोचितं द्राग्वरकमलवनं धाम लुप्तं ग्रहाणाम् ।

संप्राप्तोऽर्थो जनेभास्तदनु च निखिला येन भुक्ता दिनश्रीः

संप्रत्यस्तंगतोऽसौ हतविधिवशतः शोचनीयो न भानुः ॥ ५४ ॥

पूर्वाह्णे प्रतिबोध्य पङ्कजवनान्युत्सार्य नैशं तमः

॥ ५५ ॥ कृत्वा चन्द्रमसं प्रकाशरहितं निस्तेजसं तेजसा ।

मध्याह्णे सरितां जलं प्रविस्तृतैरापीय दीप्तैः करैः

सायाह्णे रविरस्तमेति विवशः किं नाम शोच्यं भवेत् ॥ ५५ ॥

येनोदितेन कमलानि विकासितानि

॥ ५६ ॥ तेजांसि येन निखिलानि निराकृतानि ।

येनान्धकारनिकरप्रसरो निरुद्धः

सोऽप्यस्तमाप हतदैववशाद्दिनेशः ॥ ५६ ॥

ताटङ्गं किमु पद्मरागरचितं प्राचीकुरङ्गीदृशः

शच्याः क्रीडनकन्दुकः सुरसरिप्रोत्फुल्लरक्तोत्पलम् ।

रागः कोकयुगस्य किं दिनमहीपालस्य सिंहासनं

॥ ५७ ॥ ध्वान्तानेकपकुम्भपाटनपटुः कण्ठीरवः किं रविः ॥ ५७ ॥

दक्षिणां सुतवधूं गतो रविः कालतो गतरुचिस्ततोऽभवत् ।

॥ ५८ ॥ तत्प्रमार्ष्टुमिव पातकं महन्मन्दमेति शिवसन्निधिं दिशम् ॥ ५८ ॥

न्याय्यं यत्तमसः समूलहननं भास्वंस्त्वया तन्यते

नैतच्चारुतरं स्वजातिसकलज्योतींषि मुष्णासि यत् ।

युक्तं वाखिललोकमस्तकपदं व्याधातुमिच्छोर्यतः

किं तेजः किमु पूर्णताक उदयः स्वल्पे परे जीवति ॥ ५९ ॥

(इति सूर्यान्योक्तयः ।)

॥ ६० ॥ अथ सामान्यचन्द्रान्योक्तयः ।

आलोकवन्तः सन्त्येव भूयांसो भास्करादयः ।

कलावानेव तु ग्रावद्रावकर्मणि कर्मठः ॥ ६० ॥

दैवाद्यद्यपि तुल्योऽभूद्भूतेशस्य परिग्रहः ।

तथापि किं कपालानि तुलां यान्ति कलानिधेः ॥ ६१ ॥

अहो नक्षत्रराजस्य साभिमानं विचेष्टितम् ।

परिक्षीणस्य वक्रत्वं संपूर्णस्य सुवृत्तता ॥ ६२ ॥

हरमुकुटे सुरतटिनीनिकटस्थितिलोभतो द्विजेन्द्रेण ।

अपि गरलं फणिफूत्कृतिरीक्षणतीक्ष्णाशुशुक्षणिः क्षान्तः ॥ ६३ ॥

शिरसा धार्यमाणोऽपि सोमः सोमेन शंभुना ।

तथापि कृशतां धत्ते कष्टं खलु पराश्रयः ॥ ६४ ॥

व्यज्यमानकलङ्कस्य वृद्धौ वृद्धौ कलानिधेः ।

आशासहे वयं पूर्वा सर्वश्लाघ्यां कृशां दशाम् ॥ ६५ ॥

यद्यपि शिरोऽधिरोहति रौद्रः क्रोधेन सिंहिकासूनुः ।

त्यजति न शरणायातं सागरसूनुर्मृगं तदपि ॥ ६६ ॥

क्षीणः क्षीणः समीपत्वं पूर्णः पूर्णोऽतिदूरतः ।

उपैति मित्राद्यच्चन्द्रो युक्तं तन्मलिनात्मनः ॥ ६७ ॥

परविषयाक्रमणकलाकलाधरस्यैव विषयमायाति ।

रजनिपतिर्भजति दिनं दिवसपतिर्भजति नो रजनीम् ॥ ६८ ॥

विरम तिमिर साहसादमुष्माद्यदि रविरस्तमितः स्वतस्ततः किम् ।

कलयसि न पुरो महोमहोर्मिद्युतिनिधिरभ्युदयत्ययं शशाङ्कः ॥ ६९ ॥

रुचिमानुडुपरिवारवृतो यो राजेव रराज ।

एको विरुचिर्दिवसवशात्स भ्रमति द्विजराजः ॥ ७० ॥

नयनमसि जनार्दनस्य शंभोर्मुकुटमणिः सुदृशां त्वमादिदेवः ।

त्यजसि न मृगमात्रमेकमिन्दो विरमति येन कलङ्ककिंवदन्ती ॥ ७१ ॥

अये विधातस्तव कीदृशी रुचिर्यद्दीप्तिमन्तं कलुषीकरोषि ।

किमागतं तेन करे तवायं कृतः कलङ्काकुलितः कलावान् ॥ ७२ ॥

प्रकुर्वता संगतिमिन्दुनामुना किं किं न लब्धं परमेश्वरेण ।

कलङ्कहानिः सुरसिन्धुसंगमः कलाक्षयित्वं च पदं तथोच्चैः ॥ ७३ ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि

मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि ।

चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति

नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारचिन्ता ॥ ७४ ॥

यदपि जन्म बभूव पयोनिधौ निवसनं जगतीपतिमस्तके ।

तदपि तात पुराकृतकर्मणा पतति राहुमुखे खलु चन्द्रमाः ॥ ७५ ॥

उडुगणपरिवारो नायकोऽप्यौषधीना-

ममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ।

भवति विकलमूर्तिर्मण्डलं प्राप्य भानोः

परसदननिविष्टः को न धत्ते लघुत्वम् ॥ ७६ ॥

इन्दुर्यद्युदयाद्रिमूर्ध्नि न भवत्यद्यापि तन्मा स भू-

न्नासीरेऽपि तमःसमुच्चयममूरुन्मूलयन्ति त्विषः ।

अप्यक्षणोर्मुदमुद्गिरन्ति कुमुदैरामोदयन्ते दिशः

संप्रत्यूर्ध्वमसौ तु लाञ्छनमभिव्यक्तुं प्रकाशिष्यते ॥ ७७ ॥

अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे सीमन्तिनीनां हृदि

स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः ।

प्रोद्यन्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणा-

त्फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ॥ ७८ ॥

प्रथममरुणच्छायस्तावत्ततः कनकप्रभ-

स्तदनु विरहोत्ताम्यत्तन्वीकपोलतलद्युतिः ।

उदयति ततो ध्वान्तध्वंसक्षमः क्षणदामुखे

सरसविसिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः ॥ ७९ ॥

यदिन्दोरन्वेति व्यसनमुदयं वा निधिरपा-

मुपाधिस्तत्रायं जयति जनिकर्तुः प्रकृतिता ।

अयं कः संबन्धो यदनुहरते तस्य कुमुदं

विशुद्धाः शुद्धानां ध्रुवमनभिसंधिप्रणयिनः ॥ ८० ॥

पीतः पीतपयोधिनाभिमाश्रितः पृथ्वीभृतां स्वामिना

बद्धश्चावनिनन्दिनीप्रणयिना कलोलिनीवल्लभः ।

नेन्दुः प्राप तथापि पानमथनावन्धव्यथां तद्गतः

सत्यं स्यादसुखक्षणेऽपि हि सुखी नूनं कलावान्पुमान् ॥ ८१ ॥

नक्षत्राणि बहूनि सन्ति परितः पूर्णोदयान्यम्बरे

किं तैः शान्तिमुपैति दीर्घतिमिरं किं वाब्धिरुज्जृम्भते ।

किं स्यादार्तचकोरपारणमिदं भ्रातः सुधादीधिते

त्रैलोक्यप्रकटप्रतापशमनः श्लाघ्यस्तवैवोदयः ॥ ८२ ॥

क्षीणश्चन्द्रो विशति तरणेर्मण्डलं मासि मासि

लब्ध्वा कांचित्पुनरपि कलां दूरदूरानुवर्ती ।

संपूर्णश्चेत्कथमपि तदा स्पर्धयोदेति भानो-

नो दौर्जन्याद्विरमति जडो नापि दैन्याद्विरंसीत् ॥ ८३ ॥

येनास्यभ्युदितेन चन्द्र गमितः क्लान्ति रवौ तत्र ते

युज्येत प्रतिकर्तुमेव न पुनस्तस्यैव पादग्रहः ।

क्षीणेनैतदनुष्ठितं यदि ततः किं लज्जसे नो मना-

गस्त्वेवं जलधामता तु भवतो यद्योमि विस्फूर्जसे ॥ ८४ ॥

उत्पत्तिः पयसांनिधेर्वपुरपि ख्यातं सुधामन्दिरं

स्पर्धन्ते विसवालतालसरला हारावलीमंशवः ।

कान्ताकैरविणी तव प्रियसखः शृङ्गारसारः सरो

हंहो चन्द्र किमत्र तापजननं तापाय यन्मे भवान् ॥ ८५ ॥

यज्जातोऽसि पयोनिधौ हरजटाजूटे प्रसिद्धोऽसि य-

द्विश्चस्योदरदीपकोऽसि विधिना सृष्टोऽसि यच्चामृतैः ।

भ्रातः शीतमयूखं सर्वमधुना म्लानीकृतं तत्त्वया

राजीवं यदपास्य कैरवकुलं नीतं विकासास्पदम् ॥ ८६ ॥

लब्धं जन्म सह श्रिया स्वयमपि त्रैलोक्यभूषाकरः

स्थित्यर्थं परमेश्वरोऽभ्युपगतस्तेनापि मूर्ध्ना धृतः ।

वृद्धिं शीतकरस्तथापि न गतः क्षीणः परं प्रत्युत

प्रायः प्राक्तनमेव कर्म बलवत्कः कस्य कर्तुं क्षमः ॥ ८७ ॥

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरो-

र्येनाक्रान्तं क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ।

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-

र्दूरारोहो भवति महतामप्यवभ्रंशहेतुः ॥ ८८ ॥

पीयूषं वपुषोऽस्य हेतुरुदयो विश्वस्य नेत्रोत्सवः

प्लुष्टं भानुकरैरिदं त्रिभुवनं ज्योत्स्नाभरैः सिञ्चति ।

सर्वाशाप्रतिरोधकान्धतमसध्वंसाय बद्धोद्यमो

धिग्धातारमिहापि लक्ष्म लिखितुं यस्य प्रवृत्तं मनः ॥ ८९ ॥

धवलयति समग्रं चन्द्रमा जीवलोकं

किमिति निजकलङ्कं नात्मसंस्थं प्रमार्ष्टि ।

भवतु विदितमेतत्प्रायशः सज्जनानां

परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये ॥ ९० ॥

न चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया करोति भाभिः कुमुदावबोधनम् ।

स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥ ९१ ॥

* दिनकरतापव्यापप्रपन्नमूर्छानि कुमुदगहनानि ।

उत्तस्थुरमृतदीधितिकान्तिकलासेकतस्त्वरितम् ॥ ९२ ॥

निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या यया न दृष्टं तुहिनांशुबिम्बम् ।

उत्पत्तिरिन्दोरपि निःफलैव दृष्टा प्रहृष्टा नलिनी न येन ॥ ९३ ॥

उच्चैः स्थानकृतोदयैर्बहुविधैर्ज्योतिर्भिरुद्यत्प्रभैः

शुक्राद्यैः किममीभिरत्र वितथां प्रौढिं दधानैरपि ।

यावल्लोकतमोपहेन भवता लक्ष्मीर्न विस्तार्यते

तावच्चन्द्र कथं प्रयाति परमां वृद्धिं स रत्नाकरः ॥ ९४ ॥

(इति सामान्यचन्द्रान्योक्तयः ।)

अथ शुक्लप्रतिपच्चन्द्रस्य ।

त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं

ग्रहकिसलयं संध्यानारीनितम्बनखक्षतम् ।

SGDF

Swatantra Digital Foundation

तिमिरभिदुरं व्योमः शृङ्गं मनोभवकन्दुकं
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्विम्बं सुखोदयमस्तु वः ॥ ९५ ॥

अथ द्वितीयाचन्द्रस्य ।

ॐकारो मदनद्विजस्य गगनक्रोडैकदंष्ट्राङ्कुर-
स्तारामौक्तिकशुक्तिरन्धतमसस्तम्बेरमस्याङ्कुशः ।
शृङ्गारार्गलकुञ्चिका विरहिणीमर्मच्छिदा कर्तरी
संध्यावारवधूनखक्षतिरियं चान्द्री कला राजते ॥ ९६ ॥

अथ पूर्णिमाशशधरान्योक्तयः ।

प्राचीभागे सरागे धरणिविरहिणीकान्तमुद्रे समुद्रे
निद्रालौ नीरजालौ कृतमुदि कुमुदे निर्विकारे चकोरे ।
आकाशे सावकांशे तमसि शममिते कोकलोके सशोके
कन्दर्पेऽनल्पदर्पे विकिरति किरणाञ्जशर्वरीसार्वभौमः ॥ ९७ ॥
निजकरनिकरसमृद्ध्या धवल्य भुवनानि पार्वण शशाङ्क ।
सुचिरं हन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थिरं कमपि ॥ ९८ ॥
सोलकलासंपुण्णो गवं मा वहसि पुन्निमाचन्दो ।
दीसेसि बीयदिवसे सारिच्छो वलयखण्डस्स ॥ ९९ ॥
(इति सामान्यविशेषचन्द्रान्योक्तयः ।)

अथ शनेः ।

न म्लापितान्यखिलधामवतां मुखानि
नास्तं तमो न च कृता भुवनोपकाराः ।
सूर्यात्मजोऽहमिति केन गुणेन लोका-
न्प्रत्याययिष्यसि शने शपथैर्विना त्वम् ॥ १०० ॥

अथ ग्रहगणस्य ।

ददृशेऽपि भास्कररुचाहि न यः स तमीं तमोभिरभिगम्य तताम् ।
द्युतिमग्रहीद्ग्रहगणो लघवः प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ १०१ ॥

अथेश्वरान्योक्तयः ।

तावत्सप्तसमुद्रमुद्रितमहीभूभृद्विरभंकषै-

स्तावद्भिः परिवारिता पृथुतरैर्द्वीपैः समन्तादियम् ।

यस्य स्फारफणामणौ निलयिनी तिर्यक्कलङ्काकृतिः

शेषः सोऽप्यगमद्यदङ्गदपदं रुद्राय तस्मै नमः ॥ १०२ ॥

त्वं चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां

व्यालैः कङ्कणभूषणानि तनुषे हानिर्न हेमामपि ।

मूर्धन्यं कुरुषे जडांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी-

दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥ १०३ ॥

बिभ्राणे त्वयि भस्म कः समभवन्मन्दादरश्चन्दने

कः क्षौमं कलयांचकार न कृती कृत्तिं वसाने त्वयि ।

धत्तूरस्पृहयालुतां त्वयि गते तत्याज कः केतकीं

स्वातन्त्र्याज्जहिहि त्वमीश्वर गुणाल्लोकोऽस्ति तद्गाहकः ॥ १०४ ॥

छिन्से ब्रह्मशिरो यदि प्रथयसि प्रेतेषु सख्यं यदि

क्षीबः क्रीडसि मातृभिर्यदि रतिं धत्से श्मशाने यदि ।

सृष्ट्वा संहरसि प्रजा यदि तथाप्याधाय भक्त्या मनः

कं सेवे करवाणि किंतु जगती शून्या त्वमेवेश्वरः ॥ १०५ ॥

(इतीश्वरान्योक्तयः ।)

अथ लक्ष्म्यन्योक्तयः ।

तापापहे सहृदये रुचिरे प्रबुद्धे

मित्रानुरागनिरते धृतसद्गुणौघे ।

स्वाङ्गप्रदानपरिपूरितषट्पदौघे

युक्तं तवेह कमले कमले स्थितिर्यत् ॥ १०६ ॥

रत्नाकरस्तव पिता स्थितिरम्बुजेषु

आता सुधामयतनुः पतिरादिदेवः ।

केनापरेण कमले बत शिक्षितानि

सारङ्गशृङ्गकुटिलानि विचेष्टितानि ॥ १०७ ॥

वारां राशिरसौ प्रसूय भवतीं रत्नाकरत्वं गतो

लक्ष्मि त्वत्पतितामवाप्य मुरजिज्जातस्त्रिलोकीपतिः ।

कन्दर्पो जनचित्तरञ्जन इति त्वन्नन्दनत्वादभू-

त्सर्वत्र त्वदनुग्रहप्रणयिनी मन्ये महत्त्वस्थितिः ॥ १०८ ॥

लक्ष्मि त्वत्करुणाकटाक्षनिविडां प्रीतिं विनाञ्जालये

नोद्वाहो न च मङ्गलानि भविता भूवन्विभूनामपि ।

पश्यैतद्धरिरेष यादवगणास्तत्पुत्रपौत्राण्यहो

दारैः संयुजिरे हरो न तनयं ब्रह्मापि न स्वां सुताम् ॥ १०९ ॥

लक्ष्मि क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्त-

मन्धा भवन्ति पुरुषास्त्वदुपाश्रयेण ।

नो चेत्कथं कथय पन्नगभोगतल्पे

नारायणः स्वपिति पङ्कजपत्रनेत्रः ॥ ११० ॥

हरेः प्रदत्तापि निजेन पित्रा श्यामाङ्गकत्वादपि तं विहाय ।

वत्रे रमा यज्जनमादरेण प्रायो हि रम्यं नरमिच्छति स्त्रीः ॥ १११ ॥

स्नैगभूषणमणेः कमलाया यद्वदन्ति चपलेत्यपवादम् ।

दूषणं जलनिधेर्जनिकर्तुर्यत्पुराणपुरुषाय ददौ ताम् ॥ ११२ ॥

लक्ष्मीर्यादोनिधेर्यादो नादो वादोचितं वचः ।

बिभ्यती धीवरेभ्यो या जलेष्वेव निमज्जति ॥ ११३ ॥

हरिभामिनि सिन्धुसंभवे कमले देवि तवैष कः प्रचारः ।

अनुरज्यसि हा जडे जने गुणगौरे पुरुषे विलज्जसि ॥ ११४ ॥

चञ्चलत्वकलङ्कं ये श्रियो दधति दुर्धियः ।

ते मूढाः स्वं न जानन्ति निर्विवेकमपुण्यकम् ॥ ११५ ॥

पद्मे मूढजने ददासि विभवं विद्वत्सु किं मत्सरो

नाहं मत्सरिणी न चापि चपला मूर्खस्य नैवार्थिनी ।

मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि विपुलं तत्कारणं श्रूयतां

विद्वान्सर्वजनस्य पूजिततनुर्मूर्खस्य कान्या गतिः ॥ ११६ ॥

हे लक्ष्मि क्षणिके स्वभावचपले धिक्बूढपापाधमे

न त्वं धीरविशेषमिच्छसि किल प्रायेण दुश्चारिणि ।

ये ये पण्डितसत्यशौचनिरता ये चापि धर्मे रता-

स्तेभ्यो लज्जसि निर्घृणा गतभिये नीचो जनो वल्लभः ॥ ११७ ॥

मो लोका मम दूषणं कथमिदं संचारितं भूतले

नोत्सेका क्षणिकातिनिर्घृणतरा लक्ष्मीरतित्वैरिणी ।

नैवाहं कुलटा न चापि चपला नैवं गुणद्वेषिणी

पुण्येनैव भवाम्यहं स्थिरतरा युक्तं हि तस्यार्जनम् ॥ ११८ ॥

गुणिनां गुणमालोक्य निजबन्धनशङ्कया ।

राजलक्ष्मीः कुरङ्गीव दूरं दूरं पलायते ॥ ११९ ॥

तावन्माता पिता चैव तावत्सर्वेऽपि बान्धवाः ।

तावद्भार्या सदा हृष्टा यावल्लक्ष्मीः स्थिरा गृहे ॥ १२० ॥

सर्वासामपि नारीणां मध्ये श्रीः सुभगा खलु ।

स्पृहयन्ति महान्तोऽपि यां स्वेच्छाचारिणीमपि ॥ १२१ ॥

श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम् ।

उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि ॥ १२२ ॥

तावद्गुणगणकलितस्तावन्निजगोत्रमण्डनं परमम् ।

यावत्करिकर्णचला कमला न त्यजति सत्पुरुषम् ॥ १२३ ॥

पद्मं पद्मा परित्यज्य स्वावासमपि या व्रजेत् ।

दिनान्ते सा कथं नाम परस्थानेषु सुस्थिरा ॥ १२४ ॥

या स्वसद्मनि पद्मेऽपि संध्यावधि विजृम्भते ।

इन्दिरा मन्दिरेऽन्येषां कथं तिष्ठति सा चिरम् ॥ १२५ ॥

धर्मः सनातनो यस्य दर्शनप्रतिभूरभूत् ।

परित्यजति किं नाम तेषां मन्दिरमिन्दिरा ॥ १२६ ॥

भत्वात्मनो बन्धनिबन्धनानि पुण्यानि पुंसां कमला किलासौ ।

तद्धंसनायेव धनेश्वराणां दत्ते मतिं दुर्बलपीडनाय ॥ १२७ ॥

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते

चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।

चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-

त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥१२८॥

नालस्यप्रसरो जडेष्वापि कृतावासस्य कोशे रुचि-

र्दण्डे कर्कशता मुखे च मृदुता मित्रे महान्प्रश्रयः ।

आमूलं च गुणग्रहव्यसनिता द्वेषश्च दोषाकरे

यस्यैषा स्थितिर्म्बुजस्य वसतिर्युक्तैव तत्र श्रियः ॥१२९॥

उत्पादिता खलु स्वयं यदि तत्तनूजा

तातेन वा यदि तदा भगिनी खलु श्रीः ।

यद्यन्यसंजगवती च तदा परस्त्री

तत्त्यागबद्धमनसः सुधियस्ततोऽमी ॥१३०॥

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयःसङ्गादिवाम्भोजिनी

संसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न कापि धत्तेऽन्धताम् ।

चैतन्यं विषसंनिधेरिव नृणामुज्जासयत्यञ्जसा

धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ॥१३१॥

काचिद्दालकवन्महीतलगता मूलच्छिदाकारणं

द्रव्येणार्जनपुष्पितापि विफली काचिच्च जातिप्रभा ।

काचिच्छ्रीः कदलीव भोगसुभगा सत्पुण्यबीजच्युता

सर्वाङ्गे सुभगा रसाललतिकावत्पुण्यबीजाङ्किता ॥१३२॥

लक्ष्मीरात्मगृहोद्भवेति तनया पात्रेण दातुः स्वयं

लोकाद्वारिनिधेरिवात्र रुदतः सा गृह्यते जिष्णुना ।

चेत्पाणिग्रहणं विधाप्यत इयं त्यागेन मृत्वा यशः

पुण्यैः कापि गतापि वत्सलतया व्यावर्तते तत्पुनः ॥१३३॥

आलस्यं स्थिरतामुपैति भजते चापल्यमुद्योगितां

मूकत्वं मितभाषितां विदधते मौग्ध्यं भवेदार्जवम् ।

पात्रापात्रविचारसारविरहो गच्छत्युदारात्मतां
मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणाः ॥१३४॥

समुद्रस्यापत्यं प्रथितमहिमामुद्रितभुवः

खसा प्रालेयांशोस्त्रिनयनशिरोधामवसतेः ।

मुरारातेर्योषितसरसिरुहकिञ्जल्कनिलया

तथापि श्रीः स्त्रीत्वात्प्रकृतिचपलालिङ्गति खलान् ॥१३५॥

चक्षुःश्रुतिवाग्घरणं लक्ष्मीः कुरुते जनस्य को दोषः ।

गरलसहोअरजाया अच्छरियं जं न मारेइ ॥ १३६ ॥

जुत्तं किवणेण खहुं खणिऊण लङ्घिआ लच्छी ।

कन्हस्स वि अद्धङ्गी सा कीस परङ्गणे भमइ ॥ १३७ ॥

(इति लक्ष्म्यन्योक्तयः ।)

अथ सामान्यमेघान्योक्तयः ।

एकस्य तस्य मन्ये धन्यामभ्युन्नतिं जलधरस्य ।

विश्वं सशैलकाननमाननमालोकते यस्य ॥ १३८ ॥

संप्रति न कल्पतरवो न सिद्धयो नापि देवता वरदाः ।

जलद त्वयि विश्राम्यति सृष्टिरियं भुवनलोकस्य ॥ १३९ ॥

क्षणदृष्टनष्टतडितो निजसंपत्तेः पयोदनिवहेन ।

ज्ञातं साधु यदुचितं भुवनेभ्यो वितरता वारि ॥ १४० ॥

अपगततरजोविकारा घनपटलाक्रान्ततारकालोका ।

लम्बिपयोधरभारा प्रावृडियं वृद्धवनितेव ॥ १४१ ॥

कृतकृत्यमन्यः स्यादरघट्टः क्षेत्रमात्रसेकेऽपि ।

अम्भोधरस्य तु घरां विधुरामुद्धर्तुमधिकारः ॥ १४२ ॥

जलधर जलभरपटलैरुपहर संतोषमुद्धतं जगतः ।

नो चेदपसर दूरं हिमकरकरदर्शनं वितर ॥ १४३ ॥

प्रावृषेण्यस्य मालिन्यं दोषः कोऽभीष्टवर्षिणः ।

शारदाअस्य शुभ्रत्वं वद कुत्रोपयुज्यते ॥ १४४ ॥

यस्याम्बुकणमादाय प्राप्तोऽसि परमोन्नतिम् ।

तस्योपरि पयोराशे गर्जन्मेघ न लज्जसे ॥ १४५ ॥

चातकः स्वानुमानेन जलं प्रार्थयतेऽम्बुदात् ।

स स्वौदार्यतया नित्यं प्लावयत्यम्बुदो महीम् ॥ १४६ ॥

धाराधर धरामेनां धाराभिरभिवर्षसि ।

खगचञ्चुपुटीद्रोणीपूरणे कः परिश्रमः ॥ १४७ ॥

जलधर तदयुक्तं किल जलपटलं यद्ददासि रसितयुतम् ।

उन्नतिभृतां सतां तनुमनसोऽध्वासौ यतस्त्याज्यः ॥ १४८ ॥

गर्ज त्वं यदि गर्जसि जलधर मा गर्ज गर्ज गम्भीरम् ।

निर्दय पथिकवधूजनहृदयस्फोटेन किं लभसि ॥ १४९ ॥

जलधर एव महत्सु महानिति महतां स्तुतिविषयः ।

यस्तर्पयति समस्तजगत्कतिपयदिवसाम्युदयः ॥ १५० ॥

यदि यदि सन्ति कथं न सरिद्रापीकूपसरांसि ।

चातक एष पुनः स्पृहयत्यम्बुदभवदम्भांसि ॥ १५१ ॥

श्यामतां बहतु वातु कठोरं वक्तु चार्कविभवं हरतां वा ।

तद्ददौ किमपि वारिधरस्तु प्रीणितानि बत येन जगन्ति ॥ १५२ ॥

जले कजं तिष्ठति चातकः स्थले केकी वने दर्दुरकस्तडागे ।

चत्वारि मित्राणि मुदं वितेनिरे गर्जारवं कुर्वति वारिवाहे ॥ १५३ ॥

यत्त्वद्गर्जितमूर्जितं यदपि ते प्रोद्दामसौदामिनी-

दानाडम्बरमम्बरे विरचितं यद्दूरमभ्युन्नतम् ।

तेषां पर्यवसानमेतदधुना जातं यदम्भोधर

द्वित्राः कृत्रिमरोदनाश्रुतनवो मुक्ताः पयोविन्दवः ॥ १५४ ॥

तृषार्ते पाथोद प्रलपति पुरश्चातकशिशौ

यदेतन्नैष्ठुर्यं तदिह गदितुं मां त्वरयति ।

वियद्वा स्वाधीना किमुत जडता वा परिणता

मरुद्वा नो वास्यत्यथ घन शरद्वा न भविता ॥ १५५ ॥

मामभ्युन्नतमागतोऽयमिति वा कामं समासेवते

मच्छायामिति वा यदन्यविषयं विद्वेष्टि वारीति वा ।

सद्यो वर्ष वराकचातककृते नो चेदयं याचिता

याच्चाया यदुपेक्षणं च जलद व्रीडाकरं त्वाहशाम् ॥ १५६ ॥

सुखयसि तृषोत्ताम्यत्तालूस्खलद्धनिविह्वलं

कतिपयपयोबिन्दुस्यन्दैर्न चातकमागतम् ।

जलधर यदा कालात्कोऽपि प्रचण्डसमीरणः

प्रवहति तदा नायं न त्वं न ते जलबिन्दवः ॥ १५७ ॥

एतान्यहानि किल चातकशावकेन

नीतानि कण्ठकुहरस्थितजीवितेन ।

तस्यार्थिनो जलद पूरय वाञ्छितानि

मा भूत्त्वदेकशरणस्य बत प्रमादः ॥ १५८ ॥

हे मेघ मानमहितस्य तृषातुरस्य

त्यक्तत्वदन्यशरणस्य च चातकस्य ।

अम्भःकणान्कतिचिदप्यधुना विमुञ्च

नो चेद्भविष्यसि जलाञ्जलिदानयोग्यः ॥ १५९ ॥

जलधर धवोऽष्टाभिर्मासैरुपार्जितजीवनो

यदुपनतवान्विश्वान्याश्वासयन्नमृतद्रवैः ।

तदियमुदयद्वल्लीपुष्पाङ्कुरच्छलतो दधौ

क्षितिशशिमुखी साहंकारं विभूषणविभ्रमम् ॥ १६० ॥

तावन्नीतिपरा नराधिपतयस्तावत्प्रजा सुस्थिता

तावन्मित्रकलत्रपुत्रपितरस्तावन्मुनीनां तपः ।

१. 'नीत्या तावदमी नराधिपतयः पान्ति प्रजाः पुत्रवत्तावन्नीतिविदः स्वकर्मनिरता-
स्तावद्वशीणां तपः । तावन्मित्रकलत्रपुत्रपितरः स्नेहे स्थिताः संततं यावत्त्वं प्रतिवत्सरं
जलधर क्षोणीतले वर्षसि ॥' इति पाठान्तरम्.

तावन्नीतिसुकीर्तिरीतिविमला तावच्च देवार्चनं
 यावत्त्वं प्रतिवत्सरं जलधर क्षोणीतले वर्षसि ॥ १६१ ॥
 शालेयेषु शिलातलेषु च गिरेः शृङ्गेषु गर्तेषु च
 श्रीखण्डेषु विभीतकेषु च तथा पूर्णेषु रिक्तेषु च ।
 स्निग्धेन ध्वनिनाखिलेऽपि जगतीचक्रे समं वर्षतो
 वन्दे वारिदसार्वभौम भवतो विश्वोपकारिव्रतम् ॥ १६२ ॥
 नीहाराकरसारसागरसरित्कासारनीरश्रियं
 त्यक्त्वा तोयद चातकेन महती सेवा समालम्बिता ।
 तस्यैतत्फलितं समुन्नतशिलासंताडनं मस्तके
 गाढं गर्जसि वज्रमुज्झसि तडिलेखाभिरातर्जसि ॥ १६३ ॥
 क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः
 स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः ।
 दुःपूरोदरपूरणाय पिबति स्रोतःपतिं वाडवो
 जीमूतस्तु निदाघसंभृतजगत्संतापविच्छिन्नये ॥ १६४ ॥
 अन्योऽपि चन्दनतरोर्महनीयमूर्तेः
 सेकार्थमुत्सहति तद्गुणबद्धतृष्णः ।
 शाखोटकस्य पुनरस्य महाशयोऽय-
 मम्भोद एव शरणं यदि निर्गुणस्य ॥ १६५ ॥
 अये वेलाहेलाकुलितकुलशैले जलनिधौ
 कुतो वारामोघं बत जलद मोघं वितरसि ।
 समन्तादुत्तालज्वलदनलकालाकवलित-
 क्लमोपेतानेतानुपचर पयोभिर्विटपिनः ॥ १६६ ॥
 दूरं नीरं तदपि विरसं जङ्गमा नो लताद्या-
 स्तस्मिन्दातर्यपि जलनिधौ को लभेताम्बुबिन्दुम् ।
 दानाध्यक्षे त्वयि जलधर कापि कुत्रापि शैलाः
 शालावन्तोऽमृतनिभजलैस्तर्पिताः सर्व एते ॥ १६७ ॥

मार्गो भूरि मरुर्जलं स्थलभुवि स्वप्नेऽपि नो लभ्यते

तीव्रो वाति समीरणः कचिदपि च्छायाभृतो न द्रुमाः ।

अङ्गारप्रकरान्किरन्निव रविर्ग्रीष्मे तपत्यम्बरे

तद्भोः पान्थहिताय पूरय धरां पाथोद पाथोभरैः ॥ १६८ ॥

सक्षारो जलधिः सरांसि वितरन्त्यभ्यागतेभ्यो मितं

गृह्यन्ते सरितश्चिरेण परितोऽप्याधाय बन्धं बलात् ।

ग्राह्यं कूपकतः कथंचन किमप्यारोप्य कण्ठे पदं

तत्त्वां त्यागिनमेकमेव भगवन्पर्जन्य मन्यामहे ॥ १६९ ॥

क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां

प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।

क संप्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरा-

स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चलन्तीव जलदाः ॥ १७० ॥

अमीभिः संसिक्तेस्तव किमु फलं वारिदघटे

यदेतेऽपेक्षन्ते सलिलमवटेभ्योऽपि तरवः ।

अयं युक्तो व्यक्तं ननु सुखयितुं चातकशिशु-

र्येदेष ग्रीष्मेऽपि स्पृहयति न पाथस्त्वदपरान् ॥ १७१ ॥

भरिऊण जलञ्जलया जस्स पसाएण उन्नयं पत्ता ।

तस्सेव पुणो उवरिं गज्जन्ता किं न लज्जन्ति ॥ १७२ ॥

भग्गो सूरपयावो छन्नं गयणं धरावि तप्पवि या ।

भुअणं भरन्त जलहर तुह छज्जसि गंज्जियं गुहिरम् ॥ १७३ ॥

अन्नेहिं वि कूवजलेहिं निच्चं सबन्ति मामवल्लीओ ।

जलहर जलसिञ्चन्ताणं का वि इयरामहच्छाया ॥ १७४ ॥

(इति सामान्यमेघान्योक्तयः ।)

सांप्रतमकालजलदस्य ।

आसन्यावन्ति याच्नासु चातकाश्रूणि तेऽम्बुद ।

तावन्तोऽपि त्वया मेघ न मुक्ता जलविन्दवः ॥ १७५ ॥

त्वमेव चातकाधार इति केषां न गोचरः ।

धिगम्भोद यदस्यापि कार्पण्योक्तीः प्रतीक्ष्यसे ॥ १७६ ॥

अयि जलद यदि न दास्यसि कतिचित्त्वं चातकाय जलकणिकाः ।

तदयमचिरेण भविता सलिलाञ्जलिदानयोग्यस्ते ॥ १७७ ॥

त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः ।

अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेषु संशयः ॥ १७८ ॥

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतसं

दुर्दाववह्निविधुराणि च काननानि ।

नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा

रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः ॥ १७९ ॥

कर्तव्यो हृदि वर्तते यदि तरोरस्योपकारस्तदा

मा कालं गमयाम्बुवाह समये सिञ्चैनमम्भोभरैः ।

शीर्णे पुष्पफले दले विगलिते मूले गते शुष्कतां

कस्मै किं हितमाचरिष्यसि परीतापस्तु ते स्थास्यति ॥ १८० ॥

एतेषु हा तरुणमारुतधूयमान-

दावानलैः कवलितेषु महीरुहेषु ।

अम्भो न चेज्जलद मुञ्चसि मा विमुञ्च

वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय कस्य हेतोः ॥ १८१ ॥

हृद्या नद्यः कमलसरसी राजहंसावतंसाः

पुण्यश्रोता हिमजलभुवस्त्वत्कृते येन मुक्ताः ।

संप्राप्तेऽस्मिञ्जलद दहनोच्चण्डदाहे निदाधे

पर्जन्य स्वीकुरु तमधुना चातकं पातकं वा ॥ १८२ ॥

एतदत्र पथिकैकजीवितं पश्य शुष्यतितरां महत्सरः ।

धिञ्जुधाम्बुधर रुद्धसद्गतीर्वर्धिताः किमिति तेऽद्रिवाहिनीः ॥ १८३ ॥

वितर वारिद वारि तृषातुरे चिरपिपासितचातकपोतके ।

मरुति संचरति क्षणमन्यथा क्व च भवान्क्व पयः क्व च चातकः ॥ १८४ ॥

मुञ्च मुञ्च सलिलं कृपानिधे नाथ नास्ति समयो विलम्बने ।

अद्य चातककुटुम्बके मृते वारि वारिधर किं करिष्यसि ॥ १८५ ॥

नभसि निरवलम्बे सीदता दीर्घकालं

त्वदभिमुखनिषण्णोत्तानचञ्चूपुटेन ।

जलधर जलधारा दूरतस्तावदास्तां

ध्वनिरपि मधुरस्ते न श्रुतश्चातकेन ॥ १८६ ॥

विलपति तृषा सारङ्गोऽयं भवानयमुन्नतो

जलमपि च ते संयोगोऽयं कथंचिदुपस्थितः ।

उपकृतिकृते प्रह्वं चेतः कुरुष्व यदग्रतो

अमति पवने क त्वं कायं क ते जलसंचयः ॥ १८७ ॥

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्षमान्तर्गतं कच्छपैः

पौठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्छितम् ।

तस्मिन्नेव सरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं

यत्राकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ॥ १८८ ॥

(इत्यकालजलदान्योक्तयः ।)

अथ प्रकाशवर्षान्योक्तयः ।

अमुं कालक्षेपं त्यज जलद गम्भीरमधुरैः

किमेभिर्निर्धोषैः सृज झगिति ज्ञात्कारि सलिलम् ।

अये पश्यावस्थामकरुण समीरव्यतिकर-

ज्वलद्वावज्वालावलिजटिलमूर्तेर्विदपिनः ॥ १८९ ॥

शोषं गते सरसि शैवलमञ्जरीणा-

मन्तस्तिमिर्लुठति तापविसंस्थुलाङ्गः ।

अत्रान्तरे यदि न वारिद वारिवृन्दै-

राप्लावयेस्तदनु किं मृतमण्डनेन ॥ १९० ॥

कालातिक्रमणं कुरुष्व तडितां विस्फूर्जितैस्त्रासय

स्फारैर्भाषय गर्जितैरतितरां काण्ड्यं मुखे दर्शय ।

अस्यानन्यगतेः पयोद मनसो जिज्ञासया चातक-

स्याधेहि त्वमिहाखिलं तदपि न त्वत्तः परं याचते ॥ १९१ ॥

भूयो गर्जितमम्बुद प्रकटिता विद्युत्स्वमापूरितं

दूरावग्रहपृष्ठनिष्ठ तदलं वृष्ट्या तवातः परम् ।

निर्दग्धाखिलशालिहालिकवधूसन्नद्धनेत्रैः परं

नैराश्यादिह वर्षितव्यमधुना केदारपूरं पयः ॥ १९२ ॥

नैताः स्वयमुपभोक्ष्यसि मोक्ष्यसि नूनं पयोद कुत्रापि ।

तत्किं तत्र न मुञ्चसि मुक्ता मुक्ता भवन्ति यत्रापः ॥ १९३ ॥

(इति प्रकाशवर्षान्योक्तयः ।)

अथागस्त्यन्योक्तयः ।

कम्पन्ते गिरयः पुरंदरभयान्मैनाकमुख्याः पुनः

क्रन्दन्त्यम्बुधराः स्फुरन्ति वडवावक्रोद्धता वह्नयः ।

भोः कुम्भोद्भव मुच्यतां जलनिधिः स्वस्त्यस्तु ते सांप्रतं

निद्रालुः श्लथबाहुवल्लिकमलाश्लेषो हरिः सीदति ॥ १९४ ॥

अखर्वखर्वगर्तासु विच्छिन्नो यस्य वारिधिः ।

स एव हि मुनेः पाणिरधस्ताद्विन्ध्यभूभृतः ॥ १९५ ॥

अल्पीयसैव पयसा यत्कुम्भः पूर्यते प्रसिद्धं तत् ।

ब्राह्मं तेजः पश्यत कुम्भोद्भूतः पपौ वार्षिम् ॥ १९६ ॥

(इत्यगस्त्यन्योक्तयः ।)

अथ ध्रुवस्य ।

यदि तारकततिरपरिमिता यदि सविता यदि सोमः ।

ध्रुव भवदवलम्बेन पुनर्विचरति सकलं व्योम ॥ १९७ ॥

अथ कल्पवृक्षान्योक्तयः ।

कल्पद्रुमोऽपि कालेन भवेद्यदि फलप्रदः ।

को विशेषस्तदा तस्य वन्यैरन्यमहीरुहैः ॥ १९८ ॥

स्वर्णैः स्कन्धपरिग्रहो मरकतैरुल्लासिताः पल्लवा

मुक्ताभिः स्तम्बकश्रियो मधुलिहां वृन्दानि नीलोत्पलैः ।

संकल्पानुविधायि यस्य फलितं कस्तस्य धत्ते तुलां

धिग्जातिं द्रुमसंकथासु यदयं कल्पद्रुमोऽपि द्रुमः ॥ १९९ ॥

अथ पारिजातस्य ।

परिमलसुरभितनभसो बहवः कनकाद्रिपरिसरे तरवः ।

तदपि सुराणां चेतसि निवसितमिह पारिजातेन ॥ २०० ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराज-श्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाज-सकलभट्टारकवृन्दवृन्दारक-
वृन्दारकराज-परमगुरुभट्टारकश्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्यपण्डितहंसविजयगणि-
समुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां देवान्योक्तिनिरूपकः प्रथमः परिच्छेदः ॥

द्वितीयः परिच्छेदः ।

श्रेयः श्रियां विलसनोल्लसदालयस्य

यस्येशितुः शिरसि भान्ति फणात्फणीनाम् ।

किं मङ्गिनीसमुदयः कृपया धृतोऽयं

संसारसागरपतज्जनतावनाय ॥ १ ॥

श्रेयः श्रियामाश्रयमद्विपन्नं यदीयमङ्गच्छलतो मृगारिः ।

समाश्रितो वक्तुमिदं मदीयं पशुत्वमश्लाघ्यमपाकरोतु ॥ २ ॥

स्तोष्ये श्रीविजयानन्दस्वगुरुं गरिमान्बुधिम् ।

सर्ववर्थवराचार्यमौलिमौलिमणिप्रभम् ॥ ३ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

द्वितीयपरिच्छेदेऽथ प्रतिद्वाराणि प्रस्फुटम् ।

कोमलामलवृत्तानि निगद्यन्ते यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

सिंहस्यान्योक्तयो ज्ञेया गजस्यान्योक्तयस्तथा ।

मृगान्योक्तिः शशान्योक्तिः फेरुक्तिः करभोक्तयः ॥ ५ ॥

वृषभान्योक्तयस्तद्वृषणान्योक्तयस्ततः ।

सर्पान्योक्तिस्तथैवोक्ता शेषनागोक्तयः पुनः ॥ ६ ॥

अथोच्येते जलधरप्रतिद्वारद्वयं क्रमात् ।

मत्स्यस्यान्योक्तयो मुख्या मण्डूकान्योक्तयो मताः ॥ ७ ॥

१. अयं श्रीशब्दः पूज्यत्वसूचकः. २. कोमलान्यकठोराणि मुखोच्चार्याण्यमलानि
व्यर्थाक्षररहितानि वृत्तानि पद्यानि येषु तानि कोमलामलवृत्तानि.

अथ स्थलचराधिकारपद्धतौ पूर्वं सिंहाभ्योक्तयः ।

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।

प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ ८ ॥

मृगेन्द्रं वा मृगारिं वा सिंहं व्याहरतां जनाः ।

तस्य द्वयमपि व्रीडा क्रीडादलितदन्तिनः ॥ ९ ॥

मत्तेभकुम्भनिर्भेदकठोरनखराशनिः ।

मृगारिरिति नामैव लघुतामेति केसरी ॥ १० ॥

एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः ।

स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥ ११ ॥

मृगैर्नष्टं शशैर्लीनं वराहैर्वलितं रुषा ।

हयानां हेषितं श्रुत्वा सिंहैः पूर्ववदासितम् ॥ १२ ॥

अन्वेषयति मदान्धद्विरदमदाम्बुसिक्तमवनितलम् ।

परिणतगर्भभरार्ता सिंहवधूः शल्लकीविषिने ॥ १३ ॥

अयि भामिनि गर्भादलं समागमैर्न मया हि नागेन्द्रेण ।

मद्गन्धाद्बहिरेष्यति तूर्णमपूर्णः कुमारस्ते ॥ १४ ॥

धीरध्वनिभिरलं ते नीरद मयि मासिको गर्भः ।

उन्मदवारणबुद्ध्या मध्येजठरं समुच्छलति ॥ १५ ॥

तावद्गर्जन्ति मातङ्गा वने मदभरालसाः ।

लीलोलालितलाङ्गूलो यावन्नायाति केसरी ॥ १६ ॥

अन्तर्बलान्यहममुष्य मृगाधिपस्य

वाचा निगद्य कथमद्य लघुं करोमि ।

जानन्ति किं न करजक्षतकुम्भिकुम्भा-

दामुक्तमौक्तिकमयानि दिगन्तराणि ॥ १७ ॥

घण्टाखनो नुदतु वा मदवारिधाराः

कामं श्रवन्तु बहुधा गजराजयूथे ।

SGDF

दृष्टे मयि प्रचलते यदि पादमेकं

वन्ध्या भवेद्विजननी मम सिंहसूनोः ॥ १८ ॥

नाभ्यासो नभसः क्रमे कररुहैर्नक्रोऽयमालम्बितं

घण्टालत्वमभून्न भूधरगुहां पर्यङ्कभूलङ्घने ।

पीनस्तन्यमनादराद्गलितया दृष्ट्वैव सिंहीशि-
शो-

द्राग्दानाद्रवनिम्नगाः करटिनां गण्डेषु गण्डूषिता ॥ १९ ॥

हरिरलसविलोचनः सहेलं बलमवलोक्य पुनर्जगाम निद्राम् ।

अधिगतपतिविक्रमास्तभीतिर्न तु वनितास्य विलोक्यांचकार ॥ २० ॥

बालाया नवसंगमे निपुणतां प्रेक्ष्यान्यथाशङ्किनो

भर्तुश्चित्तमवेक्ष्य पङ्कजमुखी तत्पार्श्वकुङ्कुयेऽलिखत् ।

एकं भद्रमतङ्गजं तदुपरि क्रोधात्पतन्तं शिशुं

सिंहीगर्भविनिःसृतार्धवपुषं दृष्ट्वा स हृष्टोऽभवत् ॥ २१ ॥

एणः क्रीडति शूकरश्च खनति द्वीपी च गर्वायते

क्रोष्टा क्रन्दति वल्गते च शशको वेगादुरुर्ध्वावति ।

निःशङ्कैः करिपोतकैर्गिरितटश्चोत्पाद्यते लीलया

हंहो सिंह विना त्वया हि विपिने कीदृग्दशा वर्तते ॥ २२ ॥

कः कः कुत्र न घुर्धुरायितघुरीघोरो घुरेच्छूकरः

कः कः कं कमलाकरं विकमलं कर्तुं करी नोद्यतः ।

के के कानि वनान्यरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यतः

सिंहीस्नेहविलासबद्धवसतिः पञ्चाननो वर्तते ॥ २३ ॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः ।

विक्रमार्जितवित्तस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥ २४ ॥

एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञे ।

सत्त्वोत्कटे मृगपतौ राजेति गिरः परिणमन्ति ॥ २५ ॥

नास्योच्छ्रायवती तनुर्न दशनौ दीर्घौ न दीर्घः करः

सत्यं वारण नैष केसरिशिशुस्त्वाडम्बरैः स्पर्धते ।

तेजोबीजमजेयमस्य हृदये न्यस्तं पुनर्वेधसा
तादृक्त्वादृशमेव येन सुतरां भोज्यं पशुं मन्यते ॥ २६ ॥

अद्यापि न स्फुरति केसरभारलक्ष्मी-
र्न प्रेङ्खति ध्वनितमद्रिगुहान्तरेषु ।

मत्तास्तथापि करिणो हरिणाधिपस्य
पश्यन्ति भीतमनसः पदवीं वनेषु ॥ २७ ॥

कोलः केलिमलंकरोतु करिणः क्रीडन्तु कान्तासखाः
कासारे वनकासराः सरभसं मज्जन्तिवह स्वेच्छया ।
अभ्यस्यन्तु भयोज्झिताश्च हरिणा भूयोऽभिरूपां गतिं
कान्तारान्तरसंचरिष्णुरधुना पञ्चाननो वर्तते ॥ २८ ॥

मातङ्गाः किमु वल्गितैः किमफलैराडम्बरैर्जम्बुकाः
सारङ्गा महिषा मदं व्रजत किं शून्येषु शूरा न के ।
कोपाटोपसमुद्भटोत्कटसटाकोटेरिभारेः शनैः
सिन्धुध्वानिनि हुंकृते स्फुरति यत्तद्गर्जितं गर्जितम् ॥ २९ ॥
यथेष्टं चेष्टध्वं मदमलिनगण्डाः करटिन-

स्तटान्यद्रेर्मन्दं निकषत विषाणैश्च महिषाः ।

सरागं सारङ्गाः सह सहचरीभिर्विचरत

प्रचारः सिंहानामिह हि विधिना हन्त विहतः ॥ ३० ॥

विश्रं वपुः परवधप्रवणं च कर्म तिर्यक्तयैव कथितः सदसद्विवेकः ।
इत्थं न किञ्चिदपि साधु मृगाधिपस्य तेजस्तु तत्स्फुरति यस्य जगद्वराकम् ३१
सामोपायनयप्रपञ्चपटवः प्रायेण ये भीरवः

शूराणां व्यवसाय एव हि परं संसिद्धये कारणम् ।

विस्फूर्जद्विकटाटवीगजघटाकुम्भैकसंचूर्णन-

व्यापारैकरसस्य सन्ति विजये सिंहस्य के मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥

क्षुत्क्षामोऽपि जरान्वितोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टां दश-

मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु गच्छत्स्वपि ।

मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकवद्धस्पृहः

किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ ३३ ॥

शैलशिखानिकुञ्जशयितस्य हरेः श्रवणे

जीर्णतृणं करेण विदधाति कपिश्रृणुः ।

क्षुद्रवधापवादपरिहारमतेः सहत-

स्तस्य गतं बलं किमधुना द्विपयूथभिदः ॥ ३४ ॥

येनानर्गलकालकेलिदलितप्रत्यग्रकादम्बिनी-

धाराधोरणिधौतधातुषु पुरा शैलेषु लीलायितम् ।

सोऽयं शृङ्गनिपातभग्नचरणः स्फारस्फुरत्फेरवी-

फेत्कारैः कुपितोऽपि घृष्यति मुहुः पाणी मृगग्रामणीः ॥ ३५ ॥

अनिशं मतङ्गजानां बृंहितमाकर्ण्यते यथा विपिने ।

मन्ये तथा न जीवति गजेन्द्रपलकवलनः सिंहः ॥ ३६ ॥

जीर्णोऽपि क्रमहीनोऽपि कृशोऽपि यदि केसरी ।

तथापि यूथनाथस्य शङ्कातङ्काय कल्पते ॥ ३७ ॥

खनन्नाखुबिलं सिंहः पाषाणशकलाकुलम् ।

प्राप्नोति नखभङ्गं वा मूषको वा फलं भवेत् ॥ ३८ ॥

सिंहः करोति विक्रममलिकुलझङ्कारभूषिते करिणि ।

न पुनर्नखमुखविलिखितभूतलकुहरस्थिते नकुले ॥ ३९ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं प्राप्यते हि गजदन्तमौक्तिकम् ।

जम्बुकालयगतेऽपि लभ्यते वत्सपुच्छखुरचर्मखण्डकम् ॥ ४० ॥

अस्मिन्नम्भोदवृन्दध्वनिजनितरुषि प्रेक्षमाणेऽन्तरिक्षं

मा काक व्याकुलो भूस्तरुशिरसि शवक्रव्यलेशानशानः ।

धत्ते मत्तेभकुम्भव्यतिकरकरजग्रामवज्राग्रजाग्र-

द्वासव्यासक्तमुक्ताधवलितकवलो न स्पृहामत्र सिंहः ॥ ४१ ॥

ग्रामाणामुपश्लयसीमनि मदोद्रेकस्फुरत्सौष्ठवाः

फेत्कारध्वनिमुद्गिरन्ति बहवः संभूय गोमायवः ।

सोऽन्यः कोऽपि घनाघनध्वनिघनः पारीन्द्रगुञ्जारवः

शुष्यद्गण्डमलोलपुच्छमचलत्कर्णं गजैर्यः श्रुतः ॥ ४२ ॥

रे मातङ्ग मदाम्बुडम्बरतया रोलम्बरोलं वह-

न्वन्यानामवलम्बनं वनमिदं भङ्गं यदुत्कण्ठसे ।

दृष्टस्तत्किमहो महोन्नतधराधौरेयधात्रीधर-

प्रस्थप्रस्थितमेघयूथमथनोत्कण्ठी न कण्ठीरवः ॥ ४३ ॥

यस्यावन्ध्यरुषः प्रतापवसतेर्नादेन धैर्यद्रुहः

शुष्यन्ति स्म मदप्रवाहसरितः सद्योऽपि दिग्दन्तिनाम् ।

दैवात्कष्टदशावशं गतवतः सिंहस्य तस्याधुना

कर्षत्येव करेण केसरसटाभारं जरत्कुञ्जरः ॥ ४४ ॥

यः शौर्यावधिरेव यस्य सहसा दिग्दन्तिनोऽप्यन्तिकं

नायाताः किल येन विन्ध्यवसुधा गम्या न कस्याप्यभूत् ।

तस्मिन्कौतुकिना त्वया करिपतौ लुप्ते कपोलस्थली-

भृङ्गः केसरिवीर संप्रति पुनः कुत्रैष विश्राम्यतु ॥ ४५ ॥

निद्रामुद्रितलोचनो मृगपतिर्यावद्गुहां सेवते

तावत्सैरममी चरन्तु हरिणाः स्वच्छन्दसंचारिणः ।

उन्निद्रस्य विधूतकेसरसटाभारस्य निर्गच्छतो

नादे श्रोतृपथं गते हतधियः सन्त्येव दीर्घा दिशः ॥ ४६ ॥

यद्यपि च दैवयोगात्सिंहः पतितोऽपि दुस्तरे कूपे ।

तदपि हि वाञ्छति सततं करिकुम्भविदारणं मनसि ॥ ४७ ॥

यद्यपि रटति सरोषं मृगपतिपुरतोऽपि मत्तगोमायुः ।

तदपि न कुप्यति सिंहोऽप्यसदृशपुरुषेषु कः कोपः ॥ ४८ ॥

सदा मन्दमदस्यन्दिमातङ्गपिशिताशनः ।

असंपन्नेप्सिताहारस्तृणान्यत्ति न केसरी ॥ ४९ ॥

हेलानिहलियगयन्दकुम्भपयडीपयावपसरस्स ।

सीहस्य मिष्टं समं न विगगहो नेव संधानम् ॥ ५० ॥

जो करिवराण कुम्भे पायन्दाऊण मुत्तिए दलइ ।
सो सीहो विहिवसओ जम्बुयपयघट्टणं सहइ ॥ ५१ ॥

(इति सिंहान्योक्तयः ।)

अथ गजान्योक्तयः ।

आकृष्यन्ते करिणः पङ्कनिमग्ना महाद्विपैरेव ।
प्राप्तापदो महान्त उद्धरणीया महापुंभिः ॥ ५२ ॥

सन्त एव सतां नित्यमापत्तरणहेतवः ।

गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधराः ॥ ५३ ॥

नीवारप्रसवान्नमुष्टिकवलैर्यो वर्धितः शैशवे
पीतं येन सरोजपत्रपुटके होमावशेषं पयः ।

तं पश्चान्मदमन्थरालिवलयव्यालुप्तगण्डं गजं
सानन्दं सभयं च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः ॥ ५४ ॥

कर्णे चामरचारुकम्बुकलिका कण्ठे मणीनां गणः

सिन्दूरप्रकरः शिरःपरिसरे पार्श्वान्तिके किङ्किणी ।

लब्धश्चेन्नृपवाहनेन करिणा बद्धेन भूषाविधि-

स्तान्किं भूधरधूलिधूसरतनुर्मान्यो न वन्यः करी ॥ ५५ ॥

वन्यो हस्ती स्फटिकघटिते भित्तिभागे स्वबिम्बं

दृष्ट्वा कश्चित्प्रतिगजमिव त्वद्विषां मन्दिरेषु ।

हत्वा कोपाद्गलितदशनस्तं पुनर्वीक्षमाणो

मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया भोजराज ॥ ५६ ॥

नीता कुम्भस्थलकठिनता कामिनीनामुरोजैः

स्तेयं कृत्वा धृतमणिगणैः कञ्चुकैरावृतैश्च ।

इत्याख्यातुं नरवरगृहद्वारि कुम्भीन्द्रडिम्भाः

शुण्डादण्डैर्वपुषि बहलां धूलिमुद्धूलयन्ति ॥ ५७ ॥

आधोरणाङ्कुशभयाद्गजकुम्भयुगमं

जातं पयोधरयुगं हृदयेऽङ्गनानाम् ।

SGDF

भिन्नं तथापि नखराङ्कुशघातवेगै-

स्तेनान्यथा भवति याक्षरभालमाला ॥ ५८ ॥

अन्तःसमुत्थविरहानलतीव्रताप-

संतापिताङ्गकरिपुंगव मुञ्च शोकम् ।

धात्रा स्वहस्तलिखितानि ललाटपट्टे

को वाक्षराणि परिमार्जयितुं समर्थः ॥ ५९ ॥

चिन्तामिमां वहसि किं गजयूथनाथ

योगीव योगविनिमीलितनेत्रयुग्मः ।

पिण्डं गृहाण पिब वारि यथोपनीतं

दैवाद्भवन्ति विपदः खलु संपदो वा ॥ ६० ॥

केलिं कुरुष्व परिभुङ्क्ष्व सरोरुहाणि

गाहस्व शैलतटनिर्झरिणीपयांसि ।

भावानुरक्तकरिणीकरलालिताङ्ग

मातङ्ग मुञ्च मृगराजरणाभिलाषम् ॥ ६१ ॥

पीतं यत्र हिमं पयः कवलिता यस्मिन्मृणालाङ्कुरा-

स्तापार्तेन निमज्ज्य यत्र सरसो मध्ये विमुक्तः श्रमः ।

धिक्तस्यैव जलानि पङ्क्तिलयतः पाथोजिनीं मध्नतः

कूलान्युत्खनतः करीन्द्र भवतो लज्जापि नो जायते ॥ ६२ ॥

रेवावारिणि वारणेन विपुले राजीवराजीरजः-

पुञ्जापिञ्जरितोर्मिणि प्रविगलद्धानाम्बुगन्धोत्कटे ।

धौतं येन मृगारिरक्तमसकृद्दन्तान्तराले स्थितं

कौपं सोऽपि पयः पपौ हतविधेः को गोचरे नागतः ॥ ६३ ॥

तापो नापगतस्तृषा न च कृशा धौता न धूलिस्तनो-

र्न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः का नाम केलीकथा ।

दूरोत्क्षिप्तकरेण हन्त करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी

प्रारब्धो मधुपैरकारणमयं झङ्कारकोलाहलः ॥ ३४ ॥

नाभूवन्भुवि यस्य कुत्रचिदपि स्पर्धाकराः कुञ्जराः

सिंहेनापि न लङ्घिता किमपरं यस्योद्धुरा पद्धतिः ।

कष्टं सोऽपि कदर्थ्यते करिवरः स्फारारवैः फेरवै-

रापातालगभीरपङ्कपटलीमग्नोऽद्य भग्नोद्यमः ॥ ६५ ॥

पङ्कमग्नकरिणा न विपङ्क्तिः पश्यतां विधिवलं प्रतिकूलम् ।

यत्स शुद्धधरणीधरसाहसा शूकराजप्रभ एव वियत्सा ॥ ६६ ॥

निमग्नः पङ्केऽस्मिन्ननुभव करीन्द्राधिप दशा-

मभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः ।

वराहे गोमायौ मृगपरिषदि श्वापदकुले

करिष्यन्कार्पण्यं किमुत महिमानं गमयसि ॥ ६७ ॥

सुदुःस्थितः स्थूलमरुस्थलीषु दीनां दशां दैववशात्प्रपन्नः ।

पुरातनाहारविहारनामान्करी करीरेऽपि करं करोति ॥ ६८ ॥

यूथान्यग्रेतनानि प्रचुरबलभृतो बद्धवैरा मृगेन्द्रा

मूलादाकृष्यमाणाः सपदि तटरुहो भूरुहा निःसरन्ति ।

तं दृष्ट्वा गृह्यमाणं हतविधिमनिशं भिल्लपल्लयामधीशं

हस्तालम्बाय केषां कलयति वदनं पङ्कमग्नः करीन्द्रः ॥ ६९ ॥

भो भोः करीन्द्र दिवसानि कियन्ति ताव-

दस्मिन्मरौ समतिवाहय कुत्रचित्त्वम् ।

रेवाजलैर्निजकरेणुकरप्रमुक्तै-

र्भूयः शमं गमयितासि निदाघदाहम् ॥ ७० ॥

रेवापयःकिसलयानि च सल्लकीनां

वन्ध्योपकण्ठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ।

किं ताम्यसि द्विप गतोऽसि वशं करिण्याः

खेहो हि कारणमनर्थपरम्परायाः ॥ ७१ ॥

दन्ते न्यस्तकरः प्रलम्बितशिराः संमील्य नेत्रद्वयं

किं त्वं वारण खिद्यसे वनितया को नाम नो वञ्चितः ।

भूत्वा शान्तमना गृहाण कवलं स्नेहोऽधुना त्यज्यतां
यन्मत्तास्त्वविवेकिनो विषयिणस्ते प्राप्नुवन्त्यापदम् ॥ ७२ ॥

न चरसि गजराजः पल्लवान्सल्लकीनां

न पिबसि गिरिकुण्डे नैर्झरं वारि हारि ।

विततदशनकोटौ दत्तहस्तावलम्बो

वहति विरहखिन्नः प्राणभारं करीन्द्रः ॥ ७३ ॥

न गृह्णाति ग्रासं नवकमलकिञ्जल्किनि जले

न पङ्के बाह्यादं व्रजति विसभङ्गार्धशबले ।

न चैवं प्रेमाद्रार्मपि विषहते नान्यकरिणीं

स्मरन्दावभ्रष्टां हृदयदयितां वारणपतिः ॥ ७४ ॥

पादाघातविघूर्णिता वसुमती त्रासाकुलाः पक्षिणः

पङ्काङ्कानि सरांसि गण्डकषणक्षोदक्षताः शाखिनः ।

प्राप्येदं करिपोतकैर्विधिवशाच्छादूलशून्यं वनं

तत्तन्नाम कृतं विशृङ्खलतया वक्तुं न यत्पार्यते ॥ ७५ ॥

घासग्रासं गृहाण त्यज करिकलभ प्रीतिबन्धं करिण्याः

पाशग्रन्थिघ्नानामविरलमधुना देहि पङ्कानुलेपम् ।

दूरीभूतास्तवैते शबरवरवधूविभ्रमोद्भ्रान्तिदृष्टा

रेवातीरोपकण्ठच्युतकुसुमरजोधूसरा विन्ध्यपादाः ॥ ७६ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-

र्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।

तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा

भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥ ७७ ॥

करटिकरटे अस्यद्धानप्रवाहपिपासया

परिसरसरद्भृङ्गश्रेणी करोति यदा रवम् ।

वदति शिरसः कम्पैर्नास्मान्निवारय वारण

वितर वितरामानं दानं चलाः किल संपदः ॥ ७८ ॥

आरामोऽयमनर्गलेन बलिना भग्नः समग्रो मये-
त्यन्तःसंभृतहर्षवर्धितमदोदग्रः किमुन्माद्यसि ।
मातङ्ग प्रतिवर्षमेव भवतो भावी निदाघञ्वर-
स्तत्रापि प्रतिकारमर्हसि सखे सम्यक्समालोचितुम् ॥ ७९ ॥
गले पाशस्त्रीत्रश्वरणयुगले गाढनिगडो

दृढः स्कन्धे बन्धः शिरसि सृणिपातः खरतरः ।

नरः स्कन्धारूढो बत मरणयोग्येऽपि विषये

न जानीमोऽत्यर्थं द्विरद वद कस्मात्तव मदः ॥ ८० ॥

कौपे पयसि लघीयसि तापेन करः प्रसारितः करिणा ।

सोऽपि न पयसा लिप्तो लाघवमात्मा परं नीतः ॥ ८१ ॥

कौपं वारि विलोक्य वारणपते किं विस्मितेनास्यते

प्रायो भाजनमस्य संप्रति भवांस्तत्पीयतामादरात् ।

उन्मज्जच्छफरीपुलिन्दललनापीनस्तनास्फालन-

स्फारीभूतमहोर्मिनिर्मलजला दूरेऽधुना नर्मदा ॥ ८२ ॥

नो मन्ये दृढबन्धनात्क्षतमिदं नैवाङ्कुशोद्धातनं

स्कन्धारोहणताडनात्परिभवं नैवान्यदेशागमम् ।

चिन्तां मे जनयन्ति चेतसि यथा स्मृत्वा स्वयूथं वने

सिंहत्रासितभीतभीरुकलभा यास्यन्ति कस्याश्रयम् ॥ ८३ ॥

नदीकूलान्भित्त्वा प्रतिविपिनमुत्पाट्य च तरू-

न्मदोन्मत्ताञ्जित्वा करचरणदन्तैः प्रतिगजान् ।

जरां प्राप्यानार्यां तरुणजनविद्वेषजननीं

स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम् ॥ ८४ ॥

करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः ।

मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः ॥ ८५ ॥

मातङ्गानां मदान्धभ्रमदलिपटलश्यामगण्डस्थलानां

ये मार्गेणानुयाताः क्षणमपि हरिणाः क्षुच्छ्रमग्लानदेहाः ।

तेऽवश्यं भूतलस्थैस्तरुणतरुलतापलवैर्यान्ति तृप्तिं

प्रायस्तुङ्गानुगानां भवति न विफलो वाञ्छितार्थामिलाषः ॥ ८६ ॥

भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोर्विशाल-

वंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसंग्रहस्य ।

यस्यानुपप्लुतगतेः परवारणस्य

दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत् ॥ ८७ ॥

अकस्मादुन्मत्तः प्रहरसि किमुच्चक्षितिरुहा-

न्दुतं हस्ताघातैर्दलयसि किमुत्फुल्लनलिनम् ।

वयं जानीमस्ते करिवर बलोद्धारमसमं

सटां सुप्तस्यापि स्पृशसि यदि पञ्चाननशिशोः ॥ ८८ ॥

पत्युर्यत्पतितावशेषकवलग्रासेन वृत्तिः कृता

पीतं यच्च करावगाहकलुषं तत्पीतशेषं पयः ।

प्राणान्पूर्वतरं विहाय तदिदं प्राप्तं करिण्या फलं

यद्वन्धव्रणकातरस्य करिणः क्लिष्टं न दृष्टं मुखम् ॥ ८९ ॥

यदि मत्तोऽसि मतङ्गज किममीभिरसारसरलतरुदलनैः ।

हरिमनुसर खरनखरं व्यपनयति स करटकण्डूतिम् ॥ ९० ॥

मृगा निजक्षुद्रतया सुशीतले निरस्ततीव्रातपदुःखसंकथाः ।

हता महत्त्वे ननु सन्ति दन्तिनो गवेषयन्तः स्वसमं महीरुहम् ॥ ९१ ॥

मीलितेक्षणमिदं विगाहसे वारणेन्द्र गहनं न वीक्षसे ।

अन्तिके तृणविमुद्रिताननः कूप एष खलु दुस्तरस्तव ॥ ९२ ॥

स्वच्छन्दं दलय द्रुमान्कमलिनीरामूलमुन्मूलय

क्रीडालोलकपोलमण्डलचलद्भृङ्गान्मदैर्मोदय ।

दन्ताघातनितान्तकम्पितगिरेः शृङ्गाणि वा पाटय

त्वं तावत्करिराज केसरियुवा यावन्न जागर्ति सः ॥ ९३ ॥

इहानेके सत्यं वृषमहिषमेषाः सुतुरगा

गृहाणि क्षुद्राणां कतिपयतृणैरेव सुखिनः ।

गजानामास्थानं मदसलिलजम्बालितभुवां
तदेको विन्ध्याद्रेर्विपिनमथवा भूपसदनम् ॥ ९४ ॥
लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च मुक्ते ॥ ९५ ॥
निदाघे दाघार्तः प्रचुरतरतृष्णातुरमनाः
सरः पूर्णं दृष्ट्वा त्वरितमुपयातः करिवरः ।
तथा पङ्के ममस्तटनिकटवर्ती ननु यथा
न नीरं नो तीरं द्वयमपि विनष्टं विधिवशात् ॥ ९६ ॥
यदि नाम सर्षपकणं शक्नोति करिः करेण नादातुम् ।
इयतैव तस्य ननु किं पराक्रमग्लानिरिह जाता ॥ ९७ ॥
यदि काको गजेन्द्रस्य विष्टां कुर्वीत मूर्धनि ।
कुलानुरूपं तत्तस्य यो गजो गज एव सः ॥ ९८ ॥
जइ मण्डलेण भसिउं हत्थिं दइण रायमग्गम्मि ।
ता किं गयस्स जुत्तं सुणएण समं कलिं काउम् ॥ ९९ ॥
सूरो सि परदलभञ्जणो सि गरुओ सि भइजाओ सि ।
दाणेण विणा कुञ्जर न सोहए दन्तनिकरडी ॥ १०० ॥
(इति गजान्योक्तयः ।)

अथ हरिणान्योक्तयः ।

..... ।
..... ॥ १ ॥

दूर्वाङ्कुरतृणाहारा धन्यास्ते वै वने मृगाः ।

विभवोन्मत्तचित्तानां न पश्यन्ति मुखानि यत् ॥ २ ॥

कति कति न मदोद्धताश्चरन्ति प्रतिशिखरि प्रतिकाननं कुरङ्गाः ।

कचिदपि पुनरुत्तमा मृगास्ते मदयति यन्मद एव मेदिनीशान् ॥ ३ ॥

इह किं कुरङ्गशावक केदारे कलममञ्जरीं त्यजसि ।

तृणधन्वा तृणबाणस्तृणघटितः कपटपुरुषोऽयम् ॥ ४ ॥

नैतास्ता मलयाद्रिकाननभुवः स्वच्छस्रवन्निर्झरा-

स्तृष्णा यासु निवर्तते तनुभृतामालोकमात्रादपि ।

रुक्षध्वाङ्गपरिग्रहो मरुरयं स्फारीभवन्नातप-

स्ता एता मृगतृष्णिका हरिण हे नेदं पयो गम्यताम् ॥ ५ ॥

स्थलीनां दग्धानामुपरि मृगतृष्णामनुसरं-

स्तृषार्तः सारङ्गो विरमति न खिन्नेऽपि मनसि ।

अजानानस्तत्त्वं न स मृगयतेऽन्यत्र सरसी-

मभूमौ प्रत्याशा न च फलति विघ्नं च कुरुते ॥ ६ ॥

अयि कुरङ्ग कुरङ्गमविक्रमैस्त्यज वनं जवनं गमनं कुरु ।

इह वने हि वनेचरनायकाः सुरभिलोहितलोहितसायकाः ॥ ७ ॥

छित्त्वा पाशमपास्य कूटरचनां भङ्क्त्वा बलाद्वागुरां

पर्यन्तामिशिखाकलापजटिलान्निर्गत्य दूरं वनात् ।

व्याधानां शरगोचरादतिजवादुत्प्लुत्य धावन्मृगः

कूपान्तःपतितः कैरोतु विमुखे किं वा विधौ पौरुषम् ॥ ८ ॥

असकृदसकृन्नष्टां नष्टां मृगो मृगतृष्णिकां

श्रमपरिगतोऽप्युत्पक्षमाक्षः परैति पुनः पुनः ।

गणयति न तन्मायातोयं हतः सलिलाशया

भवति हि मतिस्तृष्णान्धानां विवेकपराङ्मुखी ॥ ९ ॥

द्रुततरमितो गच्छ प्राणैः कुरङ्ग वियुज्यसे

किमिति वलितग्रीवं स्थित्वा मुहुर्मुहुरीक्षसे ।

विदधति हठाद्व्याधानां ते मनागपि नार्द्रतां

कठिनमनसामेषामेते विलोकितविभ्रमाः ॥ १० ॥

१. 'निःसृत्य' इति वा पाठः. २. 'दतिरयादुत्प्लुत्य धावन्' इति वा पाठः. ३. 'करोति विमुखे' इति वा पाठः.

प्रियायां स्वैरायामतिकठिनगर्भालसतया

किराते चाकर्णीकृतधनुषि धावत्यनुपदम् ।

प्रियाप्रेमप्राणप्रतिभयवशाज्जातविवशो

मृगः पश्चादालोकयति च मुहुर्याति च मुहुः ॥ ११ ॥

रज्ज्वा दिशः प्रवितताः सलिलं विषेण

पाशैर्मही हुतभुजाद्वलिता वनान्ताः ।

व्याधाः पदान्यनुसरन्ति गृहीतचापाः

कं देशमाश्रयति यूथपतिर्मृगाणाम् ॥ १२ ॥

त्यक्तं जन्मवनं तृणाङ्कुरवती मातेव मुक्ता स्थली

विश्रामस्थितिहेतवो न गणिता बन्धूपमाः पादपाः ।

बालापत्यवियोगदुःखविधुरा मुक्तार्धमार्गे मृगी

मार्गान्तःपदवीं तथाप्यकरुणा व्याधा न मुञ्चन्त्यमी ॥ १३ ॥

अन्यास्ता मलयाद्रिकाननभुवः स्वच्छस्रवन्निर्झरा-

स्तृष्णा यासु निवर्तते तनुभृतामालोकमात्रादपि ।

रूक्षध्वाङ्गपरिग्रहो मरुरयं स्फारीभवद्भ्रान्तय-

स्ता एता मृगतृष्णिका हरिण हे नेदं पयो गम्यताम् ॥ १४ ॥

अयि कुरङ्ग तपोवनविभ्रमादुपगतोऽसि किरातपुरीमिमाम् ।

इह न पश्यसि दारय मारय अस पिबेति शुकानपि जल्पतः ॥ १५ ॥

किं जातैर्बहुभिः करोति हरिणी पुत्रैरकार्यक्षमैः

पर्णं वापि वनान्तरे प्रचलिते ये पान्ति भीतिं गताः ।

एकेनैव करीन्द्रदर्पदलनव्यापारबद्धस्पृहा

सिंही दीर्घपराक्रमेण मनसा पुत्रेण गर्वायते ॥ १६ ॥

किमेतद्विशङ्कितः शिशुकुरङ्गलोलक्रमं

परिक्रमितुमीहसे विरमते विशून्यं वनम् ।

स्थितोऽत्र गजयूथनाथमथनोच्छलच्छोणित-

च्छटापटलपाटलोत्कटसटाभरः केसरी ॥ १७ ॥

अल्पीयःस्खलनेन यत्र पतनं कृच्छ्रेण यत्रोन्नति-

द्वारे वेत्रलतावितानगहने कष्टप्रवेशक्रमः ।

हे सारङ्ग मनोरमा वनभुवस्त्यक्त्वा विशेषार्थिना

किं भूभृत्कटकस्थितिव्यसनिना व्यर्थं खुराः शातिताः ॥ १८ ॥

सारङ्गो न लतागृहेषु रमते नो पांशुले भूतले

नो रम्यासु वनोपकण्ठहरितच्छायासु शीतास्वपि ।

तामेवायतलोचनामनुदिनं ध्यायन्मुहुः प्रेयसी

शैलेन्द्रोदरकन्दरासु गतभीः शृङ्गावशेषः स्थितः ॥ १९ ॥

वसन्त्यरण्येषु चरन्ति दूर्वां पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि ।

तथापि वध्या हरिणा नराणां को लोकमाराधयितुं समर्थः ॥ २० ॥

आः कष्टं वनवासिसाम्यकृतया सिद्धाश्रमश्रद्धया

पल्लीं बालकुरङ्गं संप्रति कुतः प्राप्तोऽसि मृत्योर्मुखम् ।

यत्रानेककुरङ्गकोटिकदनक्रीडोल्लसल्लोहित-

स्रोतोभिः परिपूरयन्ति परिखामुड्डामराः पामराः ॥ २१ ॥

स्वच्छन्दं हरिणेन या विरहिता दैवात्समासादिता

भङ्गप्रस्तुतदुग्धबिन्दुमधुरा शालेर्नवा मञ्जरी ।

निःश्वासानलदग्धकोमलतृणप्रख्यापितान्तर्व्यथ-

स्तामेव प्रतिवासरं मुनिरिव ध्यायन्वने शुष्यति ॥ २२ ॥

सेयं स्थली नवतृणाङ्कुरजालमेत-

त्सेयं मृगीति हृदि जातमदः कुरङ्गः ।

नैवं तु वेत्ति यदिहान्तरितो लताभि-

रायाति सज्जितकठोरशरः किरातः ॥ २३ ॥

रोमन्थमारचय मन्थरमेत्य निद्रां

मुञ्च श्रमं तदनु संचर रे यथेच्छम् ।

दूरे स पामरजनो मुनयः किलैते

निष्कारणं हरिणपोत बिभेषि कस्मात् ॥ २४ ॥

(इति हरिणान्योक्तयः ।)

अथ शशस्य ।

सिंहिकासुतसंनस्तः शशः शीतांशुमाश्रितः ।

जग्रास साश्रयं तत्र तमन्यः सिंहिकासुतः ॥ २५ ॥

अथ जम्बुकस्य ।

परिहीने सिंहेन वने फेत्कुरु रे फेरण्ड ।

तद्गन्धेऽपि यदि केदं क भवानुन्मुखतुण्ड ॥ २६ ॥

अथ करभान्योक्तयः ।

वपुर्विषमसंस्थानं कर्णज्वरकरो रवः ।

करभस्याशुगत्यैव छादिता दोषसंहतिः ॥ २७ ॥

कुमुदशबलैः फुल्लाम्भोजैः सरोभिरलंकृतां

मरकतमणिश्यामां शष्पैर्विहाय वनस्थलीम् ।

सरति करभो यद्वृक्षाणां चरन्मरुधन्वनां

परिचयरतिः सा दुर्वारा न सा गुणवैरिता ॥ २८ ॥

यस्मिन्नुच्चैर्विषमगहनान्तर्गता स्वादुवल्ली

स्वेच्छं भुक्ता सरलितगलेनात्मचेतोनुलम्भा ।

तत्तारुण्यं करभ गलितं कुत्रचित्प्राग्विलासो

यत्स्वाधीनं यदपि सुलभं तेन तुष्टिं विधेहि ॥ २९ ॥

करभदयिते योऽसौ पीलुस्त्वया मधुलुब्धया

व्यपगतघनच्छायस्त्यक्तो न सादरमीक्षितः ।

चलकिसलयैः सोऽपीदानीं प्ररूढनवाङ्कुरः

करभदयितावृन्दैरन्यैः सुखं परिभुज्यते ॥ ३० ॥

सरलितगलनालीं कन्धरां धत्स्व धैर्या-

त्करभ लघुशमीनां ग्रासमेकं गृहाण ।

सरसमधुरपत्रास्ताः कुतः पीलुजात्यो

हरिततरुकरीरे रे मरौ याः प्ररूढाः ॥ ३१ ॥

न भवति मिथुनानां प्रेमलावण्ययोगा-

ज्जनयति सुखमन्तः कस्यचित्कोऽपि दृष्टः ।

पतति झटिति दृष्टिर्मुग्धदासेरकाणां

जरठभुरठवल्लीपिञ्जरासु स्थलीषु ॥ ३२ ॥

रूक्षं वपुर्न च विलोचनहारि रूपं

न श्रोत्रयोः सुखदमारटितं कदाचित् ।

इत्थं न साधु तव किञ्चिदिदं तु साधु

तुच्छे रतिः करभ कण्टकिनि द्रुमे यत् ॥ ३३ ॥

वक्रग्रीवमुदीक्षसे किमपरं बाष्पाम्बुपूर्णेक्षणः

कः खेदः करभाधुना तृणलवैः संतर्पयैतद्भुपुः ।

कान्तान्तःस्फुरदोष्ठसंपुटभुवो ये लीलयान्दोलिता

मुक्तास्ते नवनीलकन्दलदलश्यामाः शमीपल्लवाः ॥ ३४ ॥

आयाते दयिते मरुस्थलभुवां संचिन्त्य दुर्लङ्घ्यतां

गेहिन्या परितोषबाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे ।

दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान्स्वेनाञ्चलेनादरा-

दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभाराग्रलग्नं रजः ॥ ३५ ॥

चर करभ यथेष्टं सन्ति शष्पाण्यरण्ये

बहुकुसुमसमृद्धाः पीलवश्च स्थलीषु ।

यदि गणयसि वाक्यं बन्धुवर्गस्य दूरा-

त्परिहर करवीरं मृत्युरेवैष सद्यः ॥ ३६ ॥

चिन्तां मुञ्च गृहाण पल्लवमिमं प्लक्षस्य शालस्य वा

गाङ्गस्यास्य जलस्य चन्द्रवपुषो गण्डूषमेकं पिब ।

जीवन्द्रक्ष्यसि ताः पुनः करभ हे दासेरकीया भुवो

रम्याः पीलुशमीकरीरवदरीकूजत्कपोताकुलाः ॥ ३७ ॥

यस्यासीन्नवपीलुपत्रवदरग्रासोऽपि संतुष्टये

दीर्घाध्वन्यनुगम्यते न पदवी यस्य स्वयूथैरपि ।

सोऽयं संप्रति याति बालकरभः क्षीणोद्यमः क्षामतां
 मन्ये नूनमनेन दैवहतकेनास्वादितं तन्मधु ॥ ३८ ॥
 पीलूनां फलवत्कषायमधुरं रोमन्थयित्वा मरौ
 शाखाग्रं यदस्वादि चारु करभीवक्त्रार्पितं प्रेमतः ।
 तत्स्मृत्वा करभेण खेदविधुरं दीर्घं तथा फूत्कृतं
 प्राणानामभवत्तदेव सहसा प्रस्थानतूर्यं यथा ॥ ३९ ॥
 दुष्प्रापमम्बु पवनः परुषोऽतितापी
 छायाभृतो न तरवः फलभारनम्राः ।
 इत्थं सखे करभ वच्मि भवन्तमुच्चैः
 का संगतिः खलु मरौ रमणीयतायाः ॥ ४० ॥
 अस्याननस्य भवतः खलु कोटिरेषा
 कण्टारिका यदि भवेदविशीर्णपर्णा ।
 योग्याः कथं करभकल्पतरोलताया-
 स्ते पल्लवा विमलविद्रुमभङ्गभाजः ॥ ४१ ॥
 दासेरको रसत्येष युक्तं भारेऽधिरोहति ।
 उत्तार्यमाणेऽपि पुनर्यत्तत्र किमु कुर्महे ॥ ४२ ॥
 करभदयिते यत्तत्पीतं सुदुर्लभमेकदा
 मधु वनगतं तस्यालाभे विरौषि किमुत्सुका ।
 कुरु परिचितैः पीलोः पत्रैर्धृतिं मरुगोचरै-
 र्जगति सकले कस्यावाप्तिः सुखस्य निरन्तरा ॥ ४३ ॥
 करभ किमिदं दीर्घश्वासैर्दुनोषि शरीरकं
 विरम शठ हे कस्यात्यन्तं सखे सुखमागतम् ।
 चर किसलयं पीलोः स्वच्छो विमुञ्च मधुस्पृहां
 पुनरपि भवान्कल्याणानां भविष्यति भाजनम् ॥ ४४ ॥
 (इति करभान्योक्तयः ।)

अथ वृषभान्योक्तयः ।

नास्य भारग्रहे शक्तिर्न च वाहगुणः कृषौ ।

देवागारबलीवर्दस्तथाप्यश्नाति भोजनम् ॥ ४५ ॥

गुणानामेव दौरात्म्याद्भुरि धुर्यो नियुज्यते ।

असंजातकिणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गली ॥ ४६ ॥

गुरुशकटधुरंधरस्तृणाशी समविषमेषु चला गलापकर्षी ।

जगदुपकरणं पवित्रयोनिर्नरपशुना कथमुपनीयते गवेन्द्रः ॥ ४७ ॥

अनसि सीदति सैकतवर्त्मनि प्रचुरभारभरक्षपितौक्षके ।

गुरुभरोद्धरणोद्धुरकंधरं स्मरति सारथिरद्य धुरंधरम् ॥ ४८ ॥

मार्गे कर्दमदुर्गमे जलभृते गर्ताशतैराकुले

खिन्ने शाकटिके भरेऽतिविषमे दूरं गते रोधसि ।

शब्देनैतदहं ब्रवीमि महता कृत्वोच्छ्रितां तर्जनी-

मीदृक्षे विषमे विहाय धवलं वोढुं क्षमः को धुरम् ॥ ४९ ॥

दन्ताः सप्त चलं विषाणयुगलं पुच्छाञ्चलः कर्बुरः

कुक्षिश्चन्द्रकितो वपुः कुसुमितं सत्त्वच्युतं चेष्टितम् ।

अस्मिन्दुष्टवृषे वृषामितगुणग्रामानभिज्ञात्मनो

ग्रामीणस्य तथापि चेतसि चिरं धुर्यभ्रमः स्फूर्जति ॥ ५० ॥

गुरुर्नायं भारः कचिदपि न पन्थाः स्थपुटितो

न ते कुण्ठा शक्तिर्वहनमपि तेऽङ्गे न विकलम् ।

इह द्रङ्गे नान्यस्तव गुणसमानस्तदधुना

धुनानेन स्कन्धं धवल किमु मुक्तः पथि भरः ॥ ५१ ॥

न ध्वानं कुरुषे न यासि विकटं नोच्चैर्वहस्याननं

दर्पान्नो लिखसि क्षितिं खुरपुटैर्नावज्ञया वीक्षसे ।

किं तु त्वं वसुधातलैकधवल स्कन्धाधिरूढे भरे

तीराण्यद्य तटीविटङ्कविषमाण्युलङ्घयन्वीक्ष्यसे ॥ ५२ ॥

यथा भग्नः पन्था परुषविषमप्रावगहनो

गलीनां नाङ्गानि स्पृशति च यथा सारथिरथम् ।

यथा चैते दृष्टाः खवलितभुवो यान्ति वृषभा-

स्तथा दूरीभूतः स खलु धवलो नूनमधुना ॥ ५३ ॥

ऊढा येन महाधुरा सविषमा मार्गे सदैकाकिना

सोढो येन कदाचिदेव न नगे गोष्ठेन शण्डध्वनिः ।

आसीनस्य गवाङ्गणैकतिलकस्तस्यैव संप्रत्यहो

धिक्रष्टं धवलस्य जातजरसो गोः पण्यमुद्धोष्यते ॥ ५४ ॥

अद्रौ जीर्णदरीषु संकटसरित्तीरेषु निमोचते

ऊढा येन वृषेण धूर्बलवता यूना द्वितीयेन या ।

तां वृद्धोऽपि कृशोऽपि दुर्वह धुरं वोढुं स एव क्षमो

रथ्यामङ्गलकैः समेत्य बहुभिर्नाकृष्यतेऽन्यैर्वृषैः ॥ ५५ ॥

यस्यादौ व्रजमण्डनस्य वहतो गुर्वी धुरं धैर्यतो

धौरैर्यैः प्रगुणैः कृतो न युगपत्स्कन्धः समस्तैरपि ।

तस्यैव श्लथकम्बलस्य धवलस्योत्थापने सांप्रतं

द्रङ्गेऽत्रैव जरावशादिततनोगोः पुण्यमुद्धोष्यते ॥ ५६ ॥

एतानि बालधवल प्रविहाय कामं

गोष्ठाङ्गणे तरलतर्णकचेष्टितानि ।

स्कन्धं निधेहि धुरि पूर्वधुरीणमुक्तो

नेतव्यतामुपगतोऽस्ति तवैष भारः ॥ ५७ ॥

न लिखसि खुरैः क्षोणीपृष्ठं न नर्दसि सादरं

प्रकृतिपुरुषं प्राप्याप्यग्रे न कुप्यसि गोवैरम् ।

वहति च धुरं धुर्यो धैर्यादनुद्धतकन्धरो

जगति गुणिनः कार्यौदार्यात्परानतिशेते ॥ ५८ ॥

(इति वृषभान्योक्तयः ।)

अथ भषणान्योक्तयः ।

आबद्धकृत्रिमसटाविकटांसर्वृत्ति-

रारोपितो मृगपतेः पदवीं यदि श्वा ।

मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य

नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥ ५९ ॥

खल्पस्त्रायुवसावशेषमलिनं निर्मासमप्यस्थिकं

श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न च तत्तस्य क्षुधः शान्तये ।

सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं

सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥ ६० ॥

पिब पयः प्रसर क्षितिपान्तिकं कलय कांचन काञ्चनशृङ्खलाम् ।

इदमवद्यतमं तु यदीहसे भषण संप्रति केसरिणस्तुलाम् ॥ ६१ ॥

(इति भषणान्योक्तयः ।)

अथ सर्पान्योक्तयः ।

यस्मै ददाति विवरं भूमिः फूत्कारमात्रभीतेव ।

आशीविषः स दैवाड्डोम्बकरणडस्थितिं सहते ॥ ६२ ॥

दुश्चरितैरेव निजैर्भवति दुरात्मा हि शङ्कितो नित्यम् ।

दर्शनपथमापन्नं पन्नगकुलमाकुलीभवति ॥ ६३ ॥

अहिरहिरिति संभ्रमपदमितरजने किमपि कातरे भवतु ।

विहगपतेराहारः स तु सरलमृणालदलरुचिरः ॥ ६४ ॥

रे रे सर्प विमुञ्च दर्पमसमं किं स्फारफूत्कारतो

विश्वं भापयसे क्वचित्कुरु बिले स्थानं चिरं नन्दतु ।

नो चेत्प्रौढगरुत्स्फुरत्तरमरुद्धाधूतपृथ्वीधर-

स्ताक्षर्यो भक्षयितुं समेति झगिति त्वामद्य विद्वेषवान् ॥ ६५ ॥

मौलौ सन्मणयो गृहं गिरिगुहा त्यागः किलात्मत्वचो

निर्यन्नोपचितैश्च वृत्तिरनिलैरेकत्र चर्येदृशी ।

अन्यत्रानृजुवर्मता द्विरसना वक्त्रे विषं वीक्षणं
 सर्वामङ्गलसूचकं कथय भो भोगिन्सखे किं न्विदम् ॥ ६६ ॥
 भेकेन कणता सरोषपरुषं यत्कृष्णसर्पानने
 दातुं कर्णचपेटमुज्झितभिया हस्तः समुल्लासितः ।
 यच्चाधोमुखमक्षिणी पिदधता नागेन तूष्णीं स्थितं
 तत्सर्वं विषमन्त्रिणो भगवतः कस्यापि विस्फूर्जितम् ॥ ६७ ॥
 (इति सर्पान्योक्तयः ।)

अथ शेषनागस्य ।

इलातलभराक्रान्तग्रीवां मा शेष वक्रय ।
 त्वयि दुःखिनि चैकस्मिञ्जीवलोकः सदा सुखी ॥ ६८ ॥
 युक्तोऽसि भुवनभारे मा वक्रां वितनु कन्धरां शेष ।
 त्वय्येकस्मिन्दुःखिनि सुखितानि भवन्ति भुवनानि ॥ ६९ ॥
 ।
 ॥ ७० ॥
 (इति शेषनागान्योक्तयः ।)

अथ जलचराधिकारपद्धतौ प्रथमं मत्स्यस्यान्योक्तयः ।

शफर संहर चञ्चलतामियं चिरमगाधजलप्रणयी भव ।
 इह हि कूजितमञ्जुलजालके वसति तत्र बकोटकुटुम्बकम् ॥ ७१ ॥
 कैवर्तकर्कशकरग्रहणच्युतोऽपि

जाले पुनर्निपतितः शफरो वराकः ।

जालात्पुनर्विगलितो गलितो बकेन

वामे विधौ क्व नु सुखं व्यसनागमेषु ॥ ७२ ॥

अथ दर्दुरान्योक्तयः ।

किं नाम दर्दुर दुरध्यवसाय सायं

कायं निपीड्य न्निनदं कुरुषे रुषेव ।

एतानि केलिरसितानि सितच्छदाना-

माकर्ण्य कर्णमधुराणि न लज्जितोऽसि ॥ ७३ ॥

हंहो शालूरवीराः कथमिति कुरुत प्रावृषेण्याम्बुवाह-

व्यूहादासाद्य सद्योऽप्यभिनवविभवं गर्वकोलाहलानि ।

सर्तव्यः सोऽपि कालः कमलकुलरिपुश्चण्डमार्तण्डधामा

नामापि श्रोत्रपात्रं न भवति भुवने यत्र युष्मद्विधानाम् ॥ ७४ ॥

रेरे भेक गलद्विवेककटुकं किं रारटीप्युत्कटो

मत्तैव क्वचनापि कूपकुहरे त्वं तिष्ठ निर्जीववत् ।

सर्पोऽयं स्वमुखप्रसृत्वरविषज्वालाकरालो महा-

ज्जिह्वास्तव कालवत्कवलनाकाङ्क्षी यदाजग्मिवान् ॥ ७५ ॥

एतस्मिन्सरसि प्रसन्नपयसि प्राणत्रुटत्तालुना

किं कोलाहलडम्बरेण खलु रे मण्डूक मूकीभव ।

उन्मीलन्नयनावलीदलचललक्ष्मीरणन्नूपुर-

व्याहारप्रतिवादिनः प्रतिदिनं प्रेषन्ति हंसस्वनाः ॥ ७६ ॥

रे पक्षिन्नागतस्त्वं कुत इह सरसस्तत्कियद्भो विशालं

किं मद्भाम्नोऽपि बाढं नहि नहि सुमहत्पाप मा ब्रूहि मिथ्या ।

इत्थं कूपोदरस्थः शपति तटगतं दर्दुरो राजहंसं

नीचः खल्पेन गर्वी भवति हि विषमो नापरो येन दृष्टः ॥ ७७ ॥

तावद्गर्जति मण्डूकः कूपमाश्रित्य निर्भयः ।

यावत्करिकराकारं कृष्णसर्पं न पश्यति ॥ ७८ ॥

(इति दर्दुरान्योक्तयः ।)

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारकवृ-
न्दारकरान्यपरमगुरुभट्टारकश्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्यपण्डितहंसविजयगणिस-
मुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां स्थलचरजलचरान्योक्तिनिरूपको द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥

तृतीयः परिच्छेदः ।

SGDF

ज्ञाने पदार्थाः प्रतिबिम्बय यस्यानेके निवासं दधिरे विबाधम् ।

स्फटामिषात्ससनयारिपुत्वं त्यक्त्वा च तस्थुः स सुखाय पार्श्वः ॥ १ ॥

विज्ञातनिःशेषपदार्थसार्थं प्रबर्हवर्हिर्मुखनाथपूज्यम् ।

सुवर्णवर्णं जिनैवर्धमानं गिरामधीशं स्मृतिमानदोऽहम् ॥ २ ॥

अथ चित्रप्रक्रमः ।

तत्रादौ सप्तदशचित्रगर्भिताष्टादशारचक्रबन्धचित्रेण परमगुरुभट्टारक-
श्रीविजयानन्दसूरीश्वराणां स्तुतिमाह —

दक्षलक्षक्षमः सुश्रीर्जयाय यतिपुंगव ।

वल्गुभाभारवन्नित्यं भव क्षिप्तभवश्रम ॥ ३ ॥

इति कलशः ॥ १ ॥

दयावन्भगवन्भाविलोककोकखगोपम ।

महासौख्यं सतां दद्याः पुण्यविष्टरवारिद ॥ ४ ॥

धनुः ॥ २ ॥

दमवंस्त्वं गतव्याज जनानां सकलामद ।

दवतुल्य मकान्तारे तारं यच्छ शिवं दमम् ॥ ५ ॥

शक्तिः ॥ ३ ॥

इतोऽष्टादशारचक्रबन्धचित्रस्यावचूरिः ।

दक्षेति । हे यतिश्रेष्ठ, हे मनोहरप्रभासमूहवन्, हे निरस्तसंसारायास, त्वं मम
जयाय भव । कथम् । नित्यम् । कीदृशस्त्वम् । दक्षाणां लक्षाणि दक्षलक्षाणि तेषु क्षमः
समर्थः अतिचातुर्यवत्त्वात्, यद्वा दक्षलक्षवत्क्षमा यस्य, अथवा दक्षलक्षैः क्षमो युक्तः
दक्षलक्षक्षमः । 'परिपाठ्यां क्षमं शक्ते हिते युक्ते क्षमावति' इति हैमानेकार्थकोशः ।
पुनः कीदृशस्त्वम् । सु शोभना श्रीः शोभा लक्ष्मीर्वा यस्य सः ॥ ३ ॥ कलशः ॥ १ ॥
हे कृपावन्, हे ज्ञानवन्, भावस्तुरीयो धर्मः स विद्यते येषां ते भाविनस्ते च ते लो-
काश्च त एव चक्रवाकास्तेषु सूर्यस्येव उपमा यस्य तत्संबुद्धिः, त्वं साधूनां महच्च तत्सौख्यं
च महासौख्यं दद्याः । कीदृशस्त्वम् । पुण्यमेव विष्टरो वृक्षस्तस्मिन् वारि ददातीति
वारिदो मेघः । 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति निपातितः ॥ ४ ॥ धनुः ॥ २ ॥ हे गुरो, त्वं
जनानां निरुपद्रवं दमं उपशमं यच्छ देहि । कथम् । तारं यथा भवति तथा । हे दमवन्,

१. विज्ञातो निःशेषेण पदार्थानां सार्थः समूहो येन स तम्; एतेन ज्ञानातिशयः. २. ब-
र्हिर्भिर्मुखं येषां ते बर्हिर्मुखा देवाः प्रबर्हाः प्रकृष्टाश्च ते बर्हिर्मुखाश्च प्रबर्हवर्हिर्मुखाः तेषां
नाथाः स्वामिनश्चतुःषष्टीन्द्राः प्रबर्हवर्हिर्मुखनाथाः तैः पूज्यम्. एतेन पूजातिशयः. ३. ज-
यति रागद्वेषाद्यरीन्वशीकरोतीति जिनः जिनश्चासौ वर्धमानश्च तम्. एतेनापायागमाति-
शयः. ४. गिरामधीशमित्यत्र वचनातिशयः । अस्मिन्पथे चत्वारोऽतिशयाः सूच्यांचक्रिरे.

दनुजार्थर्च्य मा देयाः प्राणिनाममलासम ।

मतिप्रष्ठ गतायास त्वया धीररतिप्रद ॥ ६ ॥

वज्रम् ॥ ४ ॥

दन्ततर्जितसत्सूनचक्रवाल स्य तत्त्वद ।

दक्षमुख्य दरं कामं घनं मम प्रियंवद ॥ ७ ॥

दयोदयदयोन्माददवदाहनवाम्बुद ।

दम्भदस्यो सदाशर्मकण्टकस्वाङ्ग शंकर ॥ ८ ॥ (युग्मम्)

द्वाभ्यां खङ्गम् ॥ ५ ॥

दत्स्व वितरणं शंसूर्वतीश स्मरशंकर ।

रसास्पृशां गुरो तीव्र सूरि सिद्धेर्निरन्तरम् ॥ ९ ॥

मुसलम् ॥ ६ ॥

इदं संबोधनं सहेतुकम् । 'स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरीकर्तुमीश्वरः' इत्युक्तत्वात् । हे निः-
कपट । मायारहित इत्यर्थः । कलया सह वर्तत इति सकलः तत्संबुद्धिः, हे मदरहित,
हे दवसदृश, दाहकत्वात् । कस्मिन् रोगवने ॥ ५ ॥ शक्तिः ॥ ३ ॥ दैत्यानामरयो
देवास्तैरर्च्यस्तत्संबुद्धिः, हे अमल कर्ममलरहित, मत्स्या प्रष्ठः प्रधानस्तत्संबुद्धिः, हे गत-
प्रयास, हे धीररतिप्रद धीर्बुद्धिस्तया राजन्त इति धीरा मेधाविनस्तेषां रतिः सुखं प्रकर्षेण
ददातीति तत्संबुद्धिः, यद्वा हे धीर बुद्ध्या विराजमान, हे रतिप्रद हे सुखप्रद, त्वया
प्राणिनां मा लक्ष्मीर्देया । हे असम न समस्तुल्यो जगति कोऽपि यस्य, यद्वा मया लक्ष्म्या
सहवर्तमानः समः न समोऽसमः । निःपरिग्रह इत्यर्थः । तत्संबुद्धिः ॥ ६ ॥ वज्रम्
॥ ४ ॥ दन्तैस्तर्जितं सत् शोभनं सूनानां प्रसूनानां चक्रवालं समूहो येन तत्संबुद्धिः, हे
तत्त्वदायक, दक्षेषु मुख्यो दक्षमुख्यः तत्संबुद्धिः, हे मधुरभाषक, त्वं काममत्यर्थं मम
भयं स्य । 'षोऽन्तकर्मणि' इति धातोः स्फोटय ॥ ७ ॥ दयाया उदयो दयोदयः तं
दयते ददातीति दयोदयदयस्तत्संबुद्धिः । उन्मादो मोहोदयाच्चित्तविप्लवः स एव
दवदाहो वनवह्निस्तत्र नवाम्बुदो यः स तत्संबुद्धिः, दम्भः कपटं तस्य दस्युर्द्वेषा
तत्संबुद्धिः । 'दस्युः सपत्नो सहनो विपक्षः' इति हैमः । सदा निरन्तरं शर्मणः कण्टको
रोमाञ्चः स्वस्वाङ्गे यस्य तत्संबुद्धिः । शं सुखं करोतीति शंकरस्तत्संबुद्धिः ॥ ८ ॥ द्वाभ्यां
खङ्गम् ॥ ५ ॥ हे त्रतिनामीश, हे स्मरशंकर स्मरे शंकर ईश इव, हे तीव्र तीव्रतपःकर-
णात्, यद्वा तपस्युकट । 'तीव्रं कटूष्णात्यर्थेषु' इति हैमानेकार्थकोशः । हे सूरि सूरिपद-
धारक, हे गुरो गृणाति हिताहितमुपदिशतीति गुरुस्तत्संबोधनं, त्वं नित्यं सिद्धेर्वितरणं
दानं दत्स्व । केषाम् । रसां पृथ्वीं स्पृशन्ति ते रसास्पृशस्तेषां पुंसां शं सुखं तस्य सूरुत्प-

दक रदुवने भूरि कल्याणं वह सुन्दर ।

रणरोगविनिर्मुक्त द्रव गङ्गाम्बुनिर्मल ॥ १० ॥

अर्धभ्रमः ॥ ७ ॥

दन्तावलग सद्रंशेश्वर भद्रभरं किल ।

रयान्मम प्रदेहि त्वं शमवान्वारिजक्रम ॥ ११ ॥

शरः ॥ ८ ॥

दर्भाग्रप्रतिभं देवं मनसा ततसानम ।

महप्रदगुणागारं वरदासं सदारवम् ॥ १२ ॥

रथपदम् ॥ ९ ॥

दम्भोलिर्गदशैलेऽकं छिन्धि रध्य घनारव ।

वर्यश्रीवन्तसंजात तमोद मम सन्नत ॥ १३ ॥

भल्लः ॥ १० ॥

तिस्थानं तत्संबुद्धिः ॥९॥ मुसलम् ॥६॥ हे दक, कस्मिन् । रदुवने रं ध्यानमर्थच्छुभध्यानं तदेव दुर्द्धमस्तस्य वनं तस्मिन् । 'रं क्लीबे रुधिरे मूर्ध्नि ध्याने (व्यो)योमाण्डकुक्षिषु' इत्येकाक्षरा-
नेकार्थनामकोशे । हे सुन्दर सुन्दराकृते, हे रणरोगविनिर्मुक्त रणाश्च रोगाश्च तैर्विनिर्मुक्त,
हे द्रव द्रः स्वर्णं तस्येव उपमा यस्य । 'द्रः कामरूपिणि स्वर्णे' 'वः पश्चिमदिगीशे स्यादौपम्ये
पुनरव्ययम्' इति हैमानेकार्थकोशे । हे गङ्गाम्बुनिर्मल गङ्गाम्बुवन्निर्मल निरतिचारचारित्राच-
रणात् । त्वं भूरि कल्याणं वह प्रापय ॥१०॥ अर्धभ्रमः ॥७॥ किलेति सत्ये । हे दन्तावलग
हे गजगते, दन्तावल इव गच्छतीति तत्संबुद्धिः । 'दन्तावलः करटिकुञ्जरकुम्भिपीलवः' इति
हैमः । हे सद्रंश सञ्छोभनो वंशोऽन्वयो यस्य तत्संबुद्धिः, हे ईश्वर हे ऐश्वर्यवन् ज्ञानाद्यधि-
समृद्धत्वात्, यद्वा सञ्छोभनश्चासौ वंशः प्राच्यवंशश्च तस्येश्वरस्तत्संबुद्धिः, हे वारिजक्रम
वारिजे कमले इव क्रमौ यस्य, यद्वा वारिजं क्रमयोर्यस्य तत्संबोधनं, त्वं शीघ्रं मम भद्रभरं
कल्याणसमूहं प्रदेहि । कीदृशस्त्वम् । शमवान् शमगुणयुक्तः ॥ ११ ॥ शरः ॥ ८ ॥
दर्भाग्रेति । हे ततस तता विस्तीर्णा सा लक्ष्मीर्यस्य । 'ता सा श्रीः कमलेन्दिरा' इति हैमः ।
तत्संबुद्धिः ईदृगू हे जन, त्वं देवं दीव्यति ज्ञानश्रिया दीप्यत इति देवः, यद्वा दीव्यते
विश्वमनेनेति देवस्तं अर्थात् गणनाथं मनसा कृत्वा आनमेति संबन्धः, कीदृशं देवम् ।
कुशाग्रीयमतिम् । पुनः कीदृशम् । महानुत्सवान्प्रददति ते महप्रदाः एवंविधाश्च ते गुणाश्च
तेषामगारं गृहम् । पुनः कीदृशम् । वरः प्रधानो दासः प्रभावो यस्य, यद्वा वराः प्रधाना
दासाः सेवका यस्य तम् । 'नवनीते प्रभावेऽग्नौ दासो धीवरभृत्ययोः' इति हैमानेका-
र्थकोशः । पुनः कीदृशम् । सञ्छोभन आरवो ध्वनिर्यस्य तम् ॥ १२ ॥ रथपदम्
॥ ९ ॥ हे वर्यश्रीवन्तसंजात वर्यश्चासौ श्रीवन्तश्च तस्मात्संजातस्तत्संबोधनं, त्वं मम

दमीश त्वां सुधीराहमानमामि ननाजित ।

तत्त्ववित् तततावेश्म स्मरमाननगेऽच्युत ॥ १४ ॥

श्रीकरी ॥ ११ ॥

दं तन्यास्त्वं तमःकंसकंसशत्रो सुरैर्नतः ।

तनुप्रभाजितस्वर्ण मुनिप्रभुर्मतो भुवि ॥ १५ ॥

हलम् ॥ १२ ॥

दक्षमानम मेधाविदकजातलसद्रविम् ।

विनतं वासवैः स्फारं विमलं सूरिसिन्धुरम् ॥ १६ ॥

छत्रम् ॥ १३ ॥

अकं दुःखं पापं वा । 'अकं दुःखाघयोः' इति हैमानेकार्थकोशः । छिन्धि जहीहि । कीदृशस्त्वम् । गदो रोग एव शैलः पर्वतः तस्मिन् दम्भोलिर्वज्रमिव, हे घनारव घनवन्मेघवदारवो ध्वनिर्यस्य तत्संबोधनम् । हे तमोद तमांस्यज्ञानानि यति खण्डयतीति, यद्वा न ददातीत्यदः तमसः अदस्तमोदस्तत्संबोधनम्, सद्भिर्नतः सन्नतस्तत्संबोधनं हे सन्नत ॥ १३ ॥ भल्लः ॥ १० ॥ हे मुनीश, अहं त्वां आन-
मामीति संबन्धः । हे सुधीर सु शोभना धीर्येषां ते सुधियस्तैः राजत इति सुधीरः, यद्वा सु शोभना धीराः पण्डिता यस्य तत्संबोधनम्, हे नन, अजित, न जितः अजितः । द्वौ नकारौ प्रकृत्यर्थं सूचयतः । अपि तु अजित इत्यर्थः । अष्टकर्मभिरिति गम्यम् । हे तत्त्ववित् तत्त्वानि वेत्तीति तत्संबुद्धिः, हे तततावेश्म तता विस्तीर्णा चासौ ता लक्ष्मीश्च तस्या वेश्म गृहं तत्संबोधनं, हे अच्युत हे अपतित । 'पतितं गलितं च्युतम्' इति हैमः । कस्मिन् । स्मरमाननगे स्मरयुक्तो मानः स्मरमानः, यद्वा स्मरस्य मानोऽहंकारः स एव नगस्तस्मिन् ॥ १४ ॥ श्रीकरी ॥ ११ ॥ हे गुरो, त्वं दं दानं पुण्यं वा । 'दं दानं शरणं कर्म भव्यं न्यूनमकिल्विषम्' इत्यनेकार्थकोशः । तन्या इति योगः । कीदृशस्त्वं सुरैर्देवैर्नतः प्रणतः । पुनः कीदृशः । मुनीनां प्रभुः स्वामी । पुनः कीदृशः । मतो मान्यः । कस्याम् । भुवि पृथिव्याम् । हे तमःकंसकंसशत्रो तमोऽज्ञानमेव कंसः तस्मिन्कंसशत्रुर्विष्णुरिव तत्संबोधनम्, हे तनुप्रभाजितस्वर्ण तनोर्देहस्य प्रभया जितं स्वर्णं येन तत्संबुद्धिः ॥ १५ ॥ हलम् ॥ १२ ॥ हे जन, त्वं सूरिसिन्धुरं सूरिषु सिन्धुरो गज इव तं आनम । कीदृशम् । दक्षम् । पुनः कीदृशम् । मेधाविन एव दक्षजातानि पद्मानि तेषु बोधकत्वाल्लसद्रविं स्फूर्जत्सूर्यम् । पुनः कीदृशम् । वासवैरिन्दैर्विनतम् । पुनः कीदृशम् । स्फारं मनोहरम् । पुनः कीदृशम् । विमलं पापमलरहितम् ॥ १६ ॥

दद साधोऽजरामाजरामाभी रहितोऽमल ।

रम तो हितकृत्सार रसास्पृक्हृदयेऽपर ॥ १७ ॥

शङ्खः ॥ १४ ॥

दह पापं विशां ध्येय नित्यं मुमुक्षुराद्वुर ।

ललन्कंकलरम्भाद दभारं शंकरः सक ॥ १८ ॥

त्रिशूलम् ॥ १५ ॥

ददं भन्दवदं सकृद्रुं भजत मामकम् ।

कल्पकल्पं कर्मकषं कजकम्रकरं कमम् ॥ १९ ॥

चामरम् ॥ १६ ॥

छत्रम् ॥ १३ ॥ हे साधो, त्वं रसास्पृशां नृणां हृदयं रसास्पृगृह्यदयं तस्मिन् रम इति संबन्धः । हे दद ददातीति ददस्तत्संबोधनम् । हे अजर न विद्यते जरा यस्य तत्संबोधनम् । हे अमाज न विद्यते माजः कन्दर्पो यस्य तत्संबोधनम् । कीदृशस्त्वम् । रामाभिः स्त्रीभिः रहितः, यद्वा त्वं कीदृशः । जरामाजरामाभीरहितः जरा च माजश्च रामाश्च ताभिः । परवलिङ्गम् । हे अमल न विद्यते मलः कर्मरूपो यस्य तत्संबोधनम् । पुनः कीदृशस्त्वम् । तः सुवेषः । 'तः सुवेषो मता नारी' इत्येकाक्षरानेकार्थनामकोशे । पुनः कीदृशस्त्वम् । हितं करोतीति हितकृत्, हे सार हे श्रेष्ठ, हे अपर न विद्यते पराः शत्रवो रागद्वेषादयो यस्य तत्संबोधनम् ॥ १७ ॥ शङ्खः ॥ १४ ॥ हे मुमुक्षुराद्वुर मुमुक्षुराज्ञां मध्ये वर श्रेष्ठ, हे ध्येय ध्यातुमर्ह, त्वं विशां पापं दह । कथम् । नित्यम् । हे ललन्कंकलरम्भाद ललतीति ललन् तच्च तत्कं च ललन्कं तदेव कलरम्भा मनोज्ञकदली तां ददातीति तत्संबोधनम् । अरं अत्यर्थं दभ दं दानं तेन भातीति दभस्तत्संबोधनं हे शंकर, हे सक सह केन सुखेन वर्तत इति सकस्तत्संबोधनम् ॥ १८ ॥ त्रिशूलम् ॥ १५ ॥ भो जनाः, यूयं सकृदपि अपीति गम्यम् । आस्तामनेकवारं एकवारमपि ममेदं मामकं गुरुं हिताहितोपदेशकं भजत सेवत । कीदृशम् । ददातीति ददस्तम् । 'ददातिदधात्योर्विभाषा' इति शस्तम् । पुनः कीदृशम् । भन्दं कल्याणं वदतीति भन्दवदस्तम् । 'भन्दं कल्याणे सौख्ये च' इति हैमानेकार्थकोशः । पुनः कीदृशम् । कल्पकल्पं कल्पो देवभूरुहस्तत्सदृशः कल्पकल्पस्तम् । 'ईषदपरिसमाप्तौ कल्पन्देयदेशीयरः' । पुनः कीदृशम् । कर्माणि कषति हिनस्तीति कर्मकषस्तम् । पुनः कीदृशम् । कजकम्रकरं कजं पद्मं तद्वत्कम्रौ कमनीयौ करौ हस्तौ यस्य तम् । पुनः कीदृशम् । कमं कं सुखं मयते प्रतिददातीति । 'मेङ् प्रणिदाने' इति वचनात् । यद्वा कस्य

दद्यान्मे ततविज्ञातशास्त्रः शातं तमःशमः ।

मर्त्यस्तुतस्तपागच्छाधीशः सततवैभवः ॥ २० ॥

श्रीवत्सः ॥ १७ ॥

एभिः सप्तदशभिश्चित्रैः स्वगुरुनामगर्भितं कर्तृनामगर्भितं चाष्टादशारं
चक्रं संपद्यते । स्थापना च प्राक्प्रदर्शिता ।

सूरीशविजयानन्दपादपद्मं सुखप्रदम् ।

अभितोभूय सद्भक्त्या नम्रकम्रनरेश्वरम् ॥ २१ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ॥ ३ ॥

तृतीयेऽथ परिच्छेदे प्रतिद्वारक्रमो मया ।

क्रियते कोविदवृन्दहृदयानन्ददायकः ॥ २२ ॥

हंसान्योक्तिः शुकान्योक्तिर्बकोक्तिः खञ्जनोक्तयः ।

कोकिलान्योक्तयस्तद्वत्काकस्यान्योक्तयः पुनः ॥ २३ ॥

कुक्कुटान्योक्तयो ज्ञेया मयूरान्योक्तयस्ततः ।

चक्रवाकोक्तिरपरा चातकोक्तिः स्मृता बुधैः ॥ २४ ॥

चकोरोक्तिः सारसोक्तिष्टिड्ढिभोक्तिः प्रभासुरा ।

तथा मयूरपिच्छोक्तिर्ज्ञेया कोविदकुञ्जरैः ॥ २५ ॥

अथ खचराधिकारपद्धतौ प्रथमं हंसान्योक्तयः ॥ १ ॥

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव

हंसस्य हन्त्यतितरां कुपितो विधाता ।

न त्वस्य दुग्धजलभेदविधिप्रसिद्धां

वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ २६ ॥

मुखस्य मा लक्ष्मीर्यस्य तम् ॥ १९ ॥ चामरम् ॥ १६ ॥ दद्यादिति । मर्त्यस्तुतो
नरैर्नुतः शातं दद्यात् । कस्य मे मम । किंभूतः । ततानि विस्तीर्णानि विज्ञातानि
शास्त्राणि येन सः । पुनः किंभूतः । तमोऽज्ञानं शमयतीति तमःशमः । पुनः
कीदृशः । तपागच्छसाधीशस्तपागच्छाधीशः । पुनः कीदृशः । सततं निरन्तरं वैभवः
समृद्धिर्यस्य ॥ २० ॥ श्रीकरी ॥ १७ ॥ इत्यष्टादशारचक्रबन्धचित्रस्यावचूरिः ॥

कंसारिचरणोद्भूतसिन्धुकल्लोलललितम् ।

मन्ये हंस मनो नीरे कुल्याया रमते न ते ॥ २७ ॥

अपसरणमेव शरणं मौनं वा तत्र राजहंसस्य ।

कटु रटति निकटवर्ती वाचाटष्टिद्विभो यत्र ॥ २८ ॥

यदि नाम दैवगत्या जगदसरोजं कदापि संजातम् ।

अवकरनिकरं विकिरति तत्किं कृकवाकुरिव हंसः ॥ २९ ॥

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजराजितम् ।

रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ॥ ३० ॥

भृङ्गाङ्गनाजनमनोहरहारिगीत-

राजीवरेणुकणकर्णपिशङ्गतोयाम् ।

रम्यां हिमाचलनदीं प्रविहाय हंस

हे हे हताश वद कां दिशमुत्सुकोऽसि ॥ ३१ ॥

स्थित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरिक्षे

मातङ्गसङ्गकलुषां नलिनीं विलोक्य ।

उत्पन्नमन्युपरिघर्घरनिःस्वनेन

हंसेन साश्रु परिवृत्य गतं नलीनम् ॥ ३२ ॥

सरसि बहुशस्ताराच्छाया दशन्परिवञ्चितः

कुमुदविटपान्वेषी हंसो निशास्वविचक्षणः ।

न दशति पुनस्ताराशङ्की दिवापि सितोत्पलं

कुहकचकितो लोकः सत्येऽप्यपायमपेक्षते ॥ ३३ ॥

वातान्दोलितपङ्कजच्युतरजःपुञ्जाङ्गरागोज्ज्वलो

यः शृण्वन्कलकूजितं मधुलिहां संजातहर्षः पुरा ।

कान्ताचञ्चुपुटापवर्जितविसग्रासग्रहेऽप्यक्षमः

सोऽयं संप्रति हंसको मरुगतः क्रोष्णं पयो याचते ॥ ३४ ॥

१. 'स्थित्वा चिरं नभसि निश्चलतारकेण' इति वा पाठः. २. 'विततपक्षतिरान्तरिक्षे'
इत्यपि पाठः.

तरौ तीरोद्भूते कचिदपि दलाच्छादितवपुः

पतद्द्वारासारां गमय विषमां प्रावृषमिमाम् ।

निवृत्तायां तस्यां सरसि सरसोत्फुल्लनलिने

स एव त्वं हंसः पुनरपि विलासास्त इह ते ॥ ३५ ॥

रे राजहंस किमिति त्वमिहागतोऽसि

योऽसौ बकः स इह हंस इति प्रतीतः ।

तद्गम्यतामनुपदेन पुनः स्वभूमौ

यावद्वदन्ति बक एष न मूढलोकाः ॥ ३६ ॥

दुष्टं बकोटनिकरोऽपि मरालबुद्ध्या

मानप्रदे जनपदेऽत्र समागतोऽसि ।

तन्मौनमेव कुरु हे कलहंस नो चे-

त्वं वक्ष्यसे बक इतीह विमूढलोकैः ॥ ३७ ॥

यो दिव्याम्बुजवृन्दमत्तमधुपप्रोद्गीतिरम्यं सर-

स्त्यक्त्वा मानसमल्पवारिणि रतिं बध्नाति केदारके ।

तस्यालीकसुखाशया परिभवक्षोदीकृतस्याधुना

हंसस्योपरि टिट्ठिभो यदि रतिं धत्तेऽत्र को विस्मयः ॥ ३८ ॥

अन्या सा सरसी मराल मुनिभिर्यत्तीरसोपानिका-

वित्यक्तान्बलितन्दुलान्कवलयन्दृष्टोऽसि हृष्टैर्मुखैः ।

एषा पक्वणवापिका कमलिनीखण्डेन गुप्तात्मभि-

र्व्याधैस्त्वद्विधमुग्धबन्धनविधौ किं नाम नो सूत्र्यते ॥ ३९ ॥

हे हंसास्तावदम्भोरुहकुहररजोरञ्जिताङ्गाः सहेलं

हंसीभिः पद्मखण्डे मधुरमधुकरारावरम्ये रसध्वम् ।

यावन्नाच्छिचिरं यो हरगलगरलव्यालजालालिनील-

प्रोन्मीलन्मेघमालामलिनसकलदिङ्मण्डलोऽभ्येति कालः ॥ ४० ॥

सरसि सरसि वीचीमम्बुदोलयितानां

तदनु विसलताग्रं त्वन्मुखाद्यन्मदाप्तम् ।

इति मनसि निविष्टामालपत्रेव हंसीं

त्यजति विरहखेदाज्जीवितं राजहंसः ॥ ४१ ॥

यः संतापमपाकरोति जगतां यश्चोपकारक्षमः

सर्वेषाममृतात्मकेन वपुषा प्रीणाति नेत्राणि यः ।

तस्याप्युन्नतिमम्बुदस्य सहसे यन्न त्वमेतावता

वर्णेनैव परं मराल धवलः कृष्णश्चरित्रैरसि ॥ ४२ ॥

गतं तद्गाम्भीर्यं तटमपि चितं जालिकशतैः

सखे हंसोत्तिष्ठ त्वरितममुतोऽन्यत्र सरसः ।

न यावत्पङ्काम्भःकलुषिततनुभूरि विरट-

न्बकोटो वाचाटश्चरणयुगलं मूर्ध्नि कुरुते ॥ ४३ ॥

आकारः कमनीयताकुलगृहं लीलालसा सा गतिः

संपर्कः कमलालयैः कलतया लोकोत्तरं कूजितम् ।

यस्येयं गुणसंपदस्ति महती तस्यातिभव्यस्य ते

संरब्धत्वमसङ्गमन्द्रकलहं नाहं सहे हंस हे ॥ ४४ ॥

नद्यो नीचतरा दुरापपयसः कूपाः पयोराशयः

क्षारा दुष्टबकोटकङ्कटतटोद्देशास्तटाकादयः ।

भ्रान्त्वा भूतलमाकलय्य सकलानम्भोनिवेशानिति

त्वां भो मानस संस्मरन्पुनरसौ हंसः समभ्यागतः ॥ ४५ ॥

हंस त्वं शरदिन्दुधामधवलः पक्षद्वयप्रोन्नतो

धात्रीमण्डलमण्डनस्थिरपदः श्लाघ्यं न किंवा तव ।

एकत्वं गतयस्तदङ्ग कुरुषे भेदं च दुग्धाम्भसो

नूनं सर्वगुणान्वितस्य भवतस्ते नैव युक्तं मनाक् ॥ ४६ ॥

क्रुद्धोलूकनखप्रपातविगलत्पक्षा ह्यपि स्वाश्रयं

ये नोज्झन्ति पुरीषदुष्टवपुषस्ते केऽपि चान्ये द्विजाः ।

येऽपि स्वर्गतरङ्गिणीकमलिनीलेशेन संवर्धिता

गाङ्गं नीरमपि त्यजन्ति कलुषं ते राजहंसा वयम् ॥ ४७ ॥

पक्षौ तावदतीन्द्रधामधवलौ धन्या गतेश्वरुता

नादः सादरसुन्दराश्रुतिसुखः स्थानं सरो मानसम् ।

नीरक्षीरविवेचनं च सहजं श्लाघ्यो गुणानां गणः

शेवालाङ्कुरपत्रभोजनमिदं नाहं सहे हंस हे ॥ ४८ ॥

हंहो हंस महामते बलिभुजां मध्ये स्थितिं मा कृथा

लोकस्त्वां सितकाकमेव मनुते मीमांसते नो गतिम् ।

नो जानाति विमिश्रदुग्धपयसां दुग्धग्रहे नैपुणं

धूकैः संप्रहरस्यते तव शिरस्त्वं धाम तूर्णं व्रज ॥ ४९ ॥

तटमनुतटं पद्मे पद्मे निवेशितमानसं

प्रतिकमलिनीपत्रच्छायं क्षणं क्षणमासिनम् ।

नयनसलिलैरुष्णैः कोष्णाः कृता जलवीचयो

जलदमलिनां हंसेनाशां विलोक्य गमिष्यता ॥ ५० ॥

पीतं येन पुरा पुरन्दरपुरस्त्रीवारिकेलिक्षल-

न्मन्दाराङ्कुरकर्णपूरसुरभि स्वर्गापगायाः पयः ।

पातुं पल्लववारि पामरवधूपादार्पणप्रोच्छल-

त्पङ्कातङ्कितमेकभिन्नमघृणो हंसः किमाकाङ्क्षति ॥ ५१ ॥

सन्त्यन्यत्रापि वीचीचयचकितचलत्कौञ्चचञ्चुप्रभिन्न-

प्रोन्निद्राम्भोजरेणुप्रकरविरचनाहारिवारिप्रवाहाः ।

किंतु स्वच्छाशयत्वं जगति न सुलभं तेन गत्वापि दूरे

बद्धोत्कण्ठोऽनुरागादनुसरति सरो मानसं राजहंसः ॥ ५२ ॥

ये वर्धिताः कनकपङ्कजरेणुमध्ये

मन्दाकिनीविमलनीरतरङ्गभङ्गैः ।

ते सांप्रतं विधिवशात्खलु राजहंसाः

शेवालजालजटिलं जलमाश्रयन्ति ॥ ५३ ॥

मैवं मंस्थाः स्थितिपदमहं मत्त एवाम्बुलाभो

मय्यायत्तं जठरभरणं मत्कृता सत्क्रिया वा ।

स्थास्यन्त्येते परिभवमपि प्राप्य हे पद्मसद्व-

नैकस्यार्थे कमलसरसो निर्मिता राजहंसाः ॥ ५४ ॥

यत्रापि तत्रापि गता भवन्ति हंसा महीमण्डलमण्डनाय ।

हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥ ५५ ॥

गाङ्गाम्बु सितम्बु यामुनं कज्जलाम्बुभये निमज्जतः ।

चीयते न च न चापचीयते राजहंस तव शुद्धपक्षता ॥ ५६ ॥

हंसोऽसि तुमं सरमण्डणोऽसि धवलोऽसि धवल किं भणिमो ।

खलवायसाणमज्ज्ञे मूढ तुमं कथं पडिओसि ॥ ५७ ॥

कारणवसेण सुन्दरि हंसा सेवन्ति गामबाहुलिया ।

गमयन्ति केवि दीहा पुणोवि जो जत्थ सो तत्थ ॥ ५८ ॥

हंसो मसाणमज्ज्ञे काओजो वसइ पङ्कजवणम्मि ।

तहविहु हंसो हंसो काओ काओ वियाणीओ ॥ ५९ ॥

सव्वेसु तुमं पावेसि सरोवरं रायहंस नहुचुज्जम् ।

माणससरसारिच्छं कहवि भमन्तो ण पावेसि ॥ ६० ॥

माणसविणा सुहाई जहय ण लब्धन्ति रायहंसेहिम् ।

तह तस्सवि तेहिविणा तीरुच्छङ्गा ण सोहन्ति ॥ ६१ ॥

परिसेसिअ हंसउलं पि माणसं माणसं ण संदेहो ।

अन्नत्थविजत्थ गया हंसा विवया ण भणन्ति ॥ ६२ ॥

(इति हंसान्योक्तयः ।)

अथ शुकान्योक्तयः ।

किंशुकाद्गच्छ मा तिष्ठ शुक भाविफलाशया ।

बाह्यरङ्गप्रपञ्चेन के के नानेन वञ्चिताः ॥ ६३ ॥

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेऽपि बुभुक्षितः ।

अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्वन्त्युपजीविनः ॥ ६४ ॥

शुक यत्तव पठनव्यसनं न गुणः स गुणाभासः ।

समजनि येन तवामरणं शरणं पञ्जरवासः ॥ ६५ ॥

धित्तव शुक पठनव्यसनं जातं पञ्जरवासः ।

वरमन्ये द्विजराजगणस्तिष्ठति यः सुविलासः ॥ ६६ ॥

अये कीरश्रेणीपरिवृढ वृथा वासरशतं

किमर्थं व्यर्थं त्वं क्षपयसि पलाशे रभसतः ।

यदा पुष्पारम्भे मुखमलिनि किं किंशुकतरो-

स्तदैवं विज्ञातं फलपरिचयो दुर्लभ इति ॥ ६७ ॥

उच्चैरेकतरुः फलं च पृथुलं दृष्ट्वैव हृष्टः शुकः

पक्वं शालिवनं विहाय जडधीस्तां नालिकेरीं गतः ।

तत्रारुह्य बुभुक्षितेन मनसारम्भः कृतो भेदने

ह्यायासो ननु केवलं विगलितो चञ्चुर्गता कूर्चताम् ॥ ६८ ॥

इदमकटु कपाटं जर्जरः पञ्जरोऽयं

विरमति न गृहेऽस्मिन्क्रूरमार्जारयात्रा ।

शुक मुकुलितजिह्वं स्थायतां किं वचोभि-

स्तव वचनविनोदेऽनादरः पामराणाम् ॥ ६९ ॥

सत्साङ्गत्यमवाप्य यः पुरवने नानारसास्वादव-

त्कीरः शास्त्रविचारचारुवचनैरानन्दकारी जने ।

दैवेनास्फुटवाक्प्रपञ्चविहितश्रोत्रस्य तस्याटवीं

प्राप्तस्यात्मसभाप्रगल्भकविषु स्यान्मौनमेवोचितम् ॥ ७० ॥

प्रातः कीर कठोरचञ्चुकषणक्रोधायितैः कूजितैः

किं माधुर्यनिषिक्तसूक्तिविशदः कण्ठावटुः शोष्यते ।

श्रीमद्राघवनामधेयमनिशं त्वं ब्रूहि मुक्तिप्रदं

सेयं दैववशाद्दशा परिणता राजन्यपात्रस्य ते ॥ ७१ ॥

अमुष्मिन्नुद्याने विहग खल एष प्रतिफलं

विलोलः काकोलः कणति किल यावत्पटुतरम् ।

सखे तावत्कीर द्रढय हृदि वाचंयमकलां

न मौनेन न्यूनीभवति गुणभाजां गुणगणः ॥ ७२ ॥

इयं पल्ली भिल्लैरनुचितसमारम्भरसिकैः

समन्तादाविष्टा विषमविषबाणप्रणयिभिः ।

तरोरस्य स्कन्धे गमय समयं कीर निभृतं

न वाणी कल्याणी तदिह तव मुद्रैव शरणम् ॥ ७३ ॥

(इति शुकान्योक्तयः ।)

अथ बकान्योक्तयः ।

नालेनैव स्थित्वा पादेनैकेन कुञ्चितग्रीवम् ।

जनयति कुमुदभ्रान्तिं वृद्धबको बालमत्स्यानाम् ॥ ७४ ॥

एष बकः सहसैव विपन्नः शाठ्यमहो क्व नु तद्गतमस्य ।

साधु कृतान्तं न कश्चिदपि त्वां वञ्चयितुं सुशठोऽपि समर्थः ॥ ७५ ॥

कलयतु हंस विलासगतिं स बकः सरसि वराकः ।

नीरक्षीरविवेकविधौ तस्य कुतः परिपाकः ॥ ७६ ॥

बकेऽपि हंसेऽपि च वासभूमिरेकैव शुक्लो गुण एक एव ।

पृथग्विधातुं पयसी तु हंसे चातुर्यमास्ते न बके वराके ॥ ७७ ॥

बकोट ब्रूमस्त्वां लघुनि सरसि कापि शफरै-

स्तव न्याय्या वृत्तिर्न पुनरवगाढं समुचितः ।

इतश्चेतश्चाभ्रंलिहलहरिहेलातरलित-

क्षितिभ्रग्रावौकग्रहिलतिमि(ने)तः पतिरपाम् ॥ ७८ ॥

न कोकिलानामिव मञ्जु कूजितं न लब्धलास्यानि गतानि हंसवत् ।

न बर्हिणानामिव चित्रपक्षता गुणस्तथाप्यस्ति बके बकव्रतम् ॥ ७९ ॥

जातिस्तस्य न मानसे न शुचिभिर्वृत्तिर्मृणालाङ्कुरै-

र्न ब्रह्मोद्बहनेन निर्मलयशःप्राप्तिर्न वाचः कलाः ।

जीवन्सत्त्ववधेन बाह्यधवलोज्झाम्यत्सगर्वं पुन-

मिथ्यैवोन्नतकन्धरः शठबको हंसैः सह स्पर्धते ॥ ८० ॥

कस्त्वं लोहितलोचनास्यचरणो हंसः कुतो मानसा-

किं तत्रास्ति सुवर्णपङ्कजवनं तोयं सुधासंनिभम् ।

मुक्तास्फोटविभिन्नभूमिपटलं वैदूर्यरोहः कचि-
 च्छम्बूकाः किमु सन्ति नेति च बकैराकर्ण्य हीहीकृतम् ॥८१॥
 उभौ श्वेतौ पक्षौ चरति गगनेऽवारितगतिः
 सदा मीनं भुङ्क्ते वसति सकलस्थाणुशिरसि ।
 बके चन्द्रः सर्वो गुणसमुदयः किञ्चिदधिका
 गुणाः स्थाने मान्या नरवर नतु स्थानरहिताः ॥ ८२ ॥
 रे रे शिष्ट बकोट नाकतटिनीतीरे तपस्विव्रतं
 ध्यानेनानिमिषोपभोगमनसा युक्तं करोषीदृशम् ।
 एवं यत्किल मानसस्य पदवीं काङ्क्षस्ययुक्तं हि त-
 त्रैरक्षीरविवेकनिर्मलधियो हंसस्य नान्यस्य सा ॥ ८३ ॥
 सिक्खेसि गयं सिक्खेसि वक्किमा धवल्लिमं समुव्वहसि ।
 कह सिक्खसि बगराया पयनीरजुयंजुयाकरणम् ॥ ८४ ॥
 (इति बकान्योक्तयः ।)

अथ खञ्जनान्योक्तिः ।

आहारे शुचिता स्वरे मधुरता नीडे निरारम्भता
 बन्धौ निर्ममता वने रसिकता वाचालता माधवे ।
 त्यक्त्वा तं द्विजकोकिलं मुनिवरं दूरात्पुनर्दाम्भिकं
 वन्दन्ते बत खञ्जनं कृमिभुजं चित्रा गतिः कर्मणाम् ॥८५॥
 (इति खञ्जनान्योक्तिः ।)

अथ कोकिलान्योक्तयः ।

काकैः सह विवृद्धस्य कोकिलस्य कला गिरः ।
 खलसङ्गेऽपि नैष्ठुर्यं कल्याणप्रकृतेः कुतः ॥ ८६ ॥
 समुद्गिरसि वाचः किं पुंस्कोकिल सुकोमलाः ।
 श्वभ्रेऽस्मिञ्जडपाषाणगुरुनिर्घोषभैरवे ॥ ८७ ॥
 सहकारे चिरं स्थित्वा सलीलं बालकोकिल ।
 तं हित्वा^{द्य} करीरेषु विचरन्न विलज्जसे ॥ ८८ ॥

कलकण्ठ यथा शोभा सहकारे भवद्विरः ।

खदिरे वा पलाशे वा किं तथा स्याद्विचारय ॥ ८९ ॥

पक्वं चूतफलं भुक्त्वा गर्वान्नायाति कोकिलः ।

पीत्वा कर्दमपानीयं भेको भक्षभायते ॥ ९० ॥

साधु साधुकृतं मौनं कोकिले प्रावृषि त्वया ।

दर्दुरा यत्र भाषन्ते कथं तव सुभाषितम् ॥ ९१ ॥

न विना मधुमासेन अ(ब्ध)न्तरं पिककाकयोः ।

वसन्ते च पुनः प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥ ९२ ॥

रसालशिखरासीनाः सन्तु सन्तु पतत्रिणः ।

तन्मञ्जरीरसास्वादबिन्दुरेकः कुहूमुखः ॥ ९३ ॥

गुणिनं गुणयति गुणवानितरस्तत्र वराकः ।

सहकाराङ्कुररसिकः कोकिल एव न काकः ॥ ९४ ॥

रे रे कोकिल मा भज मौनं किञ्चिदुदञ्चय पञ्चमरागम् ।

नो चेत्त्वामिह को जानीते काककदम्बकपिहिते चूते ॥ ९५ ॥

अस्यां सखे बधिरलोकनिवासभूमौ

किं कूजितेन खलु कोकिल कोमलेन ।

एते हि दैर्घ्वशतस्तदभिन्नवर्णं

त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥ ९६ ॥

कोकिल कलप्रलापैरलमलमालोकसे रसाले किम् ।

शरनिकरभरितशरधिः शबरः सरतीह परिसरे सधनुः ॥ ९७ ॥

तवैतद्वाचि माधुर्यं जातं कोकिल कृत्रिमम् ।

यैः पोषितोऽसि तानेव जातपक्षो जहासि यत् ॥ ९८ ॥

मूकीभूय तमेव कोकिल मधुं बन्धुं प्रतीक्षस्व हे

हेलोल्लासितमल्लिकापरिमलामोदानुकूलानिलम् ।

यत्रैतास्तव सूक्तयः सफलतामायान्त्यमी तूलस-

त्पांसूतम्भभृतो निदाघदिवसाः संतापसंदायिनः ॥ ९९ ॥

येनानन्दमये वसन्तसमये सौरभ्यहेलामिल-

ऋङ्गालीमुखरे रसालशिखरे नीताः पुरा वासराः ।

आः कालस्य वशेन कोकिलयुवा सोऽप्यद्य सर्वा दिशः

खेलद्वायसचञ्चुघातविदलन्मूर्धा मुहुर्धावति ॥ १०० ॥

कचिज्झिल्लीनादः कचिदतुलकाकोलकलहः

कचित्कङ्कारावः कचिदपि कपीनां कलकलः ।

कचिद्धोरः फेरुध्वनिरयमहो दैवघटना

॥ कथंकारं तारं रसति चकितः कोकिलयुवा ॥ १०१ ॥

उत्कूजन्तु वटे वटे बत बकाः काका वराका अपि

कां कुर्वन्तु सदा निनादपटवस्ते पिप्पले पिप्पले ।

सोऽन्यः कोऽपि रसालपल्लवलवग्रासोल्लसत्पाटवः

क्रीडत्कोकिलकण्ठकूजनकलालीलाविलासकमः ॥ १०२ ॥

यस्याकर्ण्य वचः सुधाकवलितं वाचंयमानामपि

व्यग्राणि ग्रथयन्ति मन्मथकथां चित्तानि चैत्रोत्सवे ।

रे रे काक वराक साकममुना पुंस्कोकिलस्याधुना

स्पर्धाबन्धमुपेयुषस्तव नु किं लज्जापि नोज्जागरा ॥ १०३ ॥

हे कोकिल क्षपय कालमलालसत्त्वं

वाचंयमत्वमवलम्ब्य कियद्दिनानि ।

श्रीखण्डशैलसुहृदः प्रसरन्ति याव-

॥ १०४ ॥

मा कलकण्ठ कलध्वनिमिह मिहिरमहीरुहस्य मूर्ध्नि कृथाः ।

मूलमिमं कथयिष्यति जडो जनस्तव गिरां सुतराम् ॥ १०५ ॥

रे बालकोकिल करीरमरुस्थलीषु

किं दुर्विदग्धमधुरध्वनिमातनोषि ।

अन्यः स कोऽपि सहकारतरुप्रदेशो

राजन्ति यत्र तव विभ्रमभाषितानि ॥ १०६ ॥

रे कीर कैतवसुगीरिति संकलय्य

मामत्र संरससि सज्जनरञ्जनाय ।

बालोऽपि यत्र कलकण्ठसुकण्ठपीठ-

संलोठिकोमलकुहूरुतपूर्णकर्णः ॥ १०७ ॥

परभृतशिशो मौनं तावद्विधेहि नभस्थलो-

त्पतनविधये पक्षौ स्यातां न यावदिमौ क्षमौ ।

ध्रुवमपरथा द्रष्टव्योऽसि स्वजातिविलक्षण-

ध्वनितकुपितध्वाङ्गत्रोटीपुटाहतिजर्जरः ॥ १०८ ॥

मालिन्यं भुवनातिशायि रुचिरं नो किञ्चिदप्याकृतौ(ता)-

(व)अन्यैः पोषणमात्मनो विसदृशैस्तत्रापि काकैः किल ।

भ्रातः कोकिल सर्वमेतदमृतस्रोतस्विनीसोदरे

माधुर्ये भवतो गिरां समधिके निर्नाम निर्मज्जति ॥ १०९ ॥

चूतोऽयं नवमञ्जरीपरिकरो वाचो ममास्याश्रया-

लप्यन्ते किल संप्रति प्रणयिनां मत्वेति यावत्स्थितः ।

तावत्कोटरगर्भसुस्थितवता घूकेन घूत्कुर्वता

क्षुप्तः काकधिया स कोकिलयुवा धिङ्म्लानतामाकृतेः ॥ ११० ॥

दात्यूहाः सरसं रसन्तु सुभगं गायन्तु केकाभृतः

कादम्बाः कलमालपन्तु मधुरं कूजन्तु कोयष्टयः ।

दैवाद्यावदसौ रसालविटपिच्छायामनासादय-

न्निर्विण्णः कुटजेषु कोकिलयुवा संजातमौनव्रतः ॥ १११ ॥

भ्रातः कोकिल कूजितेन किमलं नाद्याप्यनर्घ्यो गुण-

स्तूष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः कचित्कोटरे ।

प्रोद्दामद्रुमसंकटे कटुरटत्काकावलीसंकुलः

कालोऽयं शिशिरस्य संप्रति सखे नायं वसन्तोत्सवः ॥ ११२ ॥

अनुमतिसरसं विमुच्य चूतं नवनवमञ्जुलमञ्जरीपरीतम् ।

अपि पिकदयिते कथं मतिस्ते घटयति निष्फलपिप्पलेऽवलेपम् ॥ ११३ ॥

येनोषितं रुचिरपल्लवमञ्जरीभिः

श्रीखण्डचम्पकरसालवने सदैव ।

दैवात्स कोकिलयुवा विचचार निम्बे

तत्रापि रुष्टबलिपुष्टकुलैर्निनादः ॥ ११४ ॥

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैरिव वासराः ।

यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक्प्रवर्तते ॥ ११५ ॥

(इति पिकान्योक्तयः ।)

अथ काकान्योक्तयः ।

तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः कोकिलैः सह संगतः ।

केन विज्ञायते काकः स्वयं यदि न भाषते ॥ ११६ ॥

आमरणादपि विरुतं कुर्वाणाः स्पर्धया सह मयूरैः ।

किं जानन्ति वराकाः काकाः केकारवं कर्तुम् ॥ ११७ ॥

उषितः कोकिलयापि समं तदपि वराकः काकः ।

लभतेऽद्यापि न सुस्वरातां गुरुरिह कर्मविपाकः ॥ ११८ ॥

कर्णारुन्तुदमन्तरेण रणितं त्वां कोकिलं मन्महे

माकन्दं मकरन्दसुन्दरमिदं गाहस्व काक स्वयम् ।

भव्यानि स्थलसौष्ठवेन कतिचिद्वस्तूनि कस्तूरिकां

नेपालक्षितिपालभालतिल्लके पङ्कं न शङ्केत कः ॥ ११९ ॥

गात्रं ते मलिनं तथा श्रवणयोरुद्वेषकृत्क्रेङ्कितं

भक्ष्यं सर्वमपि स्वभावचटुलं दुश्चेष्टितं ते सदा ।

एतैर्वायससङ्गतोऽस्य विनयैर्दोषैकमूलैः परं

यत्सर्वत्र कुटुम्बवत्सलमतिस्तेनैव वन्द्यो भवान् ॥ १२० ॥

पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा निरावरणानां

दधिभृतघटीं गर्वोन्नद्धः समुद्धतकंधरः ।

१. 'पतिते पङ्के' इति कुवलयानन्दे विकस्वरालंकारोदाहरणभूतेऽस्मिन् पद्ये स्थितः

निजसमुचितास्तास्ताश्चेष्टा विकारशताकुलो

यदि न कुरुते काणः काकः कदा नु करिष्यति ॥ १२१ ॥

रूक्षस्यामधुरस्य चातिमलिनच्छायस्य दृष्टस्य च

क्षुद्रस्य क्षतिकारिणोऽतिचपलस्याह्लादविच्छेदिनः ।

येयं निम्बफलेषु काक भवतस्तित्केषु नैसर्गिकी

प्रीतिस्तत्सदृशं विधेर्विलसितं निष्पन्नमेतच्चिरात् ॥ १२२ ॥

प्रत्यङ्गणं प्रतितरुं प्रतिवापितीरं

काकाश्चलन्ति चलचञ्चुपुटा रटन्तः ।

नो यान्ति तृप्तिमथ मण्डितपुण्डरीक-

खण्डे वसन्नहह तृप्यति राजहंसः ॥ १२३ ॥

कृष्णं वपुर्वहतु चुम्बतु सत्फलानि

रम्येषु संचरतु चूतवनान्तरेषु ।

पुंस्कोकिलस्य चरितानि करोतु कामं

काकः कलध्वनिविधौ ननु काक एव ॥ १२४ ॥

किं कीरकोकिलमयूरमरालवंशे

कोऽप्यत्र नास्ति धरणीतलरम्यहर्म्यः ।

येनाधुना कनकपञ्जरमध्यवर्ती

काकः करोति कुरुतानि कुचेष्टितानि ॥ १२५ ॥

आकारो न मनोहरः श्रवणयोः शल्योपमं कूजितं

वक्रं विड्विक्कृतं कृतान्तसमयालम्बीदमालोकितम् ।

क्रीडासंवनने पृथग्जनचिते वासस्तरौ कुत्सिते

तत्केनास्तु वराक काक कनकागारे तवावेशनम् ॥ १२६ ॥

किं केकीव शिखण्डमण्डिततनुः सारीव किं सुस्वरः

किं वा हंस इवाङ्गनागतिगुरुः किं कीरवत्पाठकः ।

किंवा हन्त शकुन्तपोतपिकवत्कर्णामृतस्यन्दनं

काकः केन गुणेन काञ्चनमये व्यापारितः पञ्जरे ॥ १२७ ॥

SGDF

Foundation

अत्रस्थः सखि लक्षयोजनगतस्यापि प्रियस्यागमं

वेत्त्याख्याति च धिक् शुकादय इमे सर्वे पठन्तः शठाः ।

मत्कान्तस्य वियोगतापदहनज्वालावलीचन्दनं

काकस्तेन गुणेन काञ्चनमये व्यापारितः पञ्जरे ॥ १२८ ॥

कोटिं जीव पिबामृतं व्रज सखे शाखान्तरं वायस

आयाते दयिते मनोरथशतैर्दास्यामि दध्योदनम् ।

एतज्जल्पति यावदध्वगवधूस्तावत्पतिः प्राङ्गणे

त्रुट्यत्कञ्चुकजालकत्रुटत्रुटत्सर्वाङ्गमुज्जृम्भितम् ॥ १२९ ॥

रेरे काक वराक साकममुना पुंस्कोकिलेन ध्वनिः(नेः)

स्पर्धाबन्धमुपेयुषस्तव कथं वक्षो न याति द्विधा ।

यस्याकर्ण्य वचः सुधाकवलितं वाचंयमानामपि

व्यग्राणि ग्रथयन्ति मन्मथकथां चेतांसि चैत्रोत्सवे ॥ १३० ॥

नो चारू चरणौ न चापि रुचिरा चञ्चुर्न रुच्यं वचो

नो लीलाललिता गतिर्न च शुचिः पक्षग्रहोऽयं तव ।

क्रूराकाङ्क्षितदुर्भगां गिरमिह स्थाने वृथैवोद्वि-

न्मूर्ख ध्वाङ्ग न लज्जसे विसदृशं पाण्डित्यमुन्नाटयन् ॥ १३१ ॥

अनुचितफलाभिलाषी विधिनैव निवार्यते ह्यधमपुरुषः ।

द्राक्षाविपाकसमये मुखरोगो भवति काकानाम् ॥ १३२ ॥

जो जाणइ जस्स गुणे लोएसो तस्स आयरं कुणइ ।

पक्केदरकारामे काओ निम्बोअणिं चुणई ॥ १३३ ॥

(इति काकान्योक्तयः)

अथ कुक्कुटान्योक्तयः ।

भो लोकाः सुकृतोद्यता भवत तं लब्ध्वा भवं मानुषं

मोहान्धाः प्रसरत्प्रमादवशतो माहार्यमाहार्यथाः ।

इत्थं सर्वजनप्रबोधमधुरो यामेर्धयामे सदा

कृत्वोर्ध्वं निजकंधरं प्रतिदिनं कोकूयते कुक्कुटः ॥ १३४ ॥

रमियाण पन्थियाणय पामर चोराण कुकडो कहइ ।

रेर महवहहवाहह पलायह पलयं गयार यणी ॥ १३५ ॥

(इति कुकुटान्योक्तयः ।)

अथ मयूरान्योक्तयः ।

मयूर तव माधुर्यं स्वरेणैवोपलभ्यते ।

उरगग्रासनिर्स्त्रिंशकर्मणा दारुणो भवान् ॥ १३६ ॥

एतस्मिन्मलयाचले बहुविधैः किं तैरकिंचित्करैः

काकोल्लककपोतकोकिलकुलैरेकोऽपि पार्श्वस्थितः ।

केकी कूजति चेत्तदा विघटितव्यालावलीबन्धनः

सेव्यः स्यादिह सर्वलोकमनसामानन्दनश्चन्दनः ॥ १३७ ॥

केका कर्णामृतं ते कुसुमितकबरीकान्तिहाराः कलापाः

कण्ठच्छाया पुरारेर्गलरुचिरुचिरा सौहृदं मेघसङ्घैः ।

विश्वद्वेषिद्विजिह्वस्फुरदुरुपिशितैर्नित्यमाहारवृत्तिः

कैः पुण्यैः प्राप्यमेतत्सकलमपि सखे चित्तवृत्तं मयूर ॥ १३८ ॥

वेगज्वलद्विटपपुञ्जमहारवोऽयं

गर्जिनं तीव्रतरहेतिरियं न शम्पा ।

दावाग्निधूमनिवहोऽयमये न मेघः

किं नृत्यसि द्रुतमितो ब्रज तत्कलापिन् ॥ १३९ ॥

अये नीलग्रीव क कथय सखे तेऽद्य मुनयः

परं तोषं येषां तव रवविलासो वितनुते ।

अमी दूरात्क्रूराः कणितमिदमाकर्ण्य सहसा

त्वरन्ते हन्तुं त्वामहह शवराः पुङ्खितशराः ॥ १४० ॥

हारीताः सरसं रसन्तु मधुरं कूजन्तु पुंस्कोकिलाः

सानन्दं गिरमुद्गिरन्तु च शुकाः किं तैः शिरःस्थैरपि ।

एकेनापि तटस्थितेन नदता श्रीखण्डनिस्तर्जना-

ध्यालानां च शिखण्डिता ननु महापाण्डित्यमुद्घण्डितम् ॥ १४१ ॥

किं दूरेण पयोधरा उपरि किं नान्ये रटन्तः श्रुता
 निर्व्यापारतया च पक्षिषु गताः किं वा न पक्षा वृथा ।
 रम्यं वा गगनेन किं विहरणं किंतूग्रकाकावली-
 पर्यायप्रतिपत्तिलाघवभयाद्भूमौ स्थिता बर्हिणः ॥ १४२ ॥
 यत्नादपि कः पश्येच्छिखिनामाहारनिर्गमस्थानम् ।
 यदि जलदनिनदमुदितास्त एव मूढा न नृत्येयुः ॥ १४३ ॥
 पीऊण पाणियं सखरम्भि पिङ्गं नदिन्तिसि हिडिम्भा ।
 होही जाण कलावो पयइच्चिय साहएताण ॥ १४४ ॥

(इति मयूरान्योक्तयः ।)

अथ चक्रवाकान्योक्तयः ।

कथय किमपि दृष्टं स्थानमस्ति श्रुतं वा
 व्रजति दिनकरोऽयं यत्र नास्तं कदाचित् ।
 इति विहगसमूहान्नित्यमेवास्ति पृच्छन्
 रजनिविरहभीतश्चक्रवाको वराकः ॥ १४५ ॥
 अस्तं गतोऽयमरविन्दवनैकबन्धु-
 भांस्वान्न लङ्घयति कोऽपि विधिप्रणीतम् ।
 हे चक्र धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं
 धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ॥ १४६ ॥
 मित्रे कापि गते सरोरुहवने बद्धानने क्लाम्यति
 कन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयिताश्लिष्टं पुरः सारसम् ।
 चक्राङ्गेन वियोगिना विसलता नास्वादिता नोज्झिता
 चक्रे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥ १४७ ॥
 वापीतोयं तटतरुवनं पद्मिनीपत्रशय्या
 चन्द्रालोको विकचकुमुदामोदहृद्यः समीरः ।
 यत्रैतेऽपि प्रियविरहिणो दाहिनश्चक्रनाम्ना
 तत्रोपायः क इहं भवतु प्राणसंधारणाय ॥ १४८ ॥

SGDF

कवलितमिह नालं कन्दलं चेह दृष्ट-

मिह हि कुमुदकोशे पीतमम्भः सुशीतम् ।

इति विरटति रात्रौ पर्यटन्ती तटान्ते

सहचरपरिमुक्ता चक्रवाकी वराकी ॥ १४९ ॥

शतगुणपरिपाठ्या पर्यटन्नन्तराले

कुमुदकुवलयानां मध्यरात्रेऽपि खिन्नः ।

उपनदि दयितायाः कापि शब्दं निश्म्य

अमति पुलिनपृष्ठे चक्रवाको वराकः ॥ १५० ॥

दिनान्ते चक्रवाकेन प्रियाविरहभीरुणा ।

तथा निःश्वसितं तेन यथा नोच्छ्वसितं पुनः ॥ १५१ ॥

एकेनार्कं प्रकटितरुषा पाटलेनास्तसंस्थं

पश्यन्त्यक्षणाश्रुजललुलितेनापरेण स्वकान्तम् ।

अहश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी

द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥ १५२ ॥

उत्कूजति श्वसति मुह्यति याति तीरं

तीरात्तरुं तरुतलात्पुनरेति वापीम् ।

वाप्यां न तिष्ठति न चात्ति मृणालखण्डं

चक्रः क्षपासु विरहे खलु चक्रवाक्याः ॥ १५३ ॥

अयं पद्मासनासीनश्चक्रवाको विराजते ।

युगादौ भगवान् वेधा विनिर्मित्सुरिव प्रजाः ॥ १५४ ॥

आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन ।

सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सद्यमसद्यम् ॥ १५५ ॥

चक्रः पप्रच्छ पान्थं कथय मम सखे अस्ति स कापि देशो

वस्तुं नो यत्र रात्रिः प्रचरति विहगायेति स प्रत्युवाच ।

नीते मेरौ समाप्तिं कनकवितरणैः श्रीजगद्देवनाम्ना

सूर्ये ह्यन्तर्हितेऽस्मिन्कतिपयदिवसैर्वासराद्वैतसृष्टिः ॥ १५६ ॥

(इति चक्रवाकान्योक्तयः ।)

अथ चातकान्योक्तयः ।

सत्यं सत्यं मुनेर्वाक्यं नादत्तमुपतिष्ठते ।

अम्बुभिः पूरिता पृथ्वी चातकस्य मरुस्थली ॥ १५७ ॥

चातक धूमसमूहं दृष्ट्वा मा धाव वारिधरबुद्ध्या ।

इह हि पतिष्यति भवतो नयनयुगादेव वारि परम् ॥ १५८ ॥

एक एव खगो मानी चिरं जीवतु चातकः ।

अग्रियते वा पिपासातो याचते वा पुरंदरम् ॥ १५९ ॥

आतश्चातक कथय सखे कीदृक् पापमकारि ।

नवजलदादपि चञ्चुपुटे यत्ते पतति न वारि ॥ १६० ॥

गर्जितबधिरीकृतककुभा किमपि कृतं न घनेन ।

कियती चातकचञ्चुपुटी सापि भृता न जलेन ॥ १६१ ॥

दीनोन्नतचलपक्षतया बहूपि लब्धमवस्तु ।

चातक यत्संभावनया किमपि यदस्ति तदस्तु ॥ १६२ ॥

चातकस्य मुखचञ्चुसंपुटे नो पतन्ति यदि वारिबिन्दवः ।

सागरीकृतमहीतलस्य किं दोष एव जलदस्य दीयते ॥ १६३ ॥

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-

मम्भोदागमने वसन्ति बहवः सर्वेऽपि नैतादृशाः ।

केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद्वृथा

यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥ १६४ ॥

अये वापीहंसा निजवसतिसंकोचपिशुनं

कुरुध्वं मा चेतो वियति डयतो वीक्ष्य विहगान् ।

अमी सारङ्गास्ते जलदजलपानव्यसनिनो

निरीहाणां येषां तृणमिव भवन्त्यम्बुनिधयः ॥ १६५ ॥

स्फटिकविमलं पीत्वा तोयं घनोदरनिःसृतं

पिबति न पयो मासानष्टौ बतापि न चातकः ।

मनसि जलदं स्मृत्वा स्मृत्वा तृषापि न [बाध्यति]

गुणवति जने बद्धाशानां श्रमोऽपि सुखावहः ॥ १६६ ॥

किमत्र हे चातक दीर्घकण्ठं प्रसार्य वक्रं करुणं विरौषि ।
 रात्रौ दिवा वर्षति वारिदोऽत्र तथापि पत्रत्रितयं पलाशे ॥ १६७ ॥
 विरम चातक दैन्यमपास्यतां बत चट्टानि कियन्ति करिष्यसि ।
 विधिविनिर्मितमम्बुकणद्वयं किमधिकं कलयापि करिष्यसि ॥ १६८ ॥

बीजैरङ्कुरितं जटाभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृम्भितं
 कन्दैः कन्दलितं जनैः प्रमुदितं धाराधरे वर्षति ।
 आतश्चातक पातकं किमपि ते सम्यङ् जानीमहे
 येनास्मिन्न पतन्ति चञ्चुपुटके द्वित्राः पयोबिन्दवः ॥ १६९ ॥
 दैवेन प्रभुणा स्वयं जगति यद्यस्य प्रमाणीकृतं
 तत्तस्योपनयेन्मनागपि सदा नैवाश्रयः कारणम् ।
 सर्वाशापरिपूरके जलधरे वर्षत्यपि प्रत्यहं
 सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्राः पयोबिन्दवः ॥ १७० ॥

रक्ताब्जपुञ्जरजसारुणितान्विमुच्य
 स्वस्थान्सुधारससमानपि वारिराशीन् ।
 यश्चातकः पिबति वारिधरोदबिन्दू-
 न्मन्ये तदानतिभयाच्छिरसोऽभिमानी ॥ १७१ ॥
 कूपे पानमधोमुखं भवति मे नद्यो वराक्यः स्त्रियः
 सामान्यैर्बकटिद्विभैः सह सरस्येवं समालोकयन् ।
 नादत्ते तृषितोऽपि हीनसलिलं क्रूरैर्वृतं जन्तुभि-
 र्मानादुन्नतकंधरः सुरपतिं तच्चातको याचते ॥ १७२ ॥

हा धिक्परव्यसनदुर्ललिताशयेन
 केनापि रे सरल चातक वञ्चितोऽसि ।
 येनाम्बुवाहमपि याचसि याचितस्य
 यस्यास्य याचितुरिवातिमलीमसत्वम् ॥ १७३ ॥

किं नाम दुष्कृतमिदं भवतश्चकास्ति
 येनात्र दैन्यपिशुनं बत याचितोऽपि ।

एते हि^१ कामनिभृतोन्नतयोऽपि तृप्त्यै

मुञ्चन्ति चातक पयो न पयोमुचस्ते ॥ १७४ ॥

योऽयं वारिधरो घराधरशिरस्यभ्युन्नतः केवलं

गर्जत्येव गभीरधीरनिनदैर्नायं सखे वारिदः ।

तत्ते चातक पातकस्य कृतमस्यैतत्फलं पठ्यते

येनासौ न ददाति याति न भवच्चेतोऽपि निर्विघ्नताम् ॥ १७५ ॥

अन्येऽपि सन्ति बत तामरसावतंसा

हंसावलीवलयिनो जलसंनिवेशाः ।

कोऽप्याग्रहो गुरुरयं हतचातकस्य

पौरंदरीं समभिवाञ्छति वारिधाराम् ॥ १७६ ॥

अन्ये ते जलदायिनो जलधरास्तृष्णां विनिघ्नन्ति ये

भ्रातश्चातक किं वृथात्र रणितैः खिन्नोऽसि विश्राम्यताम् ।

मेघः शारद एष काशधवलः पानीयरिक्तोदरो

गर्जत्येव हि केवलं भृशमपां नो बिन्दुमप्युज्झति ॥ १७७ ॥

यः कृष्णं कुरुते मुखं जनयति त्रासं तडिद्धिस्तु यो

यश्च प्रार्थयते परं दलयति श्रोत्राणि यो गर्जितैः ।

सत्यं चातक तं तथाविधमपि भ्रातस्त्वया याचता

जीमूतं कृतमेव तुल्यमनयोरर्थित्वतिर्यक्त्वयोः ॥ १७८ ॥

धिग्वारिदं परिहृतान्यजलाशयस्य

यश्चातकस्य कुरुते न तृषः प्रशान्तिम् ।

धिक् चातकं तमपि योऽर्थितयास्तलज्ज-

स्तं तादृशं च यदुपैति पिपासितोऽपि ॥ १७९ ॥

अनुसर सरस्तीरं वैरं किमत्र महात्मना

कतिपयपयःपानं मानिन्समाचर चातक ।

प्रलयपवनैरस्तं नीतः पुरातनवारिदो

यदयमदयं कीलाजालं विमुञ्चति नूतनः ॥ १८० ॥

विश्वोपजीवोऽपि पिबत्यपो न पद्माकरे यद्यपि चातकोऽयम् ।
स्वार्थक्षयस्तस्य तृषातुरस्य लघुत्वमत्रास्ति न किञ्चिदस्य ॥ १८१ ॥
(इति चातकान्योक्तयः ।)

अथ चकोरस्य ।

चुलुकयसि चन्द्रदीधितिमविरलमश्रासि नूनमङ्गारान् ।
अधिकतरमुष्णमुनयो किमिति चकोरोऽवधारयति ॥ १८२ ॥

अथ सारसस्य ।

आपूर्येत पुनः स्फुरच्छफरिकासारोर्मिभिवारिभि-
र्भूयोऽपि प्रविजृम्भमाणनलिनं पश्यामि तोयाशयम् ।
इत्याशाशततन्तुबद्धहृदयो नक्तंदिनं दीनधीः
शुष्यत्यातपशोषितस्य सरसस्तीरे जरत्सारसः ॥ १८३ ॥

अथ टिट्ठिमस्य ।

स्वचित्तकल्पितो गर्वः कस्य नाम न विद्यते ।
उत्क्षिप्य टिट्ठिभः पादौ शेते भङ्गभयान्ध्रुवः ॥ १८४ ॥
बक चटु तपसे त्वं शाखिनि कापि सान्द्रे
श्रय झटिति तटिन्याष्टिट्ठिभ त्वं तटानि ।
इह सरसि सरोजच्छन्नगम्भीरदेशे
ललितगतिरिदानीं रंस्यते राजहंसः ॥ १८५ ॥

अथ मयूरपिच्छस्य ।

व्यजनैरातपत्रैश्च भूत्वा पिच्छैः कलापिनाम् ।
स्थानभ्रष्टैरपि कृतं परेषां तापवारणम् ॥ १८६ ॥
अस्मान्विचित्रवपुषश्चिरपृष्ठलमा-
न्कस्माद्विमुञ्चसि सखे यदिवा विमुञ्च ।
हा हन्त केकिवर हानिरियं तवैव
गोपालमौलिषु पुनर्भविता स्थितिर्नः ॥ १८७ ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारक-
वृन्दारकराजपरमगुरुभट्टारक श्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्य-
पण्डितहंसविजयगणिसमुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां स्थलचरज-
लचरान्योक्तिनिरूपकस्तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥

चतुर्थः परिच्छेदः ।

सिद्धिश्रिया किं निहिताः कटाक्षा मनोवशीकर्तुमिहाश्वसेनेः ।
त एव भान्ति स्वकशीर्षदेशस्थितस्फटानां कपटेन मन्ये ॥ १ ॥

श्रेयः श्रियं दिशतु सद्गुणराजराजी-
राजीवजैत्रनयनः सुररत्नकल्पः ।
कल्पद्रुमः किल जनाभिमतार्थसिद्धौ
सिद्धौषधः स्मरगदे जिनवर्धमानः ॥ २ ॥

अथ समवसरणबन्धचित्रम् ।

सकललोकचकोरनिशाकर रजतकाय हरिध्वज शंकर ।
रमण संयमिनां भवतारक कविकुलस्रुतमुक्तिपुरे वस ॥ ३ ॥
निखिलनाकिनिकायविनिर्मितं ततमहामणिहेमहिमांशुभिः ।
मिदुरवद्यमहीभृति रातु शं समवयुक् सरणं तव मुत्खनि ॥ ४ ॥
सुजन भो सुतरां चरमप्रभुं भुवनवर्तिजनार्तिनिवारकम् ।
कलनिनादमभीष्टसुखप्रदं दमिवरं धर चेतसि सद्गुम् ॥ ५ ॥

शुद्धप्राग्वाटवंशाभ्रप्रभासनदिवाकरः ।
दद्यादानन्दमानन्दसद्गुरुः सततोदयः ॥ ६ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

वर्यतुर्यपरिच्छेदे प्रतिद्वारस्य पद्धतिः ।
सम्यग्बुद्धिप्रबोधाय तन्यते मयकाधुना ॥ ७ ॥
शङ्खान्योक्तिर्मत्कुणोक्तिः खद्योतान्योक्तयस्ततः ।
अमरान्योक्तयो ज्ञेया वाग्विलासविशारदैः ॥ ८ ॥

अथ विकलेन्द्रियाधिकारपद्धतावादाौ शङ्खान्योक्तयः ।

उच्चैरुच्चर रुचिरं झिल्लीवर्त्मसु तरुं समारुह्य ।

दिग्व्यापिनि शब्दगुणे शङ्खः संभावनाभूमिः ॥ ९ ॥

कीटगृहं कुटिलोऽन्तः कठिनः क्षाराम्बुसंभवः शून्यः ।

शङ्खः श्रीपतिनिकटे केन गुणेन स्थितिं लभते ॥ १० ॥

अन्तः कुटिलतां विभ्रच्छङ्खः स खलु निष्ठुरः ।

हुं करोति यदाध्मातस्तदेव बहु गण्यताम् ॥ ११ ॥

विमलतां वचनस्य गोचरे जनयिता तव शङ्ख महोदधिः ।

मुदमलं तनुते च तव ध्वनिः किमु ततो विधृता हृदि वक्रता ॥ १२ ॥

जन्मस्थानमपांनिधिः शुचितया ख्यातिस्तवैवोज्ज्वला

माङ्गल्ये च जगत्प्रबोधजनको नादस्तवैवाग्रणीः ।

किंवा ते कमलापतिः प्रणयिता ब्रूमस्तवैवंविधे

माहात्म्ये सति शङ्ख सङ्गतमिदं कौटिल्यमन्तः कुतः ॥ १३ ॥

तातः क्षीरनिधिः स्वसा जलधिजा आता सुरेशद्रुमः

सौजन्यं सह कौस्तुभेन शुचिता यस्य द्विजेशादपि ।

धिक्कर्माणि स एव कम्बुरधुना पाखण्डिकान्ताकरे

विश्रान्तः प्रतिवासरं प्रतिगृहं भैक्ष्येण कुक्षिभरिः ॥ १४ ॥

सर्वाशापरिपूरिहुं कृतिमदो जन्मापि दुग्धोदधे-

गोविन्दाननचुम्बि सुन्दरतरं पूर्णेन्दुबिम्बाद्वपुः ।

श्रीरेषा सहजा गुणाः किमपरं भण्यन्त एते हि य-

त्कौटिल्यं हृदि पाञ्चजन्यं भवतस्तेनापि लज्जामहे ॥ १५ ॥

शङ्खाः सन्ति सहस्रशो जलनिधेर्वीचीघटाघटिताः

पर्यन्तेषु लुठन्ति ये दलशतैः कल्माषितक्ष्मातलाः ।

एकः कोऽपि च पाञ्चजन्य उदभूदाश्चर्यधामा सतां

यः संवर्तभरक्षमैर्मधुरिपोः श्वासानिलैः पूर्यते ॥ १६ ॥

अम्भोधरेव जाताः कति जगति न ते हन्त सन्तीह शङ्खा

यान्संगृह्य भ्रमन्ति प्रतिभवनममी भिक्षवो जीवनाय ।

एकः श्रीपाञ्चजन्यो हरिहरकमलकोडहंसायमानो

यस्याध्वानैरमानैरसुरवरवधूवर्गगर्भा गलन्ति ॥ १७ ॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ।

शङ्खः प्रतिगृहं रौति कर्म तस्यैव कारणम् ॥ १८ ॥

सो सद्दो धवलत्तणं च रयणादारंमि उप्पत्ती ।

सङ्खस्स तुज्झकुटिलत्तणेण सव्वंपि पब्भट्टम् ॥ १९ ॥

(इति शङ्खान्योक्तयः ।)

अथ मत्कुणस्य ।

मन्ये मत्कुणशङ्कया जलनिधौ गत्वा हरिः सुप्तवां-
स्तत्राभ्यम्बुरुहे प्रजापतिरभूलक्ष्मीश्च तद्वक्षसि ।

कैलासाचलमाश्रितः पशुपतिर्गौरी तदुत्सङ्गगा

नक्षत्रग्रहमण्डलं च सकलं येषां भयाङ्गाम्यति ॥ २० ॥

शशिदिनकरौ व्योम्नि स्वर्गे शचीहृदयेश्वरो

धनपतिरसौ कैलासाद्रौ हरिर्मकराकरे ।

शतधृतिरयं नामौ शम्भुः श्मशानभुवं गतो

भुजगरमणोऽधो मन्येऽहं द्रुतं किल मत्कुणात् ॥ २१ ॥

अथ खद्योतान्योक्तयः ।

जर्जरतृणाग्रमदहन्सर्षपकणमप्रकाशयन्नूनम् ।

कीटत्वमात्मतत्त्वात्खद्योतः ख्यापयन्भवति ॥ २२ ॥

इन्दुः प्रयास्यति विनङ्क्ष्यति तारकश्रीः

स्थास्यन्ति लीढतिमिरा न मणिप्रदीपाः ।

अन्धं समग्रमपि कीटमणे भविष्य-

त्युन्मेषमेप्यति भवानपि पूरमेतत् ॥ २३ ॥

अदृष्टिव्यापारं गतवति दिनानामधिपतौ

यशःशेषीभूते शशिनि गतधाम्नि ग्रहगणे ।

तथान्धं संजातं जगदुपनते मेघसमये

यथामी गण्यन्ते तमसि पटवः कीटमणयः ॥ २४ ॥

घनसन्तमसमलीमस दशदिशि निशि यद्विराजसि तदन्यत् ।

कीटमणे दिनमधुना तरणिकरान्तरितशीतकरम् ॥ २५ ॥

(इति खद्योतान्योक्तयः ।)

अथ अमरान्योक्तयः ।

मधुकर तव करनिकरैः किं किं कान्तं न कुसुमानाम् ।

तद्वत्सरसिजमुकुले लब्धं किञ्चित्तदन्यतत्सत्किम् ॥ २६ ॥

गौरीं चम्पककलिकामपहाय आन्त दुर्बुद्धे ।

शाल्मलिकुसुमदलेषु स्वैरं गुञ्जन्न लज्जसे मधुप ॥ २७ ॥

कृत्वापि कोशपानं भृङ्गयुवा पुरत एव कमलिन्याः ।

अभिलषति बकुलकलिकां मधुलिहि मलिने कुतः सत्यम् ॥ २८ ॥

सुरतरुकुसुमे मधु मधुरं यन्मधूपेन निपीतम् ।

सत्प्रयतोऽपि करीरतरौ लभतां कथमविगीतम् ॥ २९ ॥

अमन्वनान्ते नवमञ्जरीषु न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत् ।

सा किं न रम्या स च किं न रन्ता गरीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥ ३० ॥

अमर अमता दिगन्तराणि कचिदासादितमीक्षितं श्रुतं वा ।

वद सत्यमपास्य पक्षपातं यदि जातीकुसुमानुकारि पुष्पम् ॥ ३१ ॥

अभिनवनलिनीविनोदलुब्धो मुकुलितकैरविणीवियोगभीरुः ।

अमति मधुकरोऽयमन्तराले श्रयति स पङ्कजिनीं कुमुद्वतीं वा ॥ ३२ ॥

द्विजपतिदयितां तां व्यक्तपुष्पां प्रदोषे-

ऽप्यहह कुमुदिनीं किं भृङ्ग भुङ्क्ते स्वधार्थात् ।

मलिन मधुप मन्ये त्वय्यदः सर्वमहं

विहितमविहितं वा चिन्तयेत्को हि लोलः ॥ ३३ ॥

नो मल्लीमयमीहते न भजते मत्तेभकुम्भस्थलीं

वासन्तीं वसते न चन्दनवनीमालम्बते न कचित् ।

जातीमेव हृदीश्वरीमिव महानन्दैककन्दाङ्कुरां

ध्यायन्निर्वृतिमेति षट्पदयुवा योगीव वीतभ्रमः ॥ ३४ ॥

केतकीकुसुमं भृङ्गः खण्ड्यमानोऽपि सेवते ।

दोषाः किं नाम कुर्वन्ति गुणापहतचेतसः ॥ ३५ ॥

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग

लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।

मुग्धामनासरजसं कलिकामकाले

बालां कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥ ३६ ॥

विकटनितम्बायाः ।

बाला तन्वी मृदुतरतनुस्त्यज्यतामत्र शङ्कां

दृष्ट्वा किं न भ्रमर चरता मञ्जरी भज्यमाना ।

तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया

मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ॥ ३७ ॥

मदनमवलोक्य निष्फलमनित्यतां बन्धुजीवकुसुमानाम् ।

वनमुपगम्य भ्रमरः संप्रति जातो जपासक्तः ॥ ३८ ॥

फुल्लेषु यः कमलिनीकमलोदरेषु

चूतेषु यो विलसितः कलिकान्तरस्थः ।

पश्याथ तस्य मधुपस्य शरद्वपाये

कृच्छ्रेण वेणुविवरे दिवसाः प्रयान्ति ॥ ३९ ॥

स्वामोदवासितसमग्रदिगन्तराला

रक्ता मनोहरशिखा सुकुमारमूर्तिः ।

सेव्या सरोजकलिका तु सदैव जाता

नीतस्तदैव विधिना मधुपोऽन्यदेशम् ॥ ४० ॥

धिकापि प्रलयानलैर्विटपिनो निर्दह्य मस्मीकृताः

किंवा दैवगजेन पङ्कजवनं निष्कन्दमुन्मूलितम् ।

किंवा हन्त कृतान्तकेसरिभयात्त्यक्तो मदः कुञ्जरै-

र्येनास्मिन्विरसे करीरकुसुमे हा भृङ्ग विश्राम्यसि ॥ ४१ ॥

यत्प्रोन्मत्तमतङ्गजाङ्गविगलद्दानाम्बुलोभभ्रम-

भृङ्गाली किल कूजतीति विदुषां चित्ते विधत्ते धियम् ।

कर्णाभ्यर्णमुपेत्य किं ननु वदत्येषा शिरःकम्पनै-

र्मास्मान्वारय नाग देहि विततं दानं चलाः संपदः ॥ ४२ ॥

सोऽपूर्वो रसनाविपर्ययविधिस्तत्कर्णयोश्चापलं

दृष्टिः सा मदविस्मृतस्वपरदिक्किं भूयसोक्तेन वा ।

सत्यं विस्मृतवानसि अमर हे यद्वारणोऽद्याप्यसा-

वन्तःशून्यकरो निषेव्यत इति आतः क एष ग्रहः ॥ ४३ ॥

अनुसरति करिकपोलं अमरः श्रवणेन ताड्यमानोऽपि ।

गणयति न तिरस्कारं दानान्धविलोचनो नीचः ॥ ४४ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णताला-

दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।

तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा

भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥ ४५ ॥

प्रतिवेशी हंसजनः क्रीडाभवनानि पुण्डरीकाणि ।

हृद्यं मधु जलममलं मधुकर तत्रैव यदि रमसि ॥ ४६ ॥

मातङ्गेन मदावलिप्तमतिना यत्कर्णतालानिलै-

दानार्थं समुपागता मधुलिहो दूरं समुत्सारिताः ।

तस्यैवाननमण्डनक्षतिरमी भृङ्गाः पुनः सर्वतो

जीविष्यन्ति वनान्तरेषु विलसत्पुष्पासवैः साधुभिः ॥ ४७ ॥

यद्यप्याभ्रतरोरमुष्य तरुणीकर्णावतंसोचिता-

माजिघ्रन्नवमञ्जरीं मधुप हे जातोऽसि पूर्णोत्सवः ।

वि(स)र्तुं भवतस्तथाप्यनुचितं तद्वन्द्यमिन्दीवरं

यस्यास्वाद्य मधूनि धूनितशिरो मञ्जु त्वयोद्भुजितम् ॥ ४८ ॥

मधुकरगणश्रुतं त्यक्त्वा गतो नवमल्लिकां

पुनरपि गतो रक्ताशोकं कदम्बतरुं ततः ।

तदपि सुचिरं स्थित्वा तेभ्यः प्रयाति सरोरुहं

परिचितजनद्वेषी लोको नवं नवमीहते ॥ ४९ ॥

यस्याः सङ्गमवाञ्छया न गणिता वाप्यो विनिद्रोत्पला

यामालिङ्ग्य समुत्सुकेन मनसा यातः परां निर्वृतिम् ।

भग्नां तामवलोक्य चन्दनलतां भृङ्गेण यज्जीव्यते

धैर्यं नाम तदस्तु तस्य न पुनः स्नेहानुरूपं कृतम् ॥ ५० ॥

यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कुरु ।
 केतकीकुसुमगन्धमोहितो नान्यतो रतिमुपैति षट्पदः ॥ ५१ ॥
 मधुकर मा कुरु शोकं विचर करीरद्रुमस्य कुसुमेषु ।
 घनतुहिनपातदलिता कथं नु सा मालती मिलति ॥ ५२ ॥
 अपसर मधुकर दूरं परिमलबहुलेऽपि केतकीकुसुमे ।
 इह नहि मधुलवलाभो भवति परं धूलिधूसरं वदनम् ॥ ५३ ॥
 दग्धा सा बकुलावली कवल्लितास्त्वेते रसालद्रुमाः
 पुष्पास्तेऽपि विनिद्रपुष्पपटलीपीतातपाः पादपाः ।
 आतर्भृङ्ग दवाग्निना वनमिदं वल्मीकशेषं कृतं
 किं संप्रत्यपि काननान्तरपरिस्पन्दाय मन्दायते ॥ ५४ ॥
 दूरादुज्झति चम्पकं न च भजत्यम्भोजराजीरजो
 नो जिघ्रत्यपि पाटलापरिमलं चूते न धत्ते रतिम् ।
 मन्दारेऽपि न सादरो विचकिलामोदेऽपि संतप्यते
 तन्मन्ये कचिदङ्ग भृङ्ग तरुणेनास्वादिता मालती ॥ ५५ ॥
 अनन्यसाधारणसौरभान्वितं दधानमत्युज्ज्वलपुष्पसंपदः ।
 न चम्पकं भृङ्गगणः सिषेवे कथं सुगन्धेर्मलिनात्मनां रतिः ॥ ५६ ॥
 ये वर्धिताः करिकपोलमदेन भृङ्गाः
 प्रोत्फुल्लपङ्कजरजःसुरभीकृताङ्गाः ।
 ते सांप्रतं प्रतिदिनं गमयन्ति कालं
 निम्बेषु चार्ककुसुमेषु च दैवयोगात् ॥ ५७ ॥
 अलियुवा विललास चिराय यस्त्रिदशशैवल्लिनीकमलोदरे ।
 विधिवियोगनियोगवशीकृतो गततरौ स मरौ रमते कथम् ॥ ५८ ॥
 अपि दलन्मुकुले बकुले यया पदमदायि कदापि न तृष्णया ।
 अहह सा सहसा विमुखे विधौ मधुकरी बदरीमनुवर्तते ॥ ५९ ॥
 पादेनापहता येन जातीलुब्धेन मल्लिका ।
 अहो दैवादलेस्तस्य बदर्यपि सुदुर्लभा ॥ ६० ॥

अलिरयं नलिनीवनमध्यगः कुमुदिनीमकरन्दमदालसः ।

विधिनिदेशविदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥ ६१ ॥

येनामोदिनि पङ्कजस्य मुकुले पीतं मधु स्वेच्छया

नीता येन निशा शशाङ्कधवला पद्मोदरे शारदी ।

भ्रान्तं येन मदप्रवाहमलिने गण्डस्थले दन्तिनां

सोऽयं भृङ्गयुवा करीरविटपे बध्नाति तुष्टिं कुतः ॥ ६२ ॥

इह सरसि सहर्षं मञ्जु गुञ्जाभिरामं

मधुकर कुरु केलिं सार्धमम्भोजिनीभिः ।

अनुपममकरन्दामोददत्तप्रमोदा

त्यजति [तव] (वत) न निद्रां मालती यावदेषा ॥ ६३ ॥

एनाममन्दमकरन्दविनिद्रबिन्दु-

संदोहदोहदपदं नलिनीं विमुच्य ।

हे मुग्ध षट्पद निरर्थकरागभाजि

जातं मनस्तव जपाकुसुमे किमत्र ॥ ६४ ॥

निराचष्टे यष्टिं कुरबकतरोरञ्जसरसा-

मसद्भावं ब्रूते वदति बकुलानामकुशलम् ।

वनान्ते चूतानामभवनमिहाख्याति वसति-

मसौ झिञ्झीझाटे झटिति घटमानो मधुकरः ॥ ६५ ॥

निरानन्दः कौन्दे मधुनि विधुरो बालबकुले

रसाले सालम्बो लवमपि लवङ्गे न रमते ।

प्रियङ्गौ नो सङ्गं रचयति न चूते विचरति

स्मरँलक्ष्मीलीलाकमलमधुपानं मधुकरः ॥ ६६ ॥

अन्ये ते सुमनोलिहः प्रहसदप्यम्भोजमुज्जन्ति ये

वातान्दोलनकेलिचञ्चलदलप्रान्तैरपि त्रासिताः ।

अन्यः कोऽपि स एष षट्पदभटः संसह्य कर्णाहती-

र्येनानेकपगण्डगण्डलमिलद्धानाम्बुनि क्रीडितम् ॥ ६७ ॥

मा गा विषादमलिपोतक केतकीना-

मन्तर्विगूढमनवाप्य मधुप्रकर्षम् ।

लाभः स एव भवतो यदि कण्टकानां

श्रेणीभिरक्षतशरीरतया प्रयासि ॥ ६८ ॥

श्रियो वासोऽम्भोजे त्रिदिवसरिदम्भोजकुहरे

हरेर्नाभीपद्मे मधु मधुकरो यः किल पपौ ।

स दैवादुन्मीलत्तपनकरतापव्यतिकर-

व्यथाकम्पः संप्रत्यतरुमरुभूमौ विचरति ॥ ६९ ॥

आयाति याति पुनरेति पुनः प्रयाति

पद्माङ्कुराणि विचिनोति धुनोति पक्षौ ।

उन्मत्तवद्भ्रमति कूजति रारटीति

कान्तावियोगविधुरः किल चञ्चरीकः ॥ ७० ॥

अयं नीलस्निग्धो य इह विहरत्यम्बुजवने

विकोशे व्यागुञ्जन्मधुप इति तं जल्पति जनः ।

अहं शङ्के पङ्केरुहकुहरवासे व्यसनिनीं

श्रियं भृङ्गच्छद्वा मुररिपुरुषेतो रमयितुम् ॥ ७१ ॥

गन्धाढ्यां नवमालतीं मधुकरस्त्यक्त्वा गतो यूथिकां

तां त्यक्त्वाशु गतश्च चम्पकतरुं पश्चात्सरोजं गतः ।

रुद्धस्तत्र निशाकरेण सहसा क्रन्दत्यसौ मूढ हा

सन्तोषेण विना विवेकिमन (सा ते) [सःसं] प्राप्नुवन्त्यापदम् ॥ ७२ ॥

गन्धाढ्यासौ जगति विदिता केतकी स्वर्णवर्णा

पद्मभ्रान्त्या रसिकमधुपः पुष्पमध्ये पपात ।

अन्धीभूतः कुसुमरजसा कण्टकैश्छिन्नपक्षः

स्थातुं गन्तुं द्वयमपि सखे नैव शक्तो द्विरेफः ॥ ७३ ॥

मालतीमुकुले भाति गुञ्जन्मन्तमधुव्रतः ।

प्रयाणे पञ्चबाणस्य शङ्खमापूरयन्निव ॥ ७४ ॥

श्यामतया स्थूलतया दूरतया गन्धलोलुपैर्भ्रमैः ।
 धावितमिभराजधिया दृष्टश्चेदग्रतो महिषः ॥ ७५ ॥
 चिन्तयति न चूतलतां याति न जातिं न केतकीं क्रमते ।
 कमललतालग्नमना मधुपयुवा केवलं कणति ॥ ७६ ॥
 साहीणेषु न रच्चसि दुल्लहलम्बेषु वहसि अणुरायम् ।
 हरिणाहि कमलकं खिर रे भसल सुदुक्करं जियसि ॥ ७७ ॥
 दुण्डुण्णन्तो मरीहिसि कण्टयकलियाइं केयइ वणाइम् ।
 मालइकुसुमसरिच्छं भमर भमन्तो न पाविहिसि ॥ ७८ ॥
 वसिऊण सगगलोए गन्धं लहिऊण पारिजायस्स ।
 रे भसल किं न लज्जसि सेवन्तो निम्बकुसुमाइम् ॥ ७९ ॥
 गयगन्धं वलियरसं भूमीपडियं च केतकीकुसुमम् ।
 तहविहु पुव्वसनेहो भमरो आलिङ्गनं देई ॥ ८० ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारक-
 वृन्दारकराजपरमगुरुभट्टारकश्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्य-
 हंसविजयगणिसमुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां विकलेन्द्रियजीवा-
 न्योक्तिनिरूपकश्चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥

पञ्चमः परिच्छेदः ।

श्रीमच्छङ्खपुरस्फारभूमिमौलिमणीयते ।
 नमःपार्श्वजिनेशाय विश्वकल्पद्रुमाय ते ॥ १ ॥
 तव पार्श्वशपादाब्जसपर्यातत्परा नराः ।
 सुखश्रीसर्वसंपद्भिर्विलसन्त्यद्भुतोदयाः ॥ २ ॥
 वाचंयमेश शं देहि देहिनां त्रिदशैर्नतः ।
 तनुच्छविजितस्वर्णाचल वीर गभीरक ॥ ३ ॥

धनुर्बन्धचित्रम् ।

भद्रं मम महावीर शीघ्रं दद कुरु प्रभो ।
 कल्याणकमलागार क्षमारससमायुतः ॥ ४ ॥

SGDF

Sanatana Gita Foundation

शरबन्धचित्रम् ।

वयं स्मरामस्त्रिशलातनूजं सिद्धार्थसंतानकुलप्रदीपम् ।
 न हावभावैर्मरुदङ्गनाभिर्मनो यदीयं विशदं प्रमित्रम् ॥ ५ ॥
 श्रीदातारं विश्वाधारं बुद्ध्यासारं नित्योदारम् ।
 चञ्चलैरं वन्दे वीरं भूभृद्वीरं क्षेमागारम् ॥ ६ ॥

अष्टदलकमलबन्धचित्रमिदम् ।

श्रीविजयानन्दगुरुं विजयानन्दमन्दिरम् ।
 भूरि भूरिशिरोरत्नं महोदयमभिष्टुमः ॥ ७ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

प्रतिद्वारक्रमं चञ्चत्सच्चमत्कारकारकम् ।
 विरच्यते पञ्चमेऽथ परिच्छेदे पटीयसि ॥ ८ ॥
 सामान्यभूधरान्योक्तिर्मन्दरोक्तिस्ततः परम् ।
 हिमाद्यन्योक्ति[मै]नाकान्योक्तिपूर्वाचलोक्तयः ॥ ९ ॥
 ततो विन्ध्याचलान्योक्तिर्मलयाद्रेः सदुक्तयः ।
 रोहणोर्वीधरान्योक्ती रत्नस्यान्योक्तयस्तथा ॥ १० ॥
 मञ्जुमुक्ताफलान्योक्तिः सुवर्णोक्तिस्ततः परम् ।
 पित्तलोक्तिः समाख्याता धूल्युक्तिरपरा मता ॥ ११ ॥

अथ पृथ्वीकायपद्धतौ पूर्वं सामान्यपर्वतस्य ।

नाधन्यानां निवासं विदधति गिरयः शेखरीभूतचन्द्राः
 शृङ्गैर्ज्योत्स्नाप्रवाहं द्रुतमिव तुहिनं दिङ्मुखेषु क्षिपन्तः ।
 येषामुच्चैस्तरूणामविहतगतिना वायुना कम्पिताना-
 माकाशे विप्रकीर्णः कुसुमचय इवाभाति ताराग्रहौघः ॥ १२ ॥

अथ मेरोः ।

धिक्कनकं तव कनकगिरे यस्य न जगदुपभोगः ।
 वरमन्ये गिरयो येषां तृणकाष्ठाद्युपभोगः ॥ १३ ॥

ये संतोषसुखप्रबुद्धमनसस्तेषां न भिन्ना मुदो
 येप्यन्ये धनलोभसंकुलधियस्तेषां न तृष्णा हता ।
 इत्थं कस्य कृते कृतः स विधिना तादृक्पदं संपदां
 स्वात्मन्येव समाप्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते ॥ १४ ॥
 मुरारातिर्लक्ष्मीं त्रिपुरविजयी शीतकिरणं
 करीन्द्रं पौलोमीपतिरपि च लेभे जलनिधेः ।
 त्वया किंवा लब्धं कथय मथितो मन्दरगिरे
 शरण्यः शैलानां यदयमर्दयं रत्ननिलयः ॥ १५ ॥

अथ हिमालयस्य ।

विन्ध्यमन्दरसुमेरुभूभृतां यत्पतिस्तुहिनपर्वतोऽभवत् ।
 ईश्वरश्चशुरताप्रभावतस्तद्भुवं जगति जृम्भते यशः ॥ १६ ॥

अथ मैनाकस्य ।

शक्रादरक्षि यदि पक्षयुगं तथापि
 [मै]नाक सन्ति तव नेह गतागतानि ।
 निःसत्त्वता च निरपत्रपता च किंतु
 पाथोनिधौ निपतता भवतार्जिता च ॥ १७ ॥

अथ पूर्वांचलस्य ।

इक्कुच्चिय उदयगिरी जयन्तु चूडामणी भुवणमज्ज्ञे ।
 जोसीसे काऊणं मिच्छं उदयं करावेइ ॥ १८ ॥

अथ विन्ध्यभूधरस्य ।

आचक्ष्महे बत किमद्यतनीमवस्थां
 तस्याद्य विन्ध्यशिखरस्य महोन्नतस्य ।

यत्रैव सप्त मुनयस्तपसा निषेदुः

सोऽयं विलासवसतिः पिशिताशनानाम् ॥ १९ ॥

अथ मलयाचलस्य ।

वन्दामहे मलयमेव यदाश्रयेण

शाखोटनिम्बकुटजा अपि चन्दनन्ते ।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा

यस्याश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥ २० ॥

त्वं सेवितः किल फलाय तदस्तु दूरे

व्यालान्निवारय निपीडयतो बलान्नः ।

एतत्तवाप्यभिमतं यदि तन्नमस्ते

यामोऽन्यतो मलय हे नतु चन्दनः स्मः ॥ २१ ॥

इक्कस्स मलयगिरिणो दिज्जइ रेहागिरीणमइझम्मि ।

जत्थ विय कडुय निम्बा रुरका सिरिचन्दणं होन्ति ॥ २२ ॥

अथ रोहणाचलस्य ।

रोहणाचल शैलेषु कस्तुलां कलयेत्तव ।

यस्य पाषाणखण्डानि मण्डनानि महीभृताम् ॥ २३ ॥

रत्नानां न किमालयो जलनिधिः किं न स्थिरा मेदिनी

किं न व्योम महत्पदं सुकृतिनां किं नाम नैवोन्नतम् ।

हंहो रोहण किं तु याचकचमूनिःशङ्कटङ्कक्षति-

क्षान्तिस्वीकरणेन गोत्रतिलकस्रैलोक्यवन्द्यो भवान् ॥ २४ ॥

(इति सामान्यविशेषपर्वतान्योक्तयः ।)

अथ रत्नान्योक्तयः ।

अनस्तमितसारस्य तेजसस्तद्विजृम्भितम् ।

येन पाषाणखण्डस्य मूल्यमल्पं वसुंधरा ॥ २५ ॥

यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः ।

करोति तत्र किं नाम नारीनखविलेखनम् ॥ २६ ॥

सोमकान्तो मणिः स्वच्छः सूर्यकान्तस्तथा न किम् ।

उद्गारे तु विशेषोऽस्ति तयोरमृतवह्निजः ॥ २७ ॥

स्फटिकस्य गुणो योऽसौ स एवायाति दोषताम् ।

धत्ते स्वच्छतया छायां यतो मलवतामपि ॥ २८ ॥

सुधाकरकरस्पर्शाद्बहिर्द्रवसि सर्वतः ।

चन्द्रकान्तमणे तेऽन्तर्मृदुत्वं लोकविश्रुतम् ॥ २९ ॥

वपुःपरीणाहगुणेन तेभ्यो यशस्विनः किं मणयो भवन्ति ।

तथापि चूडासु महीपतीनां त एव खेलन्ति न गण्डशैलाः ॥ ३० ॥

काचो मणिर्मणिः काचो येषां ते बहवो जनाः ।

विरलास्ते पुनर्येषां काचः काचो मणिर्मणिः ॥ ३१ ॥

मणिर्लुठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।

परीक्षकरप्राप्तः काचः काचो मणिर्मणिः ॥ ३२ ॥

त्यज निजगुणाभिमानं मरकत पतितोऽसि पामरे वणिजि ।

काचमणेरपि मूल्यं लभसे यत्नादपि श्रेयः ॥ ३३ ॥

नार्ह्यन्ति रत्नानि समुद्रजानि परीक्षका यत्र न सन्ति लोकाः ।

आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं त्रिभिर्वराटैः प्रवदन्ति गोपाः ॥ ३४ ॥

अष्टं नृपतिकिरीटाद्भूमौ पतितं तिरोहितं रजसा ।

विधिविलसितेन रत्नं जनचरणविडम्बनां सहते ॥ ३५ ॥

कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते ।

न स विरौति न चापि न शोभते भवति योजयितुर्वचनीयता ॥ ३६ ॥

विरम रत्न मुधा तरलायसे तव न कश्चिदिहास्ति परीक्षकः ।

विधिवशेन परिच्युतमाकरात्त्वमपि काचमणीकृतमीश्वरैः ॥ ३७ ॥

एकस्मिन्दिवसे मया विचरता प्राप्तः कथंचिन्मणि-

मूल्यं यस्य न विद्यते भवति चेत्पृथ्वी समस्ता ततः ।

सोऽयं दैववशाद्भूदतितरां काचोपमः सांप्रतं

किं कुर्मः कमुपास्महे क्व स सुहृदस्यैतदावेद्यते ॥ ३८ ॥

आघ्रातं परिलीढमुग्रनखरैः क्षुण्णं च यच्चर्वितं

क्षिप्तं यद्गत नीरसत्वकुपितेनेति व्यथां मा कृथाः ।

हे माणिक्य तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणाग्रहा-
दन्तःसत्त्वनिरूपणाय सहसा चूर्णीकृतं नाश्मना ॥ ३९ ॥

यामस्ते शिवमस्तु रोहणगिरे मत्तः स्थितिप्रच्युता
वर्तिष्यन्त इमे कथं कथमपि स्वप्नेऽपि भैवं कृथाः ।

भ्रातस्ते मणयो वयं यदि भवन्नामप्रसिद्धास्ततः

॥ ४० ॥ किं शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो नाङ्गीकरिष्यन्ति नः ॥ ४० ॥

उत्तंसेषु ननर्त न क्षितिभुजां न प्रेक्षकैर्लक्षितः

साकाङ्क्षं लुठितो न च स्तनतटे लीलावतीनां कचित् ।

कष्टं भोश्चिरमन्तरेव जलधेर्देवाद्विशीर्णोऽभव-

त्वेलद्यालकुलाङ्गघर्षणपरिक्षीणप्रमाणो मणिः ॥ ४१ ॥

पौरस्यैर्दाक्षिणात्यैः स्फुरदुरुमतिभिर्मित्रपाश्चात्यसङ्घै-

रौदीच्यैर्यत्परीक्ष्य क्षितिपतिमुकुटे न्यासि मणिक्यमेकम् ।

यद्येतस्मिन्कथंचित्कथयति कृपणः कोऽपि मालिन्यमन्यः

॥ ४२ ॥ प्रेक्षावन्तस्तदा तं निरवधिजडतामन्दिरं संगिरन्ते ॥ ४२ ॥

ये गृह्णन्ति हठात्तृणानि मणयो ये वाप्ययःखण्डकं

॥ ते दृष्टाः प्रतिधाम दग्धमनसो विच्छिन्नसंख्याश्चिरम् ।

नो जाने किमभावतः किमथ वा दैवादहो श्रूयते

॥ ४३ ॥ नामाप्यत्र न तादृशस्य हि मणे रत्नानि गृह्णाति यः ॥ ४३ ॥

पथि परिहृतं कैश्चिद्दृष्ट्वा न जातु परीक्षितं

॥ ४४ ॥ विधृतमपरैः काचं मत्वा पुनः परिवर्जितम् ।

गवलगलनामन्यैः कृत्वा प्रघृष्टमपण्डितै-

र्मरकतमहो मार्गावस्थं कथं न बिडम्बितम् ॥ ४४ ॥

वणिगधिपते किञ्चिद्भूमस्त्रपामिह मा कृथाः

॥ ४५ ॥ कथय निभृतं केयं नीतिः पुरे तव संप्रति ।

मरकतमणिः काचो वायं भवेदिति संशये

॥ लवणवणिजां यद्वापारः परीक्षितुमर्पितः ॥ ४५ ॥

केनासीनः सुखमकरुणे नाकरादुद्धृतस्त्वं

विक्रेतुं वा समभिलषितः केन वास्मिन्कुदेशे ।

यस्मिन्वित्तव्ययभरमहो ग्राहकस्तावदास्तां

नास्ति अतिर्मरकतमणे त्वत्परीक्षाक्षमोऽपि ॥ ४६ ॥

न श्वेतांशुवदन्धकारदलनादुद्योतिता रोदसी

नाप्यैरावतवन्निरस्तदितिजत्रासः कृतो वासवः ।

नो चिन्तामणिरत्नवन्निभुवने छिन्ना विपच्चार्थिनां

भूत्वा तस्य हरेरुरःप्रणयिना किं कौस्तुभेनार्जितम् ॥ ४७ ॥

सिन्धुस्तरङ्गैरुपलाल्य फेनान् रत्नानि पङ्कैर्मलिनीकरोति ।

तथापि तान्येव महीपतीनां किरीटकोटीषु पदं लभन्ते ॥ ४८ ॥

सन्त्यन्ये झषकेतनस्य मणयः किं नोल्लसत्कान्तयः

किंवा तेऽपि जनेन भूषणपदं न्यस्ता न शोभाभृतः ।

अन्यः कोऽपि तथापि कौस्तुभमणिः स्फीतः स्फुरद्दीधिति-

र्यः पूषेव नभः समुज्ज्वलयति स्फारं मुरोरुरः ॥ ४९ ॥

इक्केण कोत्थुहेण विणा विरयणाय रच्चिय समुदो ।

कोत्थुह रयणंपि उरे जस्स वियं सोविहु महग्घो ॥ ५० ॥

(इति रत्नान्योक्तयः।)

अथ मौक्तिकस्य ।

यन्मुक्तामणयोऽम्बुधेरुदरतः क्षिप्ता महावीचिभिः

पर्यन्तेषु लुठन्ति निर्मलरुचः स्पष्टाद्दृहासा इव ।

तत्तस्यैव परिक्षयो जलनिधेर्द्वीपान्तरालम्बिनो

रत्नानां तु परिग्रहव्यसनिनः सन्त्येव सांयात्रिकाः ॥ ५१ ॥

आः कष्टं सुविवेकशून्यहृदयैः संसर्गमाप्तं च तै-

र्विकीतं वदरैः समं क्षितितले कुग्रामसीम्नि स्फुटम् ।

संविष्टं शठगाढमूढवदने घूत्कारदूरीकृतं

किं जानात्यगुणो जनो गुणमतो मुक्ताफलं रोद(दि)ति ॥ ५२ ॥

अये मुक्तारत्न प्रचल बहिरुद्योतय गृहा-
 नपि क्षोणीन्द्राणां कुरु फलवतः स्वानपि गुणान् ।
 किमत्रैवात्मानं जरयसि मुधा शुक्तिकुहरे
 महागम्भीरोऽयं जलधिरिह कस्त्वां गणयति ॥ ५३ ॥

(इति मौक्तिकान्योक्तयः ।)

अथ सुवर्णस्य ।

हां हैम किं न तत्रैव विलीनो दहनोदरे ।
 पाषाणशकलाधीनो यद्गुणग्रामनिर्णयः ॥ ५४ ॥
 अग्निदाहे न मे दुःखं न दुःखं ग्रावघर्षणे ।
 एकमेव महद्दुःखं गुञ्जया सह तोलनम् ॥ ५५ ॥

(इति सुवर्णन्योक्तयः ।)

अथ पित्तलस्य ।

रे रङ्ग हेमकलया तुलितोऽसि नूनं
 मानं जहीहि किमु पश्यसि नो विशेषम् ।
 खर्णं हि रत्नखचितं नृपशेखरेषु
 त्वं पाप पामरवधूचरणेषु लीनः ॥ ५६ ॥
 धूलिर्मूलपदार्थसार्थजननी स्तम्भाद्यवष्टम्भदा
 लेखाश्लेषकरी करीश्वरकरासङ्गिन्यवश्यं प्रिया ।
 अग्रे गन्धमधोः शिशोः सुखकृतिः कालत्रयेऽपि स्थिरा
 तस्माद्भूलिसमं न चास्ति किमपि क्षेप्या मुखे पापिनाम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारक-
 वृन्दारकराजपरमगुरुभट्टारकश्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्य-
 पण्डितहंसविजयगणिसमुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां पृथ्वीकायिका-
 न्योक्तिनिरूपकः पञ्चमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥

१. कस्तूरिकानाम् गन्धधूलिः, षण्डनाम् मधुधूलिः, तेन गन्धमधोरये स्थिता । प्राधान्य-
 ख्यापनार्थमेतत्कथनमिति.

षष्ठः परिच्छेदः ।

विलोकयन्ति ये स्वामिंस्त्वदीयं वदनाम्बुजम् ।

ते भवन्ति भवत्तुल्या विभूत्या पार्श्वतीर्थप ॥ १ ॥

यस्य दृष्टिसुधावृष्टिसिक्तः सर्पो बभूव च ।

नागराजो नागकुले स पार्श्वः श्रेयसेऽस्तु वः ॥ २ ॥

स्वस्तिकबन्धचित्रम् ।

भद्राय मम वामेय भव त्वममलद्युतिः ।

भवकाननमातङ्ग भविलोककजांशुमान् ॥ ३ ॥

सिद्धयेऽस्तु महावीर महावीरजगद्धिभुः ।

यो विजित्य रणे रागाद्यरीन्वन्ने जयश्रियम् ॥ ४ ॥

बीजपूराकृतिचित्रम् ।

देव त्वं संपदं धीर देयाः कल्याणसागर ।

देवेन्द्रार्चितपत्सार देशनो ज्ञातजादर ॥ ५ ॥

रीत्यन्तरेण मुरजबन्धचित्रम् ।

नित्यनम्र सुपर्वेश सुखाय शुभदायकः ।

वर्धमानवरोदार रदादार सतां भव ॥ ६ ॥

श्रीमत्तपागच्छस्वच्छसुरशैलसुरद्रुमम् ।

विजयानन्दसूरीशं स्वगुरुं प्रणिर्दध्महे ॥ ७ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

अथाभिव्यक्तये ब्रूमः प्रतिद्वारान्यथाक्रमम् ।

स्पष्टं षष्ठपरिच्छेदे दक्षलक्षमुदां प्रदे ॥ ८ ॥

आदौ यादोनिवासोक्तिः पारावारवरोक्तयः ।

क्षीरनीरनिधेरुक्तिर्नद्युक्तिर्जाह्व्युक्तयः ॥ ९ ॥

स्फारकासारसाधूक्तिः पद्मपद्माकरोक्तयः ।

कूपकोक्तिः पावकोक्तिः कज्जलध्वजपद्धतिः ॥ १० ॥

तथा दावानलान्योक्तिर्धृमान्योक्तिर्जनप्रिया ।

पवनान्योक्तयो ज्ञेया लब्धवर्णगणैर्मुदा ॥ ११ ॥

अथ कायाधिकारपद्धतौ प्रथमं जलान्योक्तयः ।

शैत्यं नाम गुणस्तवैव भवतः स्वाभाविकी स्वच्छता

किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्त्यशुचयः सङ्गेन यस्यापरे ।

किं वातः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवनं देहिनां

त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥ १२ ॥

अब्जं त्वज्जमथाब्जभूस्तत इदं ब्रह्माण्डमत्राभव-

द्विश्वं स्थावरजङ्गमं तदखिलं त्वन्मूलमित्थं पयः ।

धिक् त्वां चौर इव प्रयासि शनकैर्निःसृत्य जालान्तरे

बध्यन्ते विवशास्त्वदेकशरणास्त्वामाश्रिता जन्तवः ॥ १३ ॥

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते

मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।

स्वातौ सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो यान्ति ते ॥ १४ ॥

स्वच्छं सज्जनचित्तवल्लुपतरं दीनार्थिवच्छीतलं

पुत्रालिङ्गनवत्तथा च मधुरं बालस्य संजल्पवत् ।

एलोशीरलवङ्गचन्दनरसं कर्पूरपारीमिल-

त्पाटल्युत्पलकेतकीसुरभितं पानीयमानीयताम् ॥ १५ ॥

(इति जलान्योक्तयः।)

अथ समुद्रान्योक्तयः ।

नावज्ञया न वैदग्ध्यादुदधेर्महिमैव सः ।

यत्तीरपङ्कमग्नानि महारत्नानि शेरते ॥ १६ ॥

रत्नैरापूरितस्यापि मदलेशोऽस्ति नाम्बुधेः ।

मुक्ताः कतिपयाः प्राप्य मातङ्गा मदविह्वलाः ॥ १७ ॥

अधः करोषि यद्रत्नं मूर्ध्ना धारयसे तृणम् ।

दोषस्तत्रैव जलधे रत्नं रत्नं तृणं तृणम् ॥ १८ ॥

अनया रत्नसमृद्धा सागर लहलहसि किमिह लहरीभिः ।

तव वल्लभा वराक्यो वहन्ति वर्षासु सलिलानि ॥ १९ ॥

हेलोल्लालितकल्लोल धिक् ते सागर गर्जितम् ।

यस्य तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ॥ २० ॥

निषेव्य सरितां पत्युस्तटीं पक्षिगणा अपि ।

यत्पिबन्ति सरस्तोयं सैव लज्जा महोदधेः ॥ २१ ॥

अब्धिरना सह मित्रत्वे दारिद्र्यं यदि जायते ।

लाञ्छनं सागरस्यैव मैत्रीकर्तुर्न लाञ्छनम् ॥ २२ ॥

अन्तः किञ्चित्किञ्चिन्मुक्तानामहह विभ्रमं वहसि ।

दूरादर्शयसि पुनः क्षारोद्गारं जडाधीशः ॥ २३ ॥

अस्ति जलं जलराशौ क्षारं तत्किं विधीयते येन ।

लघुरपि वरं स कूपो यत्राकण्ठं जनः पिबति ॥ २४ ॥

मथितो लङ्घितो बद्धः पीतो यद्यपि सागरः ।

गर्जत्युच्चैस्तदप्येष जडात्मानो हि निस्त्रपाः ॥ २५ ॥

यद्यपि बद्धः शैलैर्यद्यपि गिरिमथनमुषितसर्वस्वः ।

तद्रपि पुरंदरभीतक्षमाधररक्षासु दीक्षितो जलधिः ॥ २६ ॥

यद्यपि स्वच्छभावेन दर्शयत्युदधिर्मणीन् ।

तथापि जानुदघ्नोऽयमिति चेतसि मा कृथाः ॥ २७ ॥

स्वस्त्यस्तु विद्रुमवनाय नमो मणिभ्यः

कल्याणिनी भवतु मौक्तिकशुक्तिरेषा ।

प्राप्तं मया सकलमेतदतः पयोधे-

र्यद्वारुणैर्जलचरैर्न विदारितोऽस्मि ॥ २८ ॥

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः

किं तावदर्जितमनेन महार्णवेन ।

क्षारीकृतं च वडवावदने हुतं च
पातालकुक्षिविर्वरे विनिवेशितं च ॥ २९ ॥

चपलतरतरङ्गैर्दूरमुत्सारितोऽपि
प्रथयति तव कीर्तिं दक्षिणावर्तशङ्खः ।

इति कलय पयोधे पद्मनाभार्घयोग्य-

स्तव निकटनिषण्णैः क्षुल्लकैः श्लाघ्यता का ॥ ३० ॥

वद्धस्त्वं ननु राघवेण जलधे मुष्टोऽसि देवासुरैः

श्रीमद्रामशरामिभीतमनसा त्यक्ता त्वया मेदिनी ।

आपीतस्त्वमगस्तिना निमिषतः कृत्वाथ मुक्तो भवान्

लोके गर्जसि यत्पुनस्त्वमधुना निर्लज्ज तुभ्यं नमः ॥ ३१ ॥

किं चन्द्रेण महोदधेरुपकृतं दूरेऽपि संतिष्ठता

वृद्धौ येन विवर्धते व्रजति च क्षीणे क्षयं सागरः ।

आ ज्ञातं परकार्यनिश्चितधियां कोऽपि स्वभावः सतां

सैरङ्गैरपि ये न यान्ति तनुतां दृष्ट्वा परं दुःखितम् ॥ ३२ ॥

किं ब्रूमो जलधेः श्रियं स हि खलु श्रीजन्मभूमिः स्वयं

वाच्यः किं महिमापि यस्य हि किंल द्वीपं महीति श्रुतिः ।

त्यागः कोऽपि स तस्य बिभ्रति जगद्यस्यार्थिनोऽप्यम्बुदाः

शक्तेः कैव कथापि यस्य भवति क्षोभेण कल्पान्तरम् ॥ ३३ ॥

एतस्माज्जलधेर्जलस्य कणिकाः काश्चिद्रुहीत्वा ततः

पाथोदाः परिपूरयन्ति जगतीं रुद्धाम्बरा वारिभिः ।

भ्राम्यन्मन्दरकूटकोटिघटनाभीतिभ्रमत्तारिकां

प्राप्यैकां जलमानुषीं त्रिभुवने श्रीमानभूदच्युतः ॥ ३४ ॥

दूरान्मार्गे ग्लपितवपुषो मारुतोचंसिताम्भः-

कल्लोलालीबहुलिततृणे धाविताः पान्थसार्थाः ।

व्यावर्तन्ते तटमुपगता यस्य विच्छिन्नवाञ्छा-

स्तस्याम्भोधेर्विपुलपयसः कार्यतः किं न शुष्कम् ॥ ३५ ॥

अब्धेरर्णःस्थगितभुवनाभोगपातालकुक्षेः

पोतोपायादिह हि बहवो लङ्घनेऽपि क्रमन्ते ।

आहो रिक्तः कथमपि भवेदेष दैवात्तदानीं

को नाम स्यादवरकुहरालोकनेऽप्यस्य शक्तः ॥ ३६ ॥

प्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीः पयोमानुषी

मुक्तौघाः सिकताः प्रवाललतिका शैवालमम्भः सुधा ।

तीरे कल्पमहीरुहः किमपरं नाम्नापि रत्नाकरो

दूरे कर्णरसायनं निकटतस्तृष्णापि नो शाम्यति ॥ ३७ ॥

एतस्मादमृतं सुरैः शतमखेनोच्चैःश्रवाः सद्गुणः

कृष्णेनाद्भुतविक्रमैकवसतिर्लक्ष्मीः समासादिता ।

इत्यादिप्रचुराः पुरातनकथाः सर्वेभ्य एव श्रुता

अस्माभिर्न च दृष्टमत्र जलधौ मृष्टं पयोऽपि क्वचित् ॥ ३८ ॥

संख्येया न भवन्ति ते युगशतैर्गाम्भीर्यमुख्या गुणाः

सत्यं वारिनिधे तथापि तदिदं चित्ते विधत्ते व्यथाम् ।

खच्छन्देन तिमिङ्गिला निजकुलग्रासं पुनः कुर्वते

यत्ते वारयितुं निजेऽपि विषये न स्वामिता विद्यते ॥ ३९ ॥

तृषं धरायाः शमयत्यशेषां यः सोऽम्बुदो गर्जति गर्जतूच्चैः ।

यस्त्वेककस्यापि न हंसि तृष्णां स किं वृथा गर्जसि निस्त्रिपाब्धे ॥ ४० ॥

कल्लोलैः स्थगयन्मुखानि ककुभामभ्रंलिहैरम्भसा

क्षारेणापि दिवानिशं जलनिधे गर्जन्न विश्राम्यसि ।

एतत्ते यदि घोरनक्रनिलयं स्वादुं विधास्यद्विधिः

किं कर्तासि तदा न वच्मि तरलैस्तैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ ४१ ॥

यद्वीचीभिः स्पृशसि गगनं यच्च पातालमूलं

रत्नैरुद्दीपयसि पयसा यत्पिधत्से धरित्रीम् ।

धिकं सर्वं तत्तत्र जलनिधे यद्विमुच्याश्रुधारा-

स्तीरे नीरग्रहणरसिकैरध्वगैरुज्झितोऽसि ॥ ४२ ॥

अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति

श्रितोऽस्माभितृष्णातरलितमनोभिर्जलनिधिः ।

क एवं जानीते निजकरपुटीकोटरगतं

क्षणादेनं ताम्यत्तिमिनिकरमापास्यति मुनिः ॥ ४३ ॥

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-

मितश्च शरणार्थिनः शिखरिपत्रिणः शेरते ।

इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-

रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥ ४४ ॥

धामारोहति वाञ्छति स्थगयितुं तेजोऽपि तेजस्विना-

मुच्चैर्गर्जति पूरयन्नपि महीमम्भोभिरम्भोधरः ।

कांश्चिद्भागुपजीव्य तोयचुलुकान्सिन्धो भवत्संनिधेः

पानीयप्रचयेषु सत्स्वपि न ते जातो विकारः क्वचित् ॥ ४५ ॥

अये वारांराशे कुलिशकरकोपप्रतिभया-

दयं पक्षप्रेम्णा गिरिपरिवृढस्त्वामुपगतः ।

त्वदन्तर्वास्तव्याद्यदि पुनरयं वाडवशिखी

प्रदीप्तः प्रत्यङ्गं ग्लपयति ततः कोऽस्य शरणम् ॥ ४६ ॥

किं वाच्यो महिमा महाजलनिधेर्यस्येन्द्रवज्राहति-

त्रस्तः क्षमाभृदमज्जदम्बुनिचये कौलीनपोताकृतिः ।

मेनाकोऽपि गभीरनीरविलसत्पाठीनपृष्ठोलस-

च्छैवालाङ्कुरकोटिकोटरकुटीकुड्यान्तरे निर्वृतः ॥ ४७ ॥

रत्नानि रत्नाकर मावमंस्था महोर्मिभिर्यद्यपि ते बहूनि ।

हानिस्तवैवेह गुणैस्त्विमानि भावीनि भूवल्लभमौलिभाञ्जि ॥ ४८ ॥

कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारै

रत्नान्यमूनि मकराकर मावमंस्थाः ।

किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम

याच्चाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोऽपि ॥ ४९ ॥

अस्तंगते निजरिपावपि कुम्भयोनौ
 संकोचमाप जलधिर्न तु माद्यति स्म ।
 गम्भीरतागुणचमत्कृतविष्टपानां
 शत्रुक्षयेऽपि महतामुचितं हृदः स्यात् ॥ ५० ॥
 स्वच्छन्दं मन्दराद्रिर्भ्रमयतु मरुतस्ते च मुष्णन्तु सारं
 दुर्वारं वारिदाली पिबतु दहतु वा वह्निरौर्वः सैर्गर्वः ।
 यादःसंदर्भगर्भैः पृथुतरगगनोत्सङ्गरङ्गैस्तरङ्गै-
 र्निर्मर्यादं समुद्र त्वयि चलति पुनर्विश्वमेतत्कुतस्त्यम् ॥ ५१ ॥
 कृष्णाय प्रतिपादयन्स्वकमलां शीतद्युतिं शंभवे
 पीयूषं दिविषद्गणाय दिविषन्नाथाय दन्तीश्वरम् ।
 धिग्धिक्प्रत्युपकारकातरधियः सर्वानिमानम्बुधे
 यैस्त्रातोऽसि न कुम्भसंभवमुनेर्गण्डूषभावं भजन् ॥ ५२ ॥
 पातालं वसतिः परिच्छदपदं शेषादयः पन्नगा
 जामाता जगदीश्वरो मधुरिपुः पत्नी नभोनिम्नगा ।
 कन्यैका कमला धनानि मणयः पुत्रौ शशाङ्कामृतौ(ते)
 निःसामान्यमहो महार्णव तव श्लाघ्या कुटुम्बस्थितिः ॥ ५३ ॥
 गम्भीरस्य महाशयस्य सहजस्वच्छस्य सेव्यस्य ते
 सर्वं साध्विदकूप(?) किंतु तदपि स्तोकं किमप्युच्यते ।
 पात्रं दूरमधःकरोति गुणवद्यः सोऽपि तृष्णाक्लमः
 प्रौढः प्रोन्मथने भवानपि पटुर्यत्नेन लज्जामहे ॥ ५४ ॥
 हे हेलाजितबोधिसत्त्व वचसां किं विस्तरैस्तोयधे
 नास्ति त्वत्सदृशः परः परहिताधाने गृहीतव्रतः ।
 तृप्यत्पान्थजनोपकारघटनावैमुख्यलब्धायशो-
 भारस्योद्धहने करोषि कृपया साहाय्यकं यन्मरोः ॥ ५५ ॥
 स्थानं कल्पतरोः सुधाजनिखनिश्चिन्तामणेः कोशभूः
 शय्यागारमजस्य मातृसदनं लक्ष्म्याः प्रपाम्भोमुच्चाम् ।

और्वस्यावरणं गिरेश्च शरणं दुर्गं महद्वारणं

भूमेः प्रावरणं कथं कथमहो रत्नाकरो वर्ण्यते ॥ ५६ ॥

लक्ष्म्यास्त्वं निलयो निधिश्च पयसां निःशेषरत्नाकरो

मर्यादाभिरतस्त्वमेव जलधे ब्रूतेऽत्र कोऽन्यादृशम् ।

किं त्वेकस्य गृहागतस्य वडवावहेः सदा तृष्णया

क्लान्तस्योदरपूरणेऽपि न सहो यत्तन्मनाब्जध्यमम् ॥ ५७ ॥

मार्गासन्नतरावरं विवरिकापर्यन्तशीतद्रुमा

यस्यां पान्थजनाः पिबन्ति सलिलं सोत्कण्ठमुत्कण्ठिताः ।

अम्भोधे किमु तैरसंख्यमणिभिः किं वा पयोभिर्धनै-

र्यस्यारात्तटमागतैः पथि जनैस्तृष्णातुरैर्गम्यते ॥ ५८ ॥

लच्छी धूया जामा उयोहरी तह घरन्निया गङ्गा ।

अमयमयंकाइ सुआ अहो कुडम्बं महो अहिणो ॥ ५९ ॥

आकुट्टिऊण नीरं रेवारयणायरम्मि संपत्ता ।

नहु गच्छइ मरुदेसे सव्वं भरिया भरिज्जन्ति ॥ ६० ॥

रयणायस्स न हुया तुच्छि मानिग्गएहिं रयणेहिम् ।

तहविह चन्दसरिच्छा विरला रयणायरे रयणा ॥ ६१ ॥

रयणाय रतीरट्टियाण पुरिसाण जं च दारिद्दम् ।

सारयणायरलज्जा नहु लज्जा इयर पुरिसाणम् ॥ ६२ ॥

सोसन्न गओ गओ रसायलं किं न फुट्टोऽसि ।

आसन्नसण्ठियाणं अन्नं न जलं पियन्ताणम् ॥ ६३ ॥

खणिओसि केण इत्थं केणविभरिओसि इत्तिय जलस्स ।

हा हालाहल सायर हा पुढवि निरत्थयं रुद्धा ॥ ६४ ॥

जह जह सरिया उज्जल भरेण तह तह किलम्मए उदधी ।

महिलाहिन्तो रिद्धी ईहन्ति कहं महापुरिसा ॥ ६५ ॥

महितो सरेहिं पीओ अगत्थिणा वाडवेण संतत्तो ।

दहरहसुएण बद्धो रयणनिही तहवि गम्भीरो ॥ ६६ ॥

अन्नो कोऽवि सहावो समुद्रगम्भीरयाइ भावस्स ।
 अमयं विसंहुआसो समयं विय जेण धरियाइम् ॥ ६७ ॥
 जह गम्भीरो जह रयण निब्भरो जहय निम्मलच्छाओ ।
 ता किं विहिणा सो सर सवाणओ जलनिहीनकओ ॥ ६८ ॥
 खलजणसहसंगेणं पडन्ति सुहणाण मत्थए णत्था ।
 दहवयणकयविरोहे रयणनिहीबन्धणं पत्तो ॥ ६९ ॥
 रयणेहिं निरन्तर पूरियस्स रयणायरस्स नहु गव्वम् ।
 करिणो मुत्ताहलसंभएवि मयभिम्भला दिट्ठी ॥ ७० ॥

इति सामान्यसमुद्रान्योक्तयः ।

अथ क्षीरसमुद्रस्य ।

माणिक्याकर पारिजातजनक श्रीकान्तलीलागृहं
 पीयूषाङ्कनिवास वासवनदीवैदग्ध्यदीक्षागुरो ।
 धिक्क्षीराम्बुनिधे तदेवमखिलं रूपं यदभ्यागतो
 दिग्वासा क्षुधितश्चराचरगुरुर्देवो विषं पायितः ॥ ७१ ॥

अथ सामान्यनद्यन्योक्तयः ।

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोऽपि भविता ते ।
 तटिनि तटद्रुमपातनपातकमेकं चिरस्थायि ॥ ७२ ॥
 शरदि रविरश्मितसा बिभ्राणाः शोषमतिशयग्लपिताः ।
 ज्वरिता इव लक्ष्यन्ते लङ्घनयोग्या महासरितः ॥ ७३ ॥
 कुरु गम्भीराशयतां कल्लोलैर्जनय लोकविभ्रान्तिम् ।
 वीतपयोधरलक्ष्मीः कस्य न चरणैर्विलङ्घ्यासि ॥ ७४ ॥
 आसन्ननाशं सलिलं तटाके कूपादिकानामतियत्नलभ्यम् ।
 नदि त्वमग्र्यासि जलाश्रयाणां यस्यां युगस्थायि सुलम्भमम्भः ॥ ७५ ॥
 मलयस्य महागिरेरपत्यं तदनु भ्रातृमती पटीरवृक्षैः ।
 अपि सैव महोदधेः कलत्रं तटिनी मौक्तिकसूः किमत्र चित्रम् ॥ ७६ ॥

१. 'तवेदम्' इति स्यात्. २. 'यास्यति जलभरकालस्तव च समृद्धिर्लघीयसी भविता'
 इति वा पाठः.

आजन्मस्थितयो महीरुह इमे कामं समुन्मूलिताः

कल्लोलाः क्षणभङ्गुराः पुनरमी नीताः परामुन्नतिम् ।

अन्तर्ग्राहपरिग्रहो बहिरपि आभ्यन्ति गन्धद्विपा

आतः शोण न सोऽस्ति यो न हसति त्वत्संपदं विप्लवान् ॥ ७७ ॥

छायां प्रकुर्वन्ति नमन्ति पुष्प[ष्पैः] फलं प्रयच्छन्ति तटद्रुमा ये ।

उन्मूल्य तानेव नदी प्रयाति तरङ्गिणां क प्रतिपन्नमस्ति ॥ ७८ ॥

अथ गङ्गायाः ।

यद्यपि दिशि दिशि सरितः परितः परिपूरिताम्भसः सन्ति ।

तदपि पुरंदरतरुणीसंगतिसुखदायिनी गङ्गा ॥ ७९ ॥

स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा-

मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाहिकाहाय वः ।

भिद्यादुद्यदुदारददुरदरीदैर्ध्यादरिद्रुम-

द्रोहोद्रेकमदोर्मिमेदुरमदा मन्दाकिनी मन्दताम् ॥ ८० ॥

(इति सामान्यविशेषनयन्योक्तयः।)

अथ तटाकान्योक्तयः ।

उद्दामाम्बुदनादनृत्यशिखिनां केकातिरेकाकुले

सुप्रापं सलिलं मरुष्वपि तदा निस्तर्षवर्षागमे ।

भीष्मग्रीष्मऋतौ परस्परदरादालोक्यमानं दिशो

दीनं मीनकुलं न पालयसि रे कासार कासारताम् ॥ ८१ ॥

हंसैर्लब्धप्रशंसैस्तरलितकमलप्रस्तरज्जैस्तरज्जै-

नीरैरन्तर्गभीरैर्बकनिकरकृतत्रासलीनैश्च मीनैः ।

पालीरूढद्रुमालीतलसुखशयितस्त्रीप्रणीतैश्च गीतै-

र्भाति प्रक्रीडनाभिस्तव सचिवचलच्चक्रवाकस्तटाकः ॥ ८२ ॥

किं तेन संभृतवतापि सरोवरेण

लोकोपकाररहितेन वनस्थितेन ।

ग्राम्या वरं तनुतरापि तडागिका सा

या पूरयत्यनुदिनं जनतामनांसि ॥ ८३ ॥

SGDF

Digitized by eGangotri

अयमवसरः सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् ।
इदमपि [च] सुलभमम्भो भवति पुरा जलधराभ्युदये ॥ ८४ ॥

एतस्मिन्मरुण्डले परिचरत्कल्लोलकोलाहल-

क्रीडत्कुङ्कुमपङ्कमङ्कविलसन्निःशङ्कमत्स्यव्रजम् ।

केनेदं विकसत्कुशेशयकुटीकोणक्वणत्पद्-

श्रेणीप्रीणितपान्थमुज्ज्वलजलं चक्रे विशालं सरः ॥ ८५ ॥

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिता

व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।

कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पान्तरस्थायिन-

स्तस्याप्येकवक्त्रप्रचारकलुषं जातं यदन्तर्जलम् ॥ ८६ ॥

स्तोकाग्निःपरिवर्तिताङ्गशफरग्रासार्थिनः सर्वतो

लप्स्यन्ते बकटिद्विभ्रमभृतयस्तल्लेषु साधुस्थितिम् ।

सद्यः शोषमुपागतेऽद्य सरसि श्रीसद्मपद्माकरे

तस्मिन्पङ्कजिनीविलासरुचयो हंसाः क यास्यन्त्यमी ॥ ८७ ॥

रे पद्माकर यावदस्ति भवतो मध्यं पयःपूरितं

तावच्चक्रचकोरकङ्ककुररश्रेणीं समुल्लासय ।

पश्चात्त्वं समटङ्ककोटचटुलत्रोणीपुटव्याहति-

त्रुट्यत्कर्कटकर्परव्यतिकरैर्निन्दास्पदं यास्यसि ॥ ८८ ॥

अथ पद्मसरसः ।

कौञ्चः क्रीडतु कूर्दतां च कुररः कङ्कः परिष्वज्यतां

मद्गुर्माद्यतु सारसश्च रसतु प्रोड्डीयतां टिट्ठिभः ।

भेकाः सन्तु बका वसन्तु चरतु स्वच्छन्दमाटिस्तटे

हंहो पद्मसरः कुतः कतिपर्यैर्हसैर्विना श्रीस्तव ॥ ८९ ॥

(इति तटाकान्योक्तयः ।)

अथ कूपान्योक्तयः ।

॥ ४३ ॥ अमुद्रोऽपि वरं कूपः समुद्रेणापि तेन किम् ।

सुखादु सलिलं यत्र पीयते पथिकैः पथि ॥ ९० ॥

कूपप्रभवानां परमुचितमपां पट्टबन्धनं मन्ये ।

या शक्यन्ते लब्धुं न पार्थिवेनापि विगुणेन ॥ ९१ ॥

सगुणैः सेवितोपान्तो विनीतैः प्राप्तदर्शनः ।

नीचोऽपि कूपः सत्पात्रैर्जीवनार्थं समाश्रितः ॥ ९२ ॥

चित्रं न तद्यदयमम्बुधिरम्बुदौघ-

सिन्धुप्रवाहपरिपूरतया महीयान् ।

त्वं त्वर्थिनामुपकरोषि यदल्पकूप

निष्पीड्य कुक्षियुगलं हि महत्त्वमेतत् ॥ ९३ ॥

दिनमवसितं विश्रान्ताः सस्त्वया मरुकूप हे

परमुपकृतं शेषं वक्तुं चिरं न वयं क्षमाः ।

भवतु सुकृतैरध्वन्यानामशेषजलो भवा-

नियमपि घनच्छाया भूयात्तवोपतटं शमी ॥ ९४ ॥

भीमश्यामप्रतनुवदनकूरपातालकुक्षि-

क्रोडप्रान्तोऽहितविभवस्याथ किं ते ब्रवीमि ।

येन त्वत्तः समभिलषतो वाञ्छितं क्षुद्रकूप

क्लाम्यन्मूर्तेर्भवति सहसा कस्य नाधोमुखत्वम् ॥ ९५ ॥

भूयःप्रयासपरिलभ्यकियज्जलस्य

रे कूप कोऽपि किमुपैति वदोपकण्ठम् ।

कूर्मः किमत्र कुचरित्रजनाभिरामे

ग्रामे न चास्ति तटिनी न सरो न वापी ॥ ९६ ॥

(इति कूपान्योक्तयः ।)

अथ तेजःकायाधिकारपद्धतौ प्रथममग्नेः ।

त्रयस्त्रिंशत्कोटित्रिदशमुखवन्द्योऽसि जगतां

किमेवं दह्यन्ते चपलपवनप्रेरकतया ।

SGDF

फलाढ्याः सर्वेषामुपकृतिकृतस्तेऽपि तरवो

यदेषां भस्म स्यात्तदपि मरुतस्ते पुनरघम् ॥ ९७ ॥

रुद्राङ्गं छगणानि(?) पङ्कजदृशमङ्गानि गाङ्गेयकं

ताम्बूलेन समागमं दृषदहो तूलं च कूलं दृशोः ।

कर्पूरेण सहाधिवासमसमं काष्ठानि कुम्भीभव-

न्पङ्कः शीर्षमवाप्य यद्विजयते सा पावकी साधना ॥ ९८ ॥

अथ प्रदीपान्योक्तयः ।

दैवादस्तं गते सूर्ये त्वं चेन्नोकैः पुरस्कृतः ।

मा दीप मलिनोद्गारैः सद्देहानि कलङ्कय ॥ ९९ ॥

दीपो वातभयात्नीतः कामिन्या वसनान्तरे ।

निरीक्ष्य कुचसौन्दर्यमकरः कम्पते शिरः ॥ १०० ॥

तावद्दीपय दीपममुं यावद्रजनिविरामः ।

भानुश्चेदुदयाभिमुखस्तर्कि तव गुणधाम ॥ १०१ ॥

(इति प्रदीपान्योक्तयः ।)

अथ दावानलान्योक्तयः ।

यस्या महत्त्वभाजो भवन्ति गुणिनो मिता धनुर्दण्डाः ।

दहतस्तां वंशालीं को वनवहे विशेषस्ते ॥ १०२ ॥

हे दावानल शैलाग्रवासिनः साधु शाखिनः ।

मुग्ध व्यर्थं त्वया दग्धाः प्रेरितेन प्रभञ्जनैः ॥ १०३ ॥

दुर्दैवप्रभव प्रभञ्जन जवादुद्भूतभूमिरुहा-

नेतान्सत्त्वगुणाश्रयानकरुणं पुण्यन्किमुन्माद्यसि ।

ब्रूमस्त्वां वनहव्यवाह यदमी दग्धार्धदग्धा अपि

द्रष्टव्यास्तव तु क्षणाद्विलयिनो नामापि न ज्ञायते ॥ १०४ ॥

अभ्युन्नतेऽपि जलदे जगदेकसार

साधारणप्रणयहारिणि हा यदेते ।

उल्लासलास्यललितं तरवो न यान्ति

हे दावपावक स तावक एव दोषः ॥ १०५ ॥

विध्वस्ता मृगपक्षिणो विधुरतां नीताः स्थलीदेवता

धूमैरन्तरिताः स्वभावमलिनैराशामही तापिता ।

भस्मीकृत्य सुपुष्पपल्लवफलैर्नम्रान्महापादपा-

नुन्मत्तेन दवानलेन विपिनं वल्मीकशेषं कृतम् ॥ १०६ ॥

(इति दवानलान्योक्तयः ।)

अथ धूम्रस्य ।

कामं श्यामतनुस्तथा मलिनयत्यावासवस्त्रादिकं

लोकं रोदयते भनक्ति जनतागोष्ठीं क्षणेनापि यः ।

मार्गेऽप्यङ्गुलिलम्न एव भवतः स्वाभाविनः श्रेयसे

हा स्वाहाप्रिय धूममङ्गजमिमं सूत्वा न किं लज्जितः ॥ १०७ ॥

धूमः पयोधरपदं कथमप्यवाप्य

वर्षाम्बुभिः शमयति ज्वलनस्य तेजः ।

दैवादवाप्य ननु नीचजनः प्रतिष्ठां

प्रायः स्वबन्धुजनमेव तिरस्करोति ॥ १०८ ॥

अथ वायुकायाधिकारपद्धतौ वायोरन्योक्तयः ।

क्षणादसारं सारं वा वस्तु सूक्ष्मः (क्ष्मं) परीक्ष्यते ।

निश्चिनोति मरुत्तूर्णं तूलोच्चयशिलोच्चयौ ॥ १०९ ॥

वरतरुविघटनपटवः कटवश्चञ्चन्ति वायवो बहवः ।

तत्कुसुमबहलपरिमलगुणविन्यासे कृती त्वेकः ॥ ११० ॥

अतिपटलैरनुयातां सहृदयहृदयज्वरं विलुम्पन्तीम् ।

मृगमदपरिमललहरीं समीर पामरपुरे किरसि ॥ १११ ॥

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः ।

समुच्छ्रितान्येव तरून्प्रबाधते महान्महत्स्वेव करोति विक्रियाम् ॥ ११२ ॥

ये जात्या लघवः सदैव गणनां याता न ये कुत्रचि-

त्पञ्चामेव विमर्दिताः प्रतिदिनं भूमौ निलीनाश्चिरम् ।

६: ॥ ६ ॥
Sri Gargaknani Digital Foundation

सप्तमः परिच्छेदः ।

॥ १११ ॥ परज्योतिःस्वरूपाय पराय परमात्मने ।

नमः श्रीपार्श्वनाथाय श्रेयःश्रेणीविधायिने ॥ १ ॥

॥ कारुण्यपुण्यसत्सद्म कुरु त्वं जनबान्धव ।

मम श्रीपार्श्वतीर्थेश सुप्रसादं सुखास्पदम् ॥ २ ॥

भजध्वमेनं भो भव्याः श्रीकामाय जिनेश्वरम् ।

रम्यदं तं सुखागारं मनोभवभवप्रभम् ॥ ३ ॥

॥ भववारांनिधौ कुम्भभवं बोधितसत्सभम् ।

भगवन्तं जराजन्मरोगहं चित्तजं हरम् ॥ ४ ॥

॥ द्वाभ्यां खड्गबन्धचित्रम् ।

श्रमणप्रकरैर्वन्द्य सद्यस्तव पदौ मम ।

॥ ११२ ॥ महानन्दपदं दत्तां त्रैशलेययशोधर ॥ ५ ॥

॥ हलबन्धचित्रम् ।

॥ धन्यास्त एव देवार्थं ये त्रिसंध्यं पदद्वयम् ।

॥ आराधयन्ति विधिवज्जन्मभाजोऽनिशं तव ॥ ६ ॥

॥ सज्ज्ञानमल्लुमाणिक्यवररोहणभूधरम् ।

॥ वन्दामहे विश्ववन्द्यं साधुश्रीवन्तनन्दनम् ॥ ७ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

॥ सांप्रतं सुखबोधाय परिच्छेदे च सप्तमे ।

॥ चित्रानुप्रासयमकगुणालंकारभासुरे ॥ ८ ॥

॥ विचक्षणजनश्रेणीहर्षोत्कर्षकृते मया ।

॥ सरलानुक्रमणिका प्रतिद्वारस्य प्रोच्यते ॥ ९ ॥ (युगम्)

॥ सामान्यपादपान्योक्तिरशोकतरुपद्धतिः ।

॥ चन्दनोक्तिश्चम्पकोक्तिर्माकन्दोक्तिर्मनोरमा ॥ १० ॥

॥ काकतुण्डोक्तिरपरा मल्लिकोक्तिरनोपमा(?) ।

॥ पाटलोक्तिश्च पद्मोक्तिः पद्मिन्युक्तिः स्फुटाः स्मृताः ॥ ११ ॥

मालत्युक्तिर्वालकोक्तिः केतक्युक्तिर्बुधैर्मता ।

पनसोक्तिः कदल्युक्तिर्द्राक्षोक्तिर्दाडिमोक्तयः ॥ १२ ॥

नारिकेल्युक्तयश्चापि तालवृक्षोक्तयस्ततः ।

भूर्जद्रुमोक्तयो ज्ञेयाश्चत्थ(?)वृक्षोक्तयस्तथा ॥ १३ ॥

न्यग्रोधान्योक्तयस्तद्वन्मधूकान्योक्तयः पुनः ।

इक्ष्वन्योक्तिश्च पील्युक्तिर्बदर्यन्योक्तयोऽपि च ॥ १४ ॥

शाल्मल्यन्योक्तयश्चैवं निम्बभूमीरुहोक्तयः ।

खदिरान्योक्तयः ख्याता वंशजात्युक्तयस्तथा ॥ १५ ॥

किंशुकान्योक्तयस्तद्वत्पलाशकुसुमोक्तयः ।

बब्बूलान्योक्तयो ज्ञेयाः शाखोटान्योक्तयः स्फुटाः ॥ १६ ॥

चिञ्चिण्युक्तिः करीरोक्तिः कण्टकोक्तिस्ततः परम् ।

कन्थेर्युक्तिश्च बिल्वोक्तिरर्कक्षोणीरुहोक्तयः ॥ १७ ॥

जवासोक्तिर्यवस्योक्तिः शाल्युक्तिश्च तिलोक्तयः ।

ततो विशिष्टमञ्जिष्ठान्योक्तयो विजयोक्तयः ॥ १८ ॥

दक्षलक्षप्रियतमा तमाकूक्तिः प्रकीर्तिता ।

लशुनोक्तिर्बादरोक्तिः फेनिलान्योक्तयः पराः ॥ १९ ॥

कण्टारिकाया अन्योक्तिः सणान्योक्तिरुदाहृता ।

धत्तूरपादपान्योक्तिरवधेया तृणोक्तयः ॥ २० ॥

नागवल्लीदलान्योक्तिस्तुम्बिवल्युक्तयः पुनः ।

कोरल्यन्योक्तयो ज्ञेयाः कोहलिन्युक्तयो वराः ॥ २१ ॥

अथ वनस्पतिकायाधिकारपद्धतौ प्रथमं सामान्यवृक्षान्योक्तयः ॥

छायामन्यस्य कुर्वन्ति स्वयं तिष्ठन्ति चातपे ।

फलन्ति च परार्थे च नात्महेतोर्महाद्रुमाः ॥ २२ ॥

वर्त्मनि वर्त्मनि तरवः पथि पथिकजनैरुपास्यते छाया ।

॥ २३ ॥ स च नैव चिरं विटपी यं गृहमाप्तोऽध्वगः स्मरति ॥ २३ ॥

शाखाशतचितवृतयः सन्ति क्रियन्तो न कानने तरवः ।

परिमलभरमिलदलिकुलदलितदलाः शाखिनो विरलाः ॥ २४ ॥ Foundation

कलयति किं न सदा फलतां बहुफलतां च स वृक्षः ।

यस्य परोपकृतौ कश्चिन्न सपक्षोऽपि विपक्षः ॥ २५ ॥

कुसुमं पुनरबहुफलं तरुजातेरिति रीतिः ।

कृशकुसुमे सति बहुफलता तरुवरनवनीतिः ॥ २६ ॥

शशविश्रामिणः सर्वे सन्ति सर्वत्र पादपाः ।

स एव विरलः शाखी यत्र विश्रमते करी ॥ २७ ॥

वने वने सन्ति वनेचराणां निवासयोग्यास्तरवोऽपि किं तैः ।

स पुण्यशाखी कचिदेक एव यस्याश्रयं वाञ्छति वारणेन्द्रः ॥ २८ ॥

एणश्रेणिः शशकपरिषज्जम्बुकानां कुटुम्बं

केकिव्यूहः श्रयति सहसा यत्र तत्रापि गुञ्जे ।

कोऽसौ धन्यः कथय सुकृती पादपोऽभ्रलिहश्री-

र्यस्य च्छायां श्रयति सहसा आतपार्तः करीन्द्रः ॥ २९ ॥

भीष्मग्रीष्मखरांशुतापमसमं वर्षाम्बुतापक्लमं

भेदच्छेदमुखं कदर्थनमलं मर्त्यादिभिर्निर्मितम् ।

सर्वग्रासिदवानलप्रसृमरज्वालोत्करालिङ्गनं

हंहो वृक्ष सहस्र जैनमुनिवद्यत्वं क्षमैकाश्रयः ॥ ३० ॥

किं जातोऽसि चतुष्पथे घनतरं छन्नोऽसि किं छायाया

छन्नश्चेत्फलितोऽसि किं फलभरैः पूर्णोऽसि किं संनतः ।

हे सद्रृक्ष सहस्र संप्रति सखे शाखाशिखाकर्षण-

क्षोभामोटनभञ्जनानि जनतः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ ३१ ॥

आमोदैर्मरुतो मृगाः किसलयोल्लासैस्त्वचा तापसाः

पुष्पैः षट्पराणाः फलैः शकुनयो घर्मादिताश्छायया ।

स्कन्धैर्गन्धगजास्त्वयैव विहिताः सर्वे कृतार्थास्तत-

स्त्वं विश्वोपकृतिक्रमोऽसि भवता भग्नापदान्ये द्रुमाः ॥ ३२ ॥

कुर्वन्षट्पदमण्डलस्य कुसुमामोदप्रदानोन्मुखं

संग्रीणन्प्रसमं मनोहरफलस्वादार्पणादध्वगान् । Digital Foundation

छायां संततशीतलां विरचयंश्चण्डांशुतप्ताङ्गिनां

सौजन्यं तरुराज भो प्रथय यत्ते रत्नगर्भा प्रसूः ॥ ३३ ॥

छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विष्ठाविलिप्तच्छदः

कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः ।

विश्रब्धं मधुपैर्निपीतकुसुमः श्लाघ्यः स एकस्तरु-

र्यत्राङ्गीकृतसत्त्वसंलवभरे भग्नापदोऽन्ये द्रुमाः ॥ ३४ ॥

गतास्ते विस्तीर्णस्तबकभरसौरभ्यलहरी-

परीतव्योमानः प्रकृतिगुरवः केऽपि तरवः ।

इहोद्याने संप्रत्यहह परिशिष्टाः क्रमवशा-

दमी वल्मीकाद्या भुजगकुललीलावसतयः ॥ ३५ ॥

हंहो पान्थ किमाकुलः श्रमवशादत्युन्नतं धावसि

प्रायेणास्य महाद्रुमस्य भवता वार्तापि नाकर्णिता ।

मूलं सिंहसमाकुलं तु शिखरं प्रोद्दण्डतुण्डाः खगा

मध्ये कोटरभाजि भीषणफणाः फूत्कुर्वते पन्नगाः ॥ ३६ ॥

शाखाभिर्विततीभविष्यति दलैस्तेजांसि तिग्मद्युते-

रन्तर्धास्यति यास्यतीह मधुपश्रेणी रसं कौसुमम् ।

अध्वन्यान्सुखिनः करिष्यति फलैर्यत्रेयमाशाभव-

त्सोऽयं मार्गतरुर्हहा विधिवशाद्गन्धो दवार्चिष्मता ॥ ३७ ॥

तीव्रो निदाघसमयो बहुपथिकजनश्च मारवः पन्थाः ।

मार्गस्थस्तरुरेकः कियतां संतापमपनयति ॥ ३८ ॥

मार्गं विहाय गिरिकन्दरगह्वरेषु

वृक्षाः फलन्ति यदि नाम फलन्तु किं तैः ।

शाखाग्रजानि कुसुमानि फलानि मार्गे

गृह्णन्ति यस्य पथिकास्तरुरेष धन्यः ॥ ३९ ॥

आयान्ति त्वरितं गभीरसरितां कूलेषु भूमिरुहा

मूलेषु व्यथिता निदाघपथिकाः कृत्यं तदेषां परम् ।

यत्पुष्पैरधिवासनं निविडया यच्छायया पालनं

यन्मन्दैरुपवीजनं च पवनैः कृत्यं तदुर्वीरुहाम् ॥ ४० ॥

प्रत्यग्रैः पुष्पनिचयैस्तरुणैरेव शोभितः ।

जहासि जीर्णास्तानेव किं वा चित्रं कुजन्मनः ॥ ४१ ॥

रोलम्बैर्न विलम्बितं विघटितं धूमाकुलैः कोकिलै-

र्मयूरैश्चलितं पुरैव नभसा कीरैरधीरैर्गतम् ।

एकेनापि सपल्लवेन तरुणा दावानलोपप्लवः

सोढः कोऽपि विपत्सु मुञ्चति जनो मूर्ध्नापि यो लालितः ॥ ४२ ॥

पत्रपुष्पफलच्छायासूलवल्कलदारुभिः ।

धन्या महीरुहो येभ्यो विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ ४३ ॥

छायावन्तो गतव्यालाः स्वरोहाः फलदायिनः ।

मार्गद्रुमा महान्तश्च परेषामेव भूतये ॥ ४४ ॥

भुक्तं स्वादु फलं कृतं च शयनं शाखाग्रजैः पल्लवै-

स्त्वच्छायापरिशीतलं सुसलिलं पीतं व्यपेतश्रमैः ।

विश्रान्ताः सुचिरं परं सुमनसः सन्तः किमत्रोच्यते

त्वं सन्मार्गतत्तुर्वयं च पथिका यामः पुनर्दर्शनम् ॥ ४५ ॥

जातो मार्गे सुरभिकुसुमः सत्फलो निम्नशाखः

स्फीताभोगो बहुलविटपः स्वादुतोयोपगूढः ।

नैवात्मार्यं वहति महतीं पादपेन्द्रः श्रियं ता-

मापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ४६ ॥

मूलं योगिभिरुद्धृतं निवसितं वासोर्थिभिर्वल्कलं

भूषार्थी च जनश्चिनोति कुसुमं भुङ्क्ते क्षुधार्तः फलम् ।

छायामातपिनो विशन्ति विचिता निद्रालुभिः पल्लवाः

कल्पात्स्वस्य तरोरिवेह भवतः सर्वाः परार्थाः श्रियः ॥ ४७ ॥

आम्यद्भृङ्गभरावनम्रकुसुमश्च्योतन्मदोद्गन्धिषु

छायावत्सु तलेषु पान्थनिचया विश्रम्य गेहेष्विव ।

निर्यन्निर्झरवारिवारिततृषस्तृप्यन्ति येषां फलै-
 स्ते नन्दन्तु फलन्तु यान्तु च परामत्युन्नतिं पादपाः ॥ ४८ ॥
 भुक्तानि यैस्तव फलानि पचेलिमानि
 कोडस्थितैरहह वीतभयैः प्रसुप्तम् ।
 ते पक्षिणो जलरयेण विकृष्यमाणं
 पश्यन्ति पादप भवन्तममी तटस्थाः ॥ ४९ ॥
 विपन्नं पद्मिन्या मृतमनिमिषैर्यातमलिभिः
 खगैरप्युड्डीनं रथचरणहंसप्रभृतिभिः ।
 दशां दीनां नीते सरसि विषमग्रीष्मदिवसैः
 कुलीनत्वादास्ते तटरुहतरुः कोऽपि तदपि ॥ ५० ॥
 शाखोटशाल्मलिपलाशकरीरकाद्याः
 शृण्वन्तु पुण्यनिलयो यदसौ वसन्तः ।
 युष्मभ्यमर्पयतु पल्लवपुष्पलक्ष्मीं
 सौरभ्यसंभवविधिस्तु हरेरधीनः ॥ ५१ ॥
 पान्थाधार इति द्विजाश्रय इति श्लाघ्यस्तरूणामिति
 स्निग्धच्छाय इति प्रियो दृश इति स्थानं गुणानामिति ।
 पर्यालोच्य महातरो तव घनच्छायां वयं संश्रिता-
 स्तत्त्वत्कोटरवासिनो द्विरसना दूरीकरिष्यन्ति नः ॥ ५२ ॥
 हिमसमयो वनवर्हिर्जवनः पवनस्तडिलताविभवम् ।
 हन्त सहन्ते यावत्तावद्भुम कुरु परोपकृतिम् ॥ ५३ ॥
 ये पूर्वं परिपालिताः फलभरच्छायादिभिः प्राणिनो
 विश्रामद्भुम कथ्यतां तव विपत्काले क ते सांप्रतम् ।
 एताः संगतिमात्रकल्पितपुरस्कारास्तु धन्यास्त्वचो
 यासां छेदनमन्तरेण पतितो नायं कुठारस्त्वयि ॥ ५४ ॥

१. 'यावत्तत्क्षणमाश्रयन्ति गुणिनः क्लान्तिच्छिदे पादपं तावत्कोटरनिर्भैरहिगणैर्दूरं समुत्सारितः' इति पाठान्तरम्.

वृद्धिर्यस्य तरोर्मनोरथशतैराशावता प्रार्थिता

जातोऽसौ सरसः प्रकामफलदः सर्वाश्रितोपाश्रयः ।

नानादेशसमागतैश्च पथिकैराक्रान्तमन्यैः खगै-

स्तं लब्धावसरोऽपि वृक्ष शकुनैर्दूरे स्थितो वीक्ष्यते ॥ ५५ ॥

केचित्कण्टकिनः कटुत्वकलिताः केचिद्विजिह्वाश्रयाः

स्तब्धाः केचन केऽपि सत्तमदलाः केचित्सदा निष्फलाः ।

अत्यन्तं फलिनोऽपि नीरसफला वृक्षा इव स्वामिनो

जाताः संप्रति कुत्र यान्तु पथिकाश्छायाफलाकाङ्क्षिणः ॥ ५६ ॥

संकेतं मधुपावलीविरचितैर्झङ्कारसारारवैः

शस्यं लास्यविधिं समीरलहरीप्रेङ्खोलितैः पल्लवैः ।

वादित्रं खलु कोकिलाकलरुतैः संपादयन्सेवकी-

भूयोसावृतुराजमागतमहो किं सेवते दुष्कृती ॥ ५७ ॥

माकुप्पमग्गपायव मग्गच्छाल्लरणेण अणवरयम् ।

उमगत्थे फलिण्(?) मग्गत्थानेव गिह्णन्ति ॥ ५८ ॥

पइमुक्काह विवरतरु फिट्ठइ पत्तत्तणं न पत्ताहम् ।

तुह पुण च्छाया जइ होइ तारिसी तेहिं पत्तेहिम् ॥ ५९ ॥

(इति सामान्यवृक्षान्योक्तयः ।)

अथ वृक्षविशेषणपद्धतौ किङ्क्रेल्लिभूमीरुहान्योक्तयः ।

किं ते नम्रतया किमुन्नततया किं वा घनच्छायया

किं वा पल्लवलीलया किमनया चाशोक पुष्पश्रिया ।

यत्त्वन्मूलनिषण्णखिन्नपथिकस्तोमः स्तुवन्नन्वहं

न खादूनि मृदूनि खादति फलान्याकण्ठमुत्कण्ठितः ॥ ६० ॥

रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणै-

स्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि ।

कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोः

सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः ॥ ६१ ॥

मृदूनां स्वादूनां लघुरपि फलानां न विभव-

स्तवाशोक स्तोकः स्तवकमहिमा सोऽप्यसुरभिः ।

यदेतन्नो तन्वीकरचरणलावण्यसुभगं

प्रवालं बालं स्यात्तरुषु स कलङ्कः किमपरः ॥ ६२ ॥

(इति किङ्केलिपादनान्योक्तयः ।)

अथ चन्दनान्योक्तयः ।

सन्त्येव मिलिताकाशा महीयांसो महीरुहः ।

तथापि जगतश्चित्तनन्दनश्चन्दनद्रुमः ॥ ६३ ॥

के के तमालफलसालरसालसाल-

हिन्तालतालकृतमालगणा न सन्ति ।

एकेन तेन वनमण्डनचन्दनेन

संवासितं वनमिदं मलयाचलस्य ॥ ६४ ॥

कान्तोकेलिं कलयतु तरुः कोऽपि कश्चित्प्रभूणा-

मत्यानन्दं जनयतु फलैः कोऽपि लोकांश्चिनोतु ।

धन्यं मन्ये मलयजमहो यः प्रभूतोपतापं

संसारस्य द्रुतमपनयत्यात्मदेहव्ययेन ॥ ६५ ॥

अन्तः केचन केचनापि हि दले केचित्तथा पल्लवे

मूले केचन केचन त्वचि फले पुष्पे च केऽपि द्रुमाः ।

सौरभ्यं नितरां विभर्त्यविकलः श्रीखण्डषण्डीकृतः

सर्वाङ्गे सुरभिर्न कोऽपि ददृशे मुक्त्वा भवन्तं कचित् ॥ ६६ ॥

केचिल्लोचनहारिणः कतिपये सौरभ्यसंभारिणः

केऽप्यन्ये फलहारिणः प्रतिदिशं ते सन्तु हन्त द्रुमाः ।

धन्योऽयं हरिचन्दनः परिसरे यस्य स्थितैः शाखिभिः

शाखोटादिभिरप्यहो मृगदृशामङ्गेषु लीलायितम् ॥ ६७ ॥

भ्रातश्चन्दन किं ब्रवीमि विकटस्फूर्जत्फणाभीषणा

गन्धस्यापि महाविषाः फणभृतो गुप्त्यै यदेते कृताः । Digital Foundation

दैवात्पुष्पफलान्वितो यदि भवानत्रागमिष्यत्तदा

नो जाने किमकल्पयिष्यदधिकं रक्षार्थमस्यात्मनः ॥ ६८ ॥

एतैर्दक्षिणगन्धवाहचलनैः श्रीखण्ड किं सौरमं
ब्रूमस्ते परितो मधुव्रतयुवा येनायमानीयते ।

माकन्दादपहत्य पङ्कजवनादुद्धूय कुन्दोदरा-

दुद्भाम्यद्विपगण्डमण्डलदलादाकृष्य कृष्यन्मनाः ॥ ६९ ॥

यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः ।

निजवपुषैव परेषां तथापि संतापमपनयति ॥ ७० ॥

धिकचेष्टितानि परशो परिशोचनीयं

बालप्रवालमलयादिरुहद्रुहस्ते ।

निर्भिद्यमानहृदयोऽपि महाप्रभावः

स त्वन्मुखं पुनरमीः सुरमीकरोति ॥ ७१ ॥

वासः शैलशिखान्तरेषु सहजः सङ्गो भुजङ्गैः सह

प्रेङ्खत्क्षारपयोधिवीचिभिरभूदुद्धूतिसेकक्रिया ।

जानीमो न वयं प्रसीदतु भवान्श्रीखण्ड तत्कथ्यतां

कस्मात्ते परतापखण्डनमहापाण्डित्यमभ्यागतम् ॥ ७२ ॥

आमोदैस्तैर्दिशि दिशि गतैर्दूरमाकृष्यमाणां

साक्षालक्ष्मीं तव मलयज द्रष्टुमभ्यागताः स्म ।

किं पश्यामः सुभग भवतः क्रीडति क्रोड एव

व्यालस्तुभ्यं भवतु कुशलं मुञ्च नः साधु यामः ॥ ७३ ॥

मूलं भुजङ्गैः शिखरं विहङ्गैः शाखाः प्लवङ्गैः कुसुमानि भृङ्गैः ।

नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य यन्नाश्रितं सत्त्वभरैः समन्तात् ॥ ७४ ॥

अष्टं जन्मभुवस्ततोऽम्बुधिपयःपूरेण दूरीकृतं

लभं तीरवने वनेचरशतैर्नीतं ततः खण्डितम् ।

विक्रीतं तुलितं खरोपलतले घृष्टं जनैश्चन्दनं

वन्दन्ते कटरे(?)विपत्स्वपि गुणैः को नाम नो पूज्यते ॥ ७५ ॥

श्रीमच्चन्दनवृक्ष सन्ति बहवस्ते शाखिनः कानने
 येषां गन्धगुणः सदापि वसति प्रायेण पुष्पश्रिया ।
 प्रत्यङ्गं सुकृतेन तेन शुचिना ख्यातावदातात्मना
 योऽयं गन्धगुणस्त्वया प्रकटितः कासाविह प्राप्यते ॥ ७६ ॥
 मलओस चन्दणुचिय नइ मुह हीरन्त चन्दणदुमोहो ।
 पब्भट्टं पिहु मलयाउ चन्दणं जायइ महग्घम् ॥ ७७ ॥

(इति चन्दनवृक्षान्योक्तयः ।)

अथ चम्पकान्योक्तयः ।

साधारणतरुबुद्ध्या न मया रचितस्तवालवालोऽपि ।
 लज्जयसि मामिदानीं चम्पक भुवनाधिवासिभिः कुसुमैः ॥ ७८ ॥
 कोपं चम्पक मुञ्च याचकजनैरायाचितस्त्वं सखे
 माम्लासीः परितो विलोकय तरून्कस्तेऽधिरूढस्तुलाम् ।
 कोपश्चेन्निहितस्तवास्ति हृदये धात्रे तदा कुप्यता-
 मित्थं येन सुवर्णवर्णकुसुमामोदाद्वितीयः कृतः ॥ ७९ ॥
 सौभाग्यं कुसुमावलीषु विपुलं सौन्दर्यमर्यादया
 पुष्पं चम्पक निर्मितं च विधिना स्वर्णातिवर्णाकृति ।
 गन्धोऽप्येणमदाभिमानविजयी काठिन्यमन्तर्गतं
 ज्ञात्वा दोषपराङ्मुखो मधुकरः सङ्गं न धत्ते त्वया ॥ ८० ॥
 रूपसौरभसमृद्धिसमेतं चम्पकं प्रति ययुर्न मिलिन्दाः ।
 कामिनस्तु जगृहुस्तदशेषं प्राहका हि गुणिनां कति न स्युः ॥ ८१ ॥
 यन्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन
 किं तेन चम्पक विषादमुरीकरोषि ।
 विश्रामिरामनवनीरदनीलवेषाः
 केशाः कुशेशयदृशां कुशलीभवन्तु ॥ ८२ ॥
 सुवर्णवर्णेन वृणीष्व गौरवं सौरभ्यभारेण जगद्वशीकुरु ।
 इति क्षतिर्गन्धफलि स्फुटं तव प्राप्ता न यस्मान्मधुपेन संगतिः ॥ ८३ ॥

अन्तःप्रतप्तमरुसैकतदह्यमान-

मूलस्य चम्पकतरोः क विकासचिन्ता ।

प्रायो भवत्यनुचितस्थितदेशभाजां

श्रेयः स्वजीवपरिपालनमात्रमेव ॥ ८४ ॥

केनापि चम्पकतरो बत रोपितोऽसि

कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।

यत्र प्ररूढनवशाखविवृद्धिलोभा-

द्गोभग्नवाटघटनोचितपल्लवोऽसि ॥ ८५ ॥

उद्यानपाल कलशाम्बुनिषेचनाना-

मेतस्य चम्पकतरोरयमेव कालः ।

तस्मिंश्च धर्मनिहतेऽपि घनाम्बुनाथ

संवर्धितेऽप्युभयथा न तवोपयोगः ॥ ८६ ॥

एणाद्याः पशवः किरातपरिषन्नैषा गुणग्राहिणी

संचारोऽस्ति न नागरस्य विषयोच्छिन्नं मुनीनां मनः ।

धूमेनातिसुगन्धिनात्र विटपे दिक्चक्रमामोदय-

न्नामूलं परिदह्यते गुरुतरः कस्मै किमाचक्ष्महे ॥ ८७ ॥

(इति चम्पकान्योक्तयः ।)

अथ सहकारान्योक्तयः ।

गाता कौकिल एव ज्ञाता पुनरेव सहकारः ।

यः पञ्चममुपगायति यस्यास्थिषु विपुलपुलकमुकुलानि ॥ ८८ ॥

यद्यपि दिशि दिशि तरवः परिमलमत्तालिपालिवाचालाः ।

तदपि स एव रसालः कौकिलहृदये सदा वसति ॥ ८९ ॥

मञ्जरिभिः पिकनिकरं रजोभिरलिनः फलैश्च पान्थजनम् ।

मार्गसहकार नितरामुपकुर्वन्नन्द चिरकालम् ॥ ९० ॥

मधुसमयादतिपल्लवितः कस्तरुरिह न विशालः ।

यं रमयति कलकण्ठगणः स पुनर्जयति रसालः ॥ ९१ ॥

समयवशेन यदद्य फलं जातं तव सहकार ।

भ्रातस्तद्भवतार्तजने कर्तव्यो न नकारः ॥ ९२ ॥

सौरभ्यगर्भमकरन्दकरम्बितानि

पङ्केरुहाण्यपि विहाय समागतस्त्वाम् ।

संसारसार सहकार तथा विधेयं

येनोपहासविषयो न भवेद्विरेफः ॥ ९३ ॥

उत्फुल्लरम्य सहकार रसालबन्धो

कूजत्पिकावलिनिवास तथा विधेहि ।

गुञ्जभ्रमभ्रमरकस्त्वयि बद्धतृष्णो

नान्यान्प्रयाति पिचुमन्दकरीरवृक्षान् ॥ ९४ ॥

येऽमी ते मुकुलोद्गमादनुदिनं त्वामाश्रिताः षट्पदा-

स्ते भ्राम्यन्ति फलाद्बहिर्बहिरहो दृष्ट्वा न संभाषते ।

ये कीटास्तव दृक्पथं न च गतास्त्वेतत्फलाभ्यन्तरे

धिक्त्वां चूततरो परापरपरिज्ञानानभिज्ञो भवान् ॥ ९५ ॥

न तादृक्कर्बूरे न च मलयजे नो मृगमदे

फले वा पुष्पे वा तव भवति यादृक्परिमलः ।

परं त्वेको दोषस्त्वयि खलु रसालेऽधिकगुणे

पिके वा काके वा गुरुलघुविशेषं न मनुषे ॥ ९६ ॥

यदपि किल वसन्ते वीरुधः शाखिनो वा

फलकुसुमसमृद्धा शोभमाना भवन्ति ।

तदपि युवजनानां प्रीतये कोकिलोऽसा-

वमिनवकलिकालीभारशाली रसालः ॥ ९७ ॥

उत्तंसकौतुकरसेन विलासिनीनां

लूनानि यस्य नखैरपि पल्लवानि ।

उद्यानमण्डनतरो सहकार स त्व-

मङ्गारकारकरगोचरतां गतोऽसि ॥ ९८ ॥

SGDF

कति पलविता न पुष्पिता वा
 तरवः सन्ति न संततं वसन्ते ।
 जगतीविजयाय पुष्पकेतोः

सहकारी सहकार एक एव ॥ ९९ ॥

यो दृष्टः स्फुटदस्थिसंपुटवशान्निर्यत्प्रवालाङ्कुरो
 दैवात्स द्विदलादिकक्रमवशादारूढशाखाशतः ।
 स्निग्धं पलवितो घनं मुकुलितः स्फारच्छटं पुष्पितः
 सोत्कर्षं फलितो भृशं च नमितः कोऽप्येष चूतद्रुमः ॥ १०० ॥

एतस्मिन्वनमार्गभूपरिसरे सौन्दर्यमुद्राङ्कितः
 प्रोद्यद्भिः फलपत्रपुष्पनिचयैश्चूतः स एकः परम् ।
 यं वीक्ष्य स्मितवक्त्रमुद्गतमहासंतोषमुल्लासित-
 स्फारोत्कण्ठमकुण्ठितक्रमममी धावन्ति पान्थव्रजाः ॥ १०१ ॥

सा तादृक्षन्मृगक्षलक्षविषमा लङ्का न टङ्कादपि
 ग्राह्यः काञ्चनभूभृदप्सु दधिरे रत्नानि रत्नाकराः ।
 हा दैवेति वचो विना न ददते वज्राणि वज्राकरा-
 स्तेनाहं सहकार सारफलदं त्वामर्थितुं संगतः ॥ १०२ ॥

छाया फलानि मुकुलानि च यस्य विश्व-

माह्लादयन्ति सहकारमहीरुहस्य ।

आमृष्य तस्य शिखया नवपलवानि

मश्नासि रे दवहुताश हताश कष्टम् ॥ १०३ ॥

कूष्माण्डीफलवत्फलं न यदपि न्यग्रोधवन्नोच्चता
 रम्भापत्रनिभं दलं न कुसुमं नो केतकीपुष्पवत् ।

सौरभ्यं कुसुमे दले तदपि तत्किञ्चित्समुज्जृम्भते
 लोके येन रसालसालनिकरास्त्यक्त्वा गुणान्तौमि ते ॥ १०४ ॥

यावत्फलोदयमुखः सहकार जात-

स्तावच्च कण्टककुलैः परिवेष्टितोऽसि ।

छायापि ते न सुलभा फलमस्तु दूरे

त्वं निष्फलो वरमहो सुखसेवनीयः ॥ १०५ ॥

रे माकन्द मरन्दसुन्दरमिदं त्वन्मञ्जरीजृम्भितं

मत्वा त्वामयमेति मुद्रितमुखः काकः कुरुपाग्रणीः ।

मान्यस्तद्भवता नचैकपिकवद्वर्णस्य सावर्ण्यतो

नो वर्णाकृतिसाम्यसज्जिनि जने मुह्यन्ति मेधाविनः ॥ १०६ ॥

कन्दे सुन्दरता दले सरलता वर्णेऽपि संपूर्णता

स्कन्धे बन्धुरता फले सरसता कस्यापरस्येदृशी ।

एकस्त्वं सहकार खिन्नपथिकाधारः स्थितः सत्पथे

दीर्घायुर्भव साधु साधु विधिना मेधाविना निर्मितः ॥ १०७ ॥

जातो मार्गपरिश्रमव्यपगमस्तापः प्रशान्तिं गतः

संपन्नं नच मञ्जरीपरिमलैर्घ्राणस्य संतर्पणम् ।

प्राप्ता तृप्तिरनश्वरैः फलभरैस्त्वत्तस्तदापृच्छचते

गच्छामः सहकार सज्जन भज त्वं कल्पवृक्षश्रियम् ॥ १०८ ॥

छायाभायासनाशे प्रगुणयसि नृणामुत्सवेषु च्छदानि

प्रीतौ पुष्पंधयानां मधुपिकनिकरस्त्वागते कारकाणि ।

धर्मक्लान्तार्थिसार्थक्लमशमनविधौ पाकपिङ्गं फलौघं

तत्त्वं विश्वोपकारार्पितविभवकृतानन्द माकन्दनन्द ॥ १०९ ॥

दृष्टे सति प्रविलसत्सहकारवृक्षे

किं किंशुकेष्वभिरुचिं कुरुते मिलिन्दः ।

आस्वादिते सति सरोरुहनीरपूरे

लीलालवालजलमिच्छति किं मरालः ॥ ११० ॥

वहसि बलिभुजां कुलानि मौलौ यदि सहकार तदत्र को निषेद्धा ।

परमुदयति पल्लवाञ्चलेषु स्फुरदलिभिस्तव सौरभमसिद्धिः ॥ १११ ॥

अर्काः केचन केचिदक्षतरवः केचिद्वयः क्षमाभृतो

निम्बाः केचन केचिदत्र विपिने वक्राः करीरद्भुमाः ।

माकन्दो मकरन्दतुन्दिलमिलद्भृङ्गालिशृङ्गारितः

सैकोऽप्यस्ति न मित्र यत्र तनुते शब्दायते कोकिलः ॥ ११२ ॥

केचित्पल्लवलीलया परिमलैरन्ये फलैः केचन

च्छायाभिर्घनशीतलाभिरपरे केऽपि द्विरेफस्वरैः ।

प्रत्येकं मुदमुद्धरन्ति तरवः सर्वैरमीभिः पुनः

पान्थानां गुणवक्त्रमिन्द्रियगणे दत्तं रसाल त्वया ॥ ११३ ॥

मूर्तिर्नेत्ररसायनं यदि कुतश्छायेयमच्छेतरा

चक्रे सापि ततः कुतः फलभरः पीयूषगुञ्जागृहम् ।

एवं सर्वगुणान्भूतं यदि भवानाम्रद्रुमं निर्ममे

तत्तत्र प्रगुणीकृतं कथमसौ दुर्दैवदावानलः ॥ ११४ ॥

विच्छायतां व्रजसि किं सहकार शाखि-

न्यत्फाल्गुनेन सहसापहृता मम श्रीः ।

प्राप्ते वसन्तसमये तव सा विभूति-

भूयो भविष्यति तरामचिरादवश्यम् ॥ ११५ ॥

अन्तर्वहसि कषायं बाह्याकारेण मधुरतां यासि ।

सहकार मायिविटपिन्युक्तं लोकैर्वहिर्नीतः ॥ ११६ ॥

इति सहकारान्योक्तयः ।

अथागुरोरन्योक्तयः ।

अगुरुरिति वदतु लोको गौरवमत्रैव पुनरहं मन्ये ।

दर्शितगुणैव वृत्तिर्यस्य जने जनितदाहेऽपि ॥ ११७ ॥

यः परप्रीतिमाधातुं भस्मतामपि गच्छति ।

विवेकमानिनः पश्य धात्रा सोऽप्यगुरुः कृतः ॥ ११८ ॥

आरामाभरणस्य पल्लवचयैरापीततिग्मत्विवः

पाथोद प्रशमं नयागुरुतरोरेतस्य दाघज्वरम् ।

ब्रूमस्त्वामुपकारकातर गतप्रायाः पयःसंपदो

दग्धोऽप्येष तरुर्दिशः परिमलैरापूर्य निर्वास्यति ॥ ११९ ॥

इत्यगुरोरन्योक्तयः ।

अथ मल्लिकायाः ।

नचं गन्धवहेन चुम्बिता नच पीता मधुपेन मल्लिका ।
पिहितैव कठोरशाखया परिणामस्य जगाम गोचरम् ॥ १२० ॥

अथ पाटलायाः ।

पाटलया वनमध्ये कुसुमितया मोहितस्तथा अमरः ।
सैवेयमिति यथाभूत्पतीतिरस्यान्यपुष्पेषु ॥ १२१ ॥

अथ पङ्कजान्योक्तयः ।

सौवर्णानि सरोजानि निर्मातुं सन्ति शिल्पिनः ।

तत्र सौरभमानेतुं चतुरश्चतुराननः ॥ १२२ ॥

दोषाकरे समुदिते मित्रे चास्तमुपागते ।

संकुच्य कमलेनेव स्थातव्यं दिनमिच्छता ॥ १२३ ॥

पङ्कज जलेषु वासः प्रीतिर्मधुपेषु कण्टकैः सङ्गः ।

यद्यपि तदपि तवैतच्चित्रं मित्रोदये हर्षः ॥ १२४ ॥

कुसुमं कोशातक्या विकसति रात्रौ दिवा च कूष्माण्ड्याः ।

अलिकुलनिलयं रुचिरं किंतु यशः कुमुदकमलयोरेव ॥ १२५ ॥

वरमश्रीकता लोके नासमानसमानता ।

इतीव कुमुदोद्भेदे कमलैर्मुकुलायितम् ॥ १२६ ॥

दूरादेत्य तवान्तरे चिरतरं यश्चञ्चरीकः स्थित-

स्त्वं सौरभ्यभरेण भावितरतिस्त्वय्येव सक्तश्चयः ।

सोऽयं त्वत्परितो अमत्यनुदिनं मुक्तान्यकार्यः कज

त्वं यन्नो भजसे विकासमपि तद्युक्तं गुणाढ्यस्य ते ॥ १२७ ॥

कज भज विकासमभितस्त्यज संकोचं अमत्ययं अमरः ।

यद्यपि न भवति कार्यं तथापि तुष्टस्तनोत्ययं कीर्तिम् ॥ १२८ ॥

कोशं विकासय कुशेशय संश्रितालिं

प्रीतिं कुरुष्व यदयं दिवसस्तवास्ते ।

दोषागमे निबिडराजकरप्रतापे

दुष्टे समेष्यति पुनस्तव कः समीपे ॥ १२९ ॥

SGDF

नालस्यप्रसरो जडेण्वपि कृतावासस्य कौशे रुचि-

दर्ण्डे कर्कशता मुखेऽतिमृदुता मित्रे महान्प्रश्रयः ।

॥ आमूलं गुणसंग्रहव्यसनिता द्वेषश्च दोषाकरे

यस्यैषा स्थितिर्म्बुजस्य वसतिर्युक्तैव तत्र श्रियः ॥ १३० ॥

यन्माता विष्णुनाभिः समजनि तनयो यस्य देवः स्वयंभू-

र्लक्ष्मीर्यत्संश्रया भूर्यदपि करतले भारती संबभार ।

भानुर्यस्यास्ति मित्रं तदपि सरसिजं क्षीणमिन्दोर्मयूखै-

स्त्रातुं नैवोत्सहन्ते गतसुकृतफलप्रान्तकाले सहायाः ॥ १३१ ॥

प्रसारितकरे मित्रे जगदुद्योतकारिणि ।

किं न तैरेव लज्जा ते कुर्वतः पाणिसंवृतिम् ॥ १३२ ॥

लक्ष्मीसंपर्कजातोऽयं दोषः पद्मस्य निश्चितम् ।

यदेष गुणसंदोहघाम्नि चन्द्रे पराङ्मुखः ॥ १३३ ॥

उदितवति द्विजराजे कस्य न हृदये मुदः पदं दधति ॥

संकुचसि कमल यदयं हरहर वामो विधिर्भवतः ॥ १३४ ॥

अन्तश्छिद्राणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः ।

कथं कमलनालस्य माभूवन्भङ्गुरा गुणाः ॥ १३५ ॥

एते च गुणाः पङ्कज सन्तोऽपि न ते प्रकाशमायान्ति ।

यल्लक्ष्मीवसतेस्तव मधुपैरुपजीव्यते कोशः ॥ १३६ ॥

कामं भवन्तु मधुलम्पटषट्पदौघ-

संघट्टघुर्घुरघनध्वनयोऽञ्जखण्डाः ।

गायन्नतिश्रुतिसुखं विधिरेव यत्र

भृङ्गः स कोऽपि धरणीधरनाभिपद्मः ॥ १३७ ॥

इति पङ्कजान्योक्तयः ।

अथ नलिन्योक्तयः ।

रे पद्मिनीदल तवात्र मया चरित्रं

दृष्टं विचित्रमिव यद्विदितं ब्रुवे तत् ।

SGDF

यैरेव शुद्धसलिलैः परिपालितस्त्वं

तेभ्यः पृथग्भवसि पङ्कभवोऽसि यस्मात् ॥ १३८ ॥

रे पद्मिनी जलरुहस्तव युक्तमेत-

त्सङ्गं करोषि मलिनैर्मधुपैः समं यत् ।

प्रायो विशुद्धकुलजा अपि लब्धवर्णा

नार्यो भवन्ति खलु नीचजनानुरक्ताः ॥ १३९ ॥

ख्याता वयं समधुपा मधुकोशवत्य-

श्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज एषः ।

अस्मत्समागमकृतेऽस्य पुनर्द्वितीयो

माभूत्कलङ्क इति संकुचिता नलिन्यः ॥ १४० ॥

रे भ्रमर भ्रमरहितं कथय कथं यासि कुमुदिनीमेनाम् ।

उदितेऽपि जगच्चक्षुषि पश्यैषा स्मितमुखी नासीत् ॥ १४१ ॥

रवेरस्तं तेजः समुदयति खद्योतपटली

मरालाली मूका कलकलमुल्लाका विदधते ।

इदं दृष्टं कष्टं चिरमसहमाना कमलिनी

मिलद्भङ्गन्याजात्कवलयति हालाहलमिव ॥ १४२ ॥

अस्तं गते दिवानाथे नलिनी मधुपच्छलात् ।

गिलन्ति स्वविनाशाय गुटिकां कालकूटजाम् ॥ १४३ ॥

अस्तं गतवति सवितरि भर्तारि मधुपं निवेश्य कोशान्ते ।

कमलिन्योऽपि रमन्ते किमत्र चित्रं मृगाक्षीणाम् ॥ १४४ ॥

इति नलिन्यन्योक्तयः ।

अथ मालत्यन्योक्तयः ।

किं मालतीकुसुम ताम्यसि निष्ठुरेण

केनापि यत्किल विलूनमितो लताग्रात् ।

लोकोत्तरेण विलसद्गुणगौरवेण

को नामुना शिरसि नाम करिष्यति त्वाम् ॥ १४५ ॥

प्रदीयस्त्वाधिक्यान्न भवति विमर्दे क्षममिदं

नचान्येभ्यो रूपे भवति कुसुमेभ्योऽधिकतरम् ।

प्रसूनं मालत्यास्तदपि हृदयाह्लादकरण-

प्रवीणैरामोदैर्भवति जगतां मौलिनिलयम् ॥ १४६ ॥

मा मालति म्लायसि यद्यवद्यतुम्बीप्रसूने अमरं समीक्ष्य ।

प्राणी चतुर्भिश्चरणैः पशुश्चेत्स षट्पदः सार्धपशुः कथं न ॥ १४७ ॥

भवति हृदयहारी कोऽपि कस्यापि हेतु-

र्न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्धः प्रयोगे ।

किसलयितवनान्ते कोकिलालापर्म्ये

विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ॥ १४८ ॥

कुसुमस्तवकैर्नम्राः सन्त्येव परितो लताः ।

तथापि अमरभ्रान्ति हरत्येकैव मालती ॥ १४९ ॥

इति मालत्यन्योक्तयः ।

अथ वालकस्य ।

मुत्तूण पत्तनियरं जडाण निय परिमलं समप्पन्तो ।

सहसुम्मूलणदुक्खं वालय बालोऽसि किं भणिमो ॥ १५० ॥

अथ केतक्यन्योक्तयः ।

केतकीकुसुमं भृङ्गः खण्ड्यमानोऽपि सेवते ।

दोषाः किं नाम कुर्वन्ति गुणापहतचेतसाम् ॥ १५१ ॥

रोलम्बस्य चिराय केतकपरिष्वङ्गेष्वभङ्गो रसः

सुजातं बत केतकस्य च मनो भृङ्गप्रसङ्गोत्सुकम् ।

जानात्येव मिथोऽनुरागमनयोः सर्वोऽपि नैसर्गिकं

प्रत्यूहाय दलेषु धिक्समभवन्मर्माविधः कण्टकाः ॥ १५२ ॥

पत्राणि कण्टकशतैः परिवेष्टितानि

वार्तापि नास्ति मधुनो रजसोऽन्धकारः ।

आमोदमात्ररसिकेन मधुव्रतेन

नालोकितानि तव केतकि दूषणानि ॥ १५३ ॥

एतासु केतकिलतासु विकासिनीषु
 सौभाग्यमद्भुततरं भवती बिभर्ति ।
 यत्कण्टकैर्व्यथितमात्मवपुर्न जानं-
 स्त्वामेव सेवितुमुपक्रमते द्विरेफः ॥ १५४ ॥
 धन्यासि केतकिलते तव किञ्चिदूनं
 नूनं न चास्ति कनकाम्बुजगर्भगौरि ।
 यत्सेवितानि शुभसौरभलोभलुब्धै-
 र्मेत्तालिभिर्विगणितोत्कटकण्टकैस्त्वम् ॥ १५५ ॥
 उत्कटकण्टककोटीघर्षणघृष्टानि हृदि न चिन्तयति ।
 असदृशरसविवशमतिर्विशत्यलिः केतकीकुसुमम् ॥ १५६ ॥
 इति केतक्यन्योक्तयः ।

अथ पनसस्य ।

गरीयान्सौरभ्ये रसपरिचयेनार्चति सुधा
 सुधा मृद्वीकापि प्रथिमनि निमग्नः फलभरः ।
 परार्थे कोशश्रीरिति पुलकितः कण्टकमिषा-
 दहो ते चारित्रं पनस मनसः कस्य न मुदे ॥ १५७ ॥

अथ कदल्याः ।

लाटीतरोरनुपकारि फलं विदित्वा
 लज्जावशादुचित एव विनाशयोगः ।
 एतत्तु चित्रमुपकृत्य फलैः परेभ्यः
 प्राणान्निजाञ्छदिति यत्कदली जहाति ॥ १५८ ॥
 लहुओविहु सेविज्जइ जो गुरुपत्तेहिं होइ परिवरिओ ।
 पत्तविसेसे कदली अमियसमाणं फलं देइ ॥ १५९ ॥

अथ द्राक्षायाः ।

यद्यपि न भवति हानिः परकीयां चरति रासमे द्राक्षाम् ।
 असमञ्जसं तु दृष्ट्वा तथापि परिदह्यते चेतः ॥ १६० ॥

SGDF

दासेरकस्य दासीयं बदरी यदि रोचते ।

एतावतैव किं द्राक्षा न साक्षादमृतप्रदा ॥ १६१ ॥

अथ दाडिमस्य ।

आपुष्पप्रसरान्मनोहरतया विश्वास्य विश्वं जनं

हंहो दाडिम तावदेव सहसे वृद्धिं स्वकीयामिह ।

यावन्नैति परोपभोगसहतामेषा ततस्तां तथा

ज्ञात्वा ते हृदयं द्विधा दलति यत्तेनाभिवन्द्यो भवान् ॥ १६२ ॥

अथ नालिकेर्यन्योक्तयः ।

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः

शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।

ददति जलमनल्पास्वादमाजीवितान्तं

नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १६३ ॥

श्लाघ्यैव नालिकेर्या गुरुतामुष्या यतः फलं विपुलम् ।

जलपरिपूरितमध्यं क्षुत्तृष्णाप्रशमनं कुरुते ॥ १६४ ॥

नालेरीइसरिच्छा इह लोए हुन्ति केइ सप्पुरिसा ।

निय वारिरक्खण्ढा ति विहावाडी कया जेण ॥ १६५ ॥

(इति नालिकेर्यन्योक्तयः ।)

अथ तालस्य ।

अये ताल व्रीडां व्रज गुरुतया भाति न भवा-

न्न वा कापि च्छाया कठिनपरिवारं तव वपुः ।

इयं वन्या धन्या सरसकदलीसुन्दरदला

परात्मानं न त्वं सुखयसि फलेनामृतमुवा ॥ १६६ ॥

अध्वन्यध्वनि भूरुहः फलभृतो नम्रानुपेक्ष्यादरा-

दूरादुन्नतिसंशयव्यसनिनः पान्थस्य मुग्धात्मनः ।

यन्मूलं समुपागतस्य मधुरच्छायाफलैः का कथा

शीर्णेनापि हि नोपयोगमगमत्पर्णेन तालद्रुमः ॥ १६७ ॥

अथ भूर्जस्य ।

दैर्जन्यमात्मनि परं प्रथितं विधात्रा
भूर्जद्रुमस्य विफलत्वसमर्पणेन ।
किं वर्मभिर्निशितशस्त्रशतावकृतै-
राशां न पूरयति सोऽर्थिपरम्पराणाम् ॥ १६८ ॥
कुर्वन्तु नाम जनतोपकृतिं प्रसून-
च्छायाफलैरविकलैः सुलभैर्दुमास्ते ।
सोढास्तु कर्तनरुजः पररक्षणार्थ-
मेकेन भूर्जतरुणा करुणापरेण ॥ १६९ ॥

अथाश्वत्थस्य ।

वर्धितैः सेवितैः किं तैः सत्यश्वत्थेऽन्यपादपैः ।
वर्धितो नरकाद्रक्षेत्स्पृष्टोऽनिष्टानि हन्ति यः ॥ १७० ॥

अथ न्यग्रोधान्योक्तयः ।

विस्तीर्णो दीर्घशाखाश्रितशकुनिशतः शाखिनामग्रणीस्त्वं
न्यग्रोध क्रोधमन्तः प्रकटयसि न चेद्वृक्षि किञ्चित्तदल्पम् ।
जल्पोऽप्येष त्रपाकृत्प्रलघुपरिकरा कापि कूष्माण्डवल्ली
पल्लीपृष्ठप्रतिष्ठा हसति निजफलैस्त्वत्फलार्द्धं किमन्यत् ॥ १७१ ॥
न्यग्रोधे फलशालिनि स्फुटरसं किञ्चित्फलं पच्यते
बीजान्यङ्कुरगोचराणि कतिचित्सिद्धयन्ति तस्मिन्नपि ।
एकस्तेष्वपि कश्चिदङ्कुरवरो बध्नाति तामुन्नतिं
यामध्यास्य जनः स्वमातरमिव क्लान्तिच्छिदे धावति ॥ १७२ ॥
रुद्धा स्वपल्लवैर्व्योम मूलैस्तु वडवामुखम् ।
रे न्यग्रोध फलं हीनं ददानः किं न लज्जसे ॥ १७३ ॥
महातरुर्वा भवति समूलो वा विनश्यति ।
नान्तरप्रत्ययानेति न्यग्रोधकणिकाङ्कुरः ॥ १७४ ॥

आयासं रुद्धं पल्लवेहिं मूलेहिं तदय पायालम् ।

तुच्छ फलं वड वीयं पुत्रं गरुयं न ववसाओ ॥ १७५ ॥

वडविडवि किं न लज्जसि गिरु भो तुच्छं फलं सम्पन्तो ।

कोहलिया दुच्छलिया गिरुअं गिरुअं फलं देइ ॥ १७६ ॥

(इति वटान्योक्तयः)

अथ मधूकस्य ।

तत्तेजस्तरणेर्निदाघसमये तद्वारि मेघागमे

तज्जाड्यं शिशिरे मदेकशरणैः सोढं पुरा यैर्दलैः ।

आयातस्त्वधुना फलस्य समयः किं तेन मे तैर्विना

स्मृत्वा तानि शुचेव रोदिति गलत्पुष्पैर्मधूकद्रुमः ॥ १७७ ॥

यदास्ति पात्रं न तदास्ति वित्तं यदास्ति वित्तं न तदास्ति पात्रम् ।

इत्थं हि चिन्तापतितो मधूको मन्येऽश्रुपातै रुदनं करोति ॥ १७८ ॥

मूलादेव यदस्य विस्तृतिभरच्छायाप्यनन्यादृशी

ते यस्य प्रसवाः स्वमञ्जुलरसैरानन्दयन्ति प्रजाः ।

स्नेहं च प्रकटीकरोति परमं भूयः फलानां गुणै-

र्वित्वैकैकगुणांस्तरुन्भज सखे तस्मान्मधूकद्रुमम् ॥ १७९ ॥

अहलो पत्तावरिओ फलकाले मूढ पत्ताइं ।

इणिकारणि रे विडवि महुय तुह एरिसं नाम ॥ १८० ॥

(इति मधूकान्योक्तयः)

अथेक्षोरन्योक्तयः ।

कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि

किंचासि पञ्चशरकार्मुकमद्वितीयम् ।

इक्षो तवास्ति सकलं परमेकमूनं

यत्सेवितो वहसि नीरसतां क्रमेण ॥ १८१ ॥

परार्थे यः पीडामनुभवति भङ्गेऽपि मधुरो

यदीयः सर्वेषामिह खलु विकारोऽप्यभिमतः ।

न संप्राप्तो वृद्धिं यदि स भृशमक्षेत्रपतितः

किमिक्षोर्दोषोऽसौ न पुनरगुणायामरुभुवः ॥ १८२ ॥

मुखे यद्वैरस्यं वपुरपि पुनर्ग्रन्थिनिचितं

न संतप्तः कोऽपि क्षणमपि भजेन्मूलमभितः ।

फलं चैवाप्राप्तं वितथसरलिम्नश्च भवत-

स्तदिक्षो नायुक्तं विहितमितरैर्यत्तु दलनम् ॥ १८३ ॥

(इतीक्षोरन्योक्तयः)

अथ पीलोः ।

धन्याः सूक्ष्मफला अपि प्रियतमास्ते पीलुवृक्षाः क्षितौ

क्षुत्क्षुण्णेन जनेन हि प्रतिदिनं येषां फलं भुज्यते ।

किं तैस्तत्र महाफलैरपि पुनः कल्पद्रुमाद्यैर्द्रुमै-

र्येषां नाम मनागपि श्रमनुदे छायापि न प्राप्यते ॥ १८४ ॥

अथ बदर्याः ।

परिमलगुणेन केतकि कण्टककूटानि वहसि तद्युक्तम् ।

गुणरहितबदरि यत्त्वं वहसि परं तानि तत्किंनु ॥ १८५ ॥

अथ शाल्मल्यन्योक्तयः ।

हंसाः पद्मवनाशया मधुलिहः सौरभ्यगन्धाशया

पान्थाः स्वादुफलाशया बलिभुजो गृध्राश्च मांसाशया ।

दूरादुन्नतपुष्परगनिकरैर्निःसार मिथ्योन्नते

रे रे शाल्मलिपादप प्रतिदिनं के न त्वया वञ्चिताः ॥ १८६ ॥

कायः कण्टकभूषितो न च नवच्छायाकृतः पल्लवाः

पुष्पाणि च्युतसौरभाणि न दलश्रेणी मनोहारिणी ।

किं ब्रूमः फलपाकमस्य यदुपन्यासेऽपि लज्जामहे

तद्भोः केन गुणेन शाल्मलितरो जातोऽसि सीमद्रुमः ॥ १८७ ॥

विशालं शाल्मल्यां नयनसुभगं वीक्ष्य कुसुमं

शुकानां श्रेणीभिः फलमपि भवेदस्य सदृशम् ।

इति ध्यात्वोपास्तं फलमपि तु दैवात्परिणतं

निदाने वृद्धोऽन्तः सपदि मरुता सोऽप्यपहतः ॥ १८८ ॥

निर्गन्धं कुसुमं फलं कटुतरं छायापि ते कर्बुरा

बाह्यं कण्टकखर्परैः परिवृतं निःसारमन्तर्वपुः ।

वृद्धिर्गृध्रपरिग्रहाय किमहो वक्तव्यमस्मात्परं

हंहो शाल्मलिपादप प्रतिदिनं के न त्वया वञ्चिताः ॥ १८९ ॥

छायान्वितोऽपि सरलोऽप्यतिविस्तृतोऽपि

कान्तप्रसूनविभवोऽप्यतिसुन्दरोऽपि ।

यत्त्वं फलेऽर्थिषु विसंवदसे प्रकाम-

मस्पृश्यतां भजसि शाल्मलिवृक्ष तस्मात् ॥ १९० ॥

(इति शाल्मल्यन्योक्तयः)

अथ निम्बान्योक्तयः ।

दुग्धेन सिक्तो निम्बोऽयमालवालं कृतं गुडैः ।

तथापि जातिवैचित्र्यात्कटुकत्वं न मुञ्चति ॥ १९१ ॥

शर्करासर्पिःसंयुक्तं निम्बबीजं प्रतिष्ठितम् ।

क्षीरघटसहस्रेण निम्बः किं मधुरायते ॥ १९२ ॥

निम्ब किं बहुनोक्तेन निष्फलानि फलानि ते ।

यानि संजातपाकानि काका निःशेषयन्त्यमी ॥ १९३ ॥

यस्मादर्थिजनो मनोभिलषितं लब्ध्वा मुदा मेदुरः

सार्धं बन्धुजनैश्चकार विविधान्भोगान्विलासोद्भुरः ।

तं दैवेन विवेकशून्यमनसा निर्मूल्य चूतद्रुमं

स्थाने तस्य तु काकलोकवसतिर्निम्बः समारोपितः ॥ १९४ ॥

जइ फलभरेण नमिओ निम्बो घणछायकुसुमगन्धाद्धो ।

तो वायसाणजुग्गो नहु जुग्गो इयर पष्ठीणम् ॥ १९५ ॥

जन्मन्तरंमि वसिओ निम्बतरू इक्खुवाडमब्भम्मि ।

ता किं न होइ गुलिओ संसग्गी जइ गुणा हुन्ति ॥ १९६ ॥

(इति निम्बान्योक्तयः)

अथ खदिरान्योक्तयः ।

चन्दने विषधरान्सहामहे वस्तु सुन्दरमगुप्तिमत्कुतः ।
रक्षितं वद किमात्मसौष्ठवं वर्धिताः खदिर कण्टकास्त्वया ॥ १९७ ॥
पदं तदिह नास्ति यन्न खदिरैः खरैरावृतं
न तेऽपि खदिरा न ये कुटिलकण्टकैरावृताः ।
न ते कुटिलकण्टकाः किमपि ये न मर्मच्छिद-
स्तदुज्झत वृथा स्थितिं बत सहध्वमध्वश्रमम् ॥ १९८ ॥

अथ वंशस्य ।

गाढग्रन्थिविसंस्थुलोऽपि कलयन्काठिन्यमप्यन्वहं
छायामात्रविवर्जितोऽपि निशितैरप्यङ्कितः कण्टकैः ।
मिथ्यारूढजनप्रसिद्धिवचनैर्मुक्ताफलश्रद्धया
धिङ्मूढेन मयैष वंशविटपी शून्याशयः सेवितः ॥ १९९ ॥

अथ वेतसस्य ।

सर्वेषामपि वृक्षाणां वेत्येको वेतसद्रुमः ।
नम्रीभूयावति प्राणान्नदीपूररिपूदये ॥ २०० ॥

अथ किंशुकान्योक्तयः ।

किंशुकाद्गच्छ मा तिष्ठ शुक भाविफलाशया ।
बाह्यरङ्गप्रपञ्चेन के के नानेन वञ्चिताः ॥ २०१ ॥
किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेऽपि बुभुक्षितः ।
अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्वन्त्युपजीविनः ॥ २०२ ॥
रक्तेन वा विरक्तेन किं पलाशेन पक्षिणाम् ।
यस्य पुष्पे न सौभाग्यं फले न मधुरो रसः ॥ २०३ ॥

त्यज कुसुमित किंशुकाभिमानं निजशिरसि अमरोपवेशनेन ।
विकचकुमुममालतीवियोगाद्दहनधिया कुरुते त्वयि प्रवेशम् ॥ २०४ ॥

किंशुक किं शुकमुखवत्कुसुमानि मधौ विकाशयस्यनिशम् ।
 यस्यां जनोऽनुरागी सा गीरेतैः कदापि नोच्चार्या ॥ २०५ ॥
 तइयच्चिय परिचत्ता तुज्झ पलासा पलाससउणेहिम् ।
 कुसुमगमे वजन्ति हयासकसिणी कयं वयणम् ॥ २०६ ॥

(इति किंशुकान्योक्तयः)

अथ पलाशपुष्परसस्य ।

मा गर्वमुद्वह विमूढ पलाशपुष्प
 यत्षट्पदः श्रयति मामतिगन्धलुब्धः ।
 रे मालतीविरहतो ज्वलदग्निकल्पं
 त्वां मृत्युकारणमवेत्य समाश्रितोसौ ॥ २०७ ॥

अथ बबूलान्योक्तयः ।

तुच्छं पत्रफलं कषायविरसं छायापि ते कर्बुरा
 शाखा कण्टककोटिभिः परिवृता मत्कोटकोटिस्थलम् ।
 अन्यस्यापि तरोः फलानि ददतः कृत्वा वृत्तिं तिष्ठसि
 रे बबूलतरो सुसङ्गरहितः किं वर्ण्यते तेऽधुना ॥ २०८ ॥
 आमूलग्रनिबद्धकण्टकतनुर्निर्गन्धपुष्पागम-
 श्छाया न श्रमहारिणी न च फलं क्षुत्क्षामसंतर्पणम् ।
 बबूलद्रुम साधुसङ्गरहितस्त्वं तावदास्तामहो
 अन्येषामपि शाखिनां फलवतां गुप्त्यै वृत्तिर्जायसे ॥ २०९ ॥
 स्वयमफलवान्भेदं छेदं स्थितेश्च विकर्षणं
 कुहरपतनं बबूलोऽयं विषह्य वृत्तीभवन् ।
 खल इव फलान्यन्यस्यापि प्रभूततराण्यहो
 न दिशति सतां भोक्तुं द्युम्नान्वितः पटुकण्टकैः ॥ २१० ॥

१. 'गात्रं कण्टकसंकटं प्रविरलच्छायाभृतः पल्लवा निर्गन्धः कुसुमोत्करस्तव फलं न क्षुद्रिनाशक्षमम् । बबूलद्रुम मूलमेति न जनस्ते तावदास्तामहो अन्येषामपि शाखिनां फलवताम्' इत्यपि पाठान्तरम्.

कण्टिल्लो सकलाओ तुच्छफलो लहुअ पत्तपरिवारो ।

बाउलफलं अदिन्तो अन्नाणवि अट्टुओ होसि ॥ २११ ॥

अच्छउता सरसफलं दायवं पन्थियाणसउणाणम् ।

इयरतरुवारणत्थं बब्बूलो पिच्छ कण्टइओ ॥ २१२ ॥

(इति बब्बूलान्योक्तयः)

अथ शाखोटस्य ।

कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं

वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्मादिदं भाषसे ।

वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते

न छायापि परोपकारकृतये मार्गस्थितस्यापि मे ॥ २१३ ॥

अथ चिञ्चिण्याः ।

गुरुओवि न सेविज्जइ जो लहुपत्तेहिं होइ परिवरिओ ।

पत्तविसेसे चिञ्चिणि वड्डं चुड्डं फलं देइ ॥ २१४ ॥

अथ करीरान्योक्तयः ।

फलं दूरतरेऽप्यास्तां पुष्पासि कुसुमैर्जनान् ।

इतरे तरवो मन्ये करीर तव किंकराः ॥ २१५ ॥

किं पुष्पैः किं फलैस्तस्य करीरस्य दुरात्मनः ।

येन वृद्धिं समासाद्य न कृतः पात्रसंग्रहः ॥ २१६ ॥

यद्यपि वसति करीरतरुर्मरुदचलस्य सदेशम् ।

तदपि न याति स जातिगुणादमरद्रुमगुणलेशम् ॥ २१७ ॥

पत्रं न चित्रमपि निस्त्रप पान्थखेद-

छेदक्षमं विषसमं तव मुग्ध दुग्धम् ।

धूर्तप्रपञ्चितमहातरुकीर्तनेन

रे निष्फलस्त्वमसि कण्टकितः करीर ॥ २१८ ॥

हंहो मरुस्थलमहीरुह तावकीनं

संभावयामि महिमानममानमेव ।

SGDF

अङ्गीकृतः स भवता यदयं करीरः

कूरोऽपि कल्पतरुगौरवमभ्युपैति ॥ २१९ ॥
 वरं करीरो मरुमार्गवर्ती यः पान्थसार्थं कुरुते कृतार्थम् ।
 किं कल्पवृक्षैः कनकाचलस्थैः परोपकारव्रतलम्भदुःस्थैः ॥ २२० ॥
 अपरतरुनिकरमुक्तं मरुमण्डलमावसत्यसावेकः ।
 फलकुसुमैरुपकुर्वन्नररि(?) करीरः कथं घोरः ॥ २२१ ॥

(इति करीरान्योक्तयः)

अथ कण्टकस्य ।

रे कण्टकैर्निशितदुर्धरकोटिभागै-
 मार्गं निपत्य किमुपार्जितमेभिरत्र ।
 विद्धानि साधुजनपादतलानि ताव-
 दन्यन्निजस्य वदनस्य कृतश्च भङ्गः ॥ २२२ ॥

अथ कन्थेर्या ।

नारङ्गिकुसुमकण्टो के इय कुसुमस्स कण्टओ जुत्तो ।
 रसरहिय गन्धवज्जिय कन्थेरियकण्टओ कीस ॥ २२३ ॥

अथ बिल्वस्य ।

आमोदीनि सुमेदुराणि च मृदुस्वादूनि च क्षमारुहा-
 मुद्यानेषु वनेषु लब्धजनुषां सन्तीतरेषामपि ।
 किंतु श्रीफलता तवैव जयिनी मालूर दिङ्मण्डले
 यस्यैतानि फलानि यौवनवतीवक्षोजलक्ष्मीगृहाः ॥ २२४ ॥

अथार्कस्य ।

अर्काः किं फलसंचयेन भवतां किं वः प्रसूनैर्नवैः
 किं वा भूरिलताचयेन महता गोत्रेण किं भूयसा ।
 येषामेकतमो बभूव स पुनर्नैवास्ति कश्चित्कुले
 छायायामुपविश्य यस्य पथिकास्तृप्तिं फलैः कुर्वते ॥ २२५ ॥

अथ यवासस्य ।

परवित्तव्ययं दृष्ट्वा खिद्यन्ते ह्यधमा जनाः ।

वर्षा वर्षति पर्जन्यो यवासोऽपि प्रणश्यति ॥ २२६ ॥

अथ यवस्य ।

वीवाहादौ प्ररोहस्तव यव शिवकृन्मङ्गलं स्वस्तिकाद्यैः

स....भूतः पितृणां दहनमुखगतो देवतानामभीष्टः ।

पाणौ त्वक्षमरेखा धनविभवकृते वैभवं किं स्तुमस्ते

हस्ते बद्धः प्रशस्तः कथित इह जनैः शीतलोऽश्वप्रियश्च ॥ २२७ ॥

अथ शालेः ।

शाखासंततिसंनिरुद्धमनसो भूयांस एवावनौ

विद्यन्ते तरवः फलैरविकलैरार्तिच्छिदः प्राणिनाम् ।

किंतु द्वित्रिदलैरलंकृततनोः शालेः स्तुमस्तुङ्गतां

दत्त्वा येन निजं शिरः सुकृतिना को नाम न प्रीणितः ॥ २२८ ॥

स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां भजन्ते

ये गाढपीडनवशान्न वयं तिलास्ते ।

अस्मानवेहि कलमानलमाहतानां

येषां प्रचण्डमुशलैरवदाततैव ॥ २२९ ॥

अथ तिलस्य ।

होहित्ति खलो मुणिऊण कारणं जन्त एहिं दिवसेहिम् ।

फलिओवि तेहिं मुक्को तिलविडवो सव्वपत्तेहिम् ॥ २३० ॥

खलसङ्गे परिचत्ते पिच्छहतिल्लेण जं फलं पत्तम् ।

मयणाहिसुरहिवासिय पहुसीसं पामियं तेण ॥ २३१ ॥

अथ मञ्जिष्ठायाः ।

देशत्यागं वहितापं कुट्टनं च मुहुर्मुहुः ।

रागातिरेकान्मञ्जिष्ठाप्यश्रुते किं पुनः पुमान् ॥ २३२ ॥

रागो हि दोषपोषाय चेतनारहितेष्वपि ।

मञ्जिष्ठा कुट्टनस्थानभ्रंशतापसहा भृशम् ॥ २३३ ॥

अथ विजयायाः ।

विजया गुणाणमूलं तरुअरमब्भम्मि उब्भओ हत्थो ।
अत्थय कोइ समत्थो मुं सत्थि पल्लए बत्थो ॥ २३४ ॥

अथ तमाकोः ।

भ्रातः कस्त्वं तमाकू सुहृदिह गमनं ते कुतोऽम्भोधिपारा-
त्कस्य त्वं दण्डधारी न हि तव विदितं श्रीकलेरेव राज्ञः ।
चातुर्वर्ण्यं विधिविरचितं भिन्नभिन्नैकभूत-
मेकीकर्तुं जगति सकले शासनादागतोऽस्मि ॥ २३५ ॥

अथ लशुनस्य ।

कर्पूरधूलीरचितालवालः कस्तूरिकाचर्चितदोहदश्रीः ।
क(का)श्मीरनीरैरभिषिच्यमानः प्राच्यं गुणं मुञ्चति किं पलाण्डुः ॥ २३६ ॥

अथ कर्पासान्योक्तयः ।

नीरसान्यपि रोचन्ते कर्पासस्य फलानि नः ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥ २३७ ॥
श्लाघ्यं कर्पासफलं यस्य गुणै रन्ध्रपिहितानि ।
मुक्ताफलानि तरुणीकुचकलशे सुष्ठु विलसन्ति ॥ २३८ ॥
निष्पेषोत्थमहाव्यथा परतरं प्राप्तं तुलारोहणं
ग्राम्यस्त्रीनखलुञ्चनव्यतिकरस्तत्रीप्रहारव्यथा ।
मातङ्गोज्झिततुण्डवारिकणिकापानं च कूर्चाहतिः
कर्पासेन परार्थसाधनविधौ किं किं न चाङ्गीकृतम् ॥ २३९ ॥
इति कर्पासान्योक्तयः ।

अथारिष्टस्य ।

निक्षे(क्षि)प्योष्णजले त्वचं तव परित्वक्षन्ति ये निष्कृपा-
स्तोषामप्युपकुर्वतांशुकमलप्रक्षालनादुच्चकैः ।
उत्कीर्णैरपि तन्तुभिर्निगदि(लि)तैरप्यस्थिभिः प्राणिनां
चक्षुर्दोषहता सतां धुरि धृतारिष्ट त्वयैव स्थितिः ॥ २४० ॥

अथ कण्टकारिकायाः ।

उचितं नाम नारिङ्ग्यां(?)केतक्यामपि कण्टकाः ।
रसगन्धोज्झिते किं ते कण्टकाः कण्टकारिके ॥ २४१ ॥

अथ शणस्य ।

भूर्जः परोपकृतये निजकवचविकर्तनं सहते ।
परबन्धनाय च शणः प्रेक्षध्वमिहान्तरं कीदृक् ॥ २४२ ॥

अथ धत्तूरान्योक्तयः ।

छाया कापि न पल्लवेषु सुमनःस्तोमेषु नो सौरभो-
द्धारः कोऽपि फलेषु कापि महती वार्ता न तां ब्रूमहे ।
धत्ते त्वां शिरसा तथापि हि हरस्त्यक्त्वा पुनः केतकीं
तच्चूनं कनकद्रुमात्र भवता नाम्ना जगद्वञ्चितम् ॥ २४३ ॥
धत्तूर धूर्त तरुणेन्दुनिवासभूमौ
भाले पिशाचपतिना खलु निर्मितोऽसि ।
किं कैरवाणि विकसन्ति तमः प्रयाति
चन्द्रोत्पलो द्रवति वार्धिरुपैति वृद्धिम् ॥ २४४ ॥
महेशस्त्वां धत्ते शिरसि रसराजस्य जयिनी
विशुद्धिस्त्वत्सङ्गात्कनकमयमेतन्निभुवनम् ।
तनोति त्वत्सेवां न तु कनकवृक्ष त्वदपरः
परस्तत्को नु स्याद्यदि न सुलभीभावमभजः ॥ २४५ ॥

इति धत्तूरान्योक्तयः ।

अथ तृणान्योक्तयः ।

जीमूतोन्मुक्तमुक्ताफलकणतुलितस्थूलसूक्ष्मोदबिन्दु-
श्रेणीपातैः प्रभूतैर्वियत इतइतो जातसेकातिरेका ।
किं च प्राचीमभीष्मोष्मकतपनमहादाहसंदोहरिक्ता
सूते यद्भूतधात्री तदिदमपि तृणं किं न वर्ण्यं सकर्णैः ॥ २४६ ॥

वेश्मानि च्छादयद्यज्जलधरसमये शीतकाले निदाधे
 पानीयस्फीतशीतातपनिबिडतमोपद्रवान्संपिनष्टि ।
 पावित्र्यं च प्रवीणा विदधति वदने येन सु(भु)क्तिक्रियान्ते
 तेनार्किचित्करत्वे नरमुपमिमते वीरणेनानभिज्ञाः ॥ २४७ ॥
 अध्यासीनाश्ववारैरुपजनितभये हेषमाणैस्तुषारै-
 र्गर्जत्स्फूर्जन्महौजोत्कटकरटिघटाकोटिभिर्दुष्प्रवेशे ।
 सङ्ग्रामे कल्पकल्पेऽप्यरिजनविसरैर्मार्गणश्रेणिबद्धे
 बध्येऽवध्ये नृपेऽपि प्रभवति यवसं प्राणविश्राणनाय ॥ २४८ ॥
 यस्यैवाहारयोगाज्जगति सुरभयोऽजान्विता वा महिष्यः
 सर्वाः संप्राप्तभूयो वपुरुपचितिका आज्यदध्नो निदानम् ।
 क्षीरं लोकाय दद्युः सकलरसमहायोनिभूतं तृणं त-
 ज्ञाने जानन्त एते धिगखिलकवयो नीरसं वर्णयन्ति ॥ २४९ ॥
 उचुङ्क्षैस्तरुभिः किमेभिरखिलैराकाशसंस्पर्धिभि-
 र्धन्योऽसौ नितरामुलपविटपी नद्यास्तटेऽवस्थितः ।
 एवं यः कृतबुद्धिरुद्धतजलव्यालोलवीचीवशा-
 न्मज्जन्तं जनमुद्धरामि सहसा तेनैव मज्जामि च ॥ २५० ॥
 रुढस्य सिन्धुतटमुपगतस्य तृणस्यापि जन्म कल्याणम् ।
 यत्सलिलमज्जदाकुलजनहस्तालम्बनं भवति ॥ २५१ ॥
 इति तृणान्योक्तयः ।

अथ ताम्बूलान्योक्तिः ।

वल्लीनां कति न स्फुरन्ति परितः पात्राणि किं तैरिह
 स्निग्धैरप्यतिकोमलैरपि निजामेवाश्रयद्भिः श्रियम् ।
 तानेव स्तुमहे महाजनमुखश्रीकारिजन्मव्रता-
 न्यान्सूते नवरागनागरमुखांस्ताम्बूलवल्लीछदान् ॥ २५२ ॥

अथ तुम्ब्यन्योक्तयः ।

एके भेजुर्यतिकरगतास्तुम्बिकाः पात्रलीलां

गायन्त्यन्ये सरसमधुरं शुद्धवंशे विलम्बाः ।

SGDF

एके केचित्सुगुणग्रथिता दुस्तरं तारयन्ति
केषामन्ये ज्वलितहृदया रक्तमन्ये पिबन्ति ॥ २५३ ॥

सर्वास्तुम्ब्यः समकटुरसास्तुम्बिवल्लिप्रसूता-
स्तासां बद्धा अपि कतिपया दुस्तरं तारयन्ति ।
शब्दायन्ते सरसमपराः शुष्ककाष्ठे निषण्णा-
स्तन्मध्येऽन्या ज्वलितहृदयाः शोणितं संपिबन्ति ॥ २५४ ॥

पिच्छसहीतुम्बणिया भूयंमुत्तूण निम्बमारुहिया ।
एयाए न हुहुत्तं सरिसा सरिसेहिं रच्चन्ति ॥ २५५ ॥
इति तुम्ब्यन्योक्तयः ।

अथ कारेल्याः ।

रे कोरेल्लि हयासे चडिया निम्बम्मि पायवे पउरे ।
अहवा तुज्झ न दोसो सरिसा सरिसेहिं रच्चन्ति ॥ २५६ ॥
अथ कोहलिन्याः ।

पत्तावरिओ बहुसहसाहिओ पिच्छिऊण मारुहसु ।
कोहलिणि किं न याणसि परण्डो तुह भरं सहइ ॥ २५७ ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारक-
वृन्दारकराजपरमगुरुभट्टारकश्री १९ श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजिष्य-
पण्डितहंसविजयगणिसमुच्चितायामन्योक्तिमुक्तावल्यां वनस्पतिका-
यिकान्योक्तिनिरूपकः सप्तमः परिच्छेदः ॥

अष्टमः परिच्छेदः ।

जय श्रीसौख्यसंतानसर्वसम्पत्तिदायिने ।
नमोऽस्तु भुजगाधीशध्वजाय परमेष्ठिने ॥ १ ॥
विदिताखिलसद्वस्तुसारसंसारतारक ।
करुणाकर मां पार्श्वे सौम्यदृष्ट्या विलोकय ॥ २ ॥
श्रीसंयुक्तं गुणागारं विश्वव्यापियशोभरम् ।
जनानां जयदातारं याँकरं व्रतिनां वरम् ॥ ३ ॥

नमाम्यहं महावीरं दयावन्तं जिनेश्वरम् ।

सूरवत्तेजसां पूरं रिक्तं पापैः शिवंकरम् ॥ ४ ॥

सेवितं साधुनिःस्फारं वर्थातिशयभासुरम् ।

कल्याणाचलवद्धीरं हंसगत्या मनोहरम् ॥ ५ ॥

सर्वधर्मोपदेष्टारं विशिष्टज्ञानमन्दिरम् ।

जराभीरुविजेतारं यत्याचारैकतत्परम् ॥ ६ ॥

(चतुर्भिः कलापकम् ।)

स्वगुरुनामगर्भितं कर्तृनामगर्भितं च षोडशदलकमलबन्धचित्रम् ।

श्रीगौतमगणाधीशसमानमहिमालयम् ।

विजयानन्दसूरीन्द्रं शंकरं समुपास्महे ॥ ७ ॥

अथ प्रतिद्वारवृत्तानि ।

अथाष्टमपरिच्छेदे प्रतिद्वारस्य पाटिकाम् ।

प्राज्ञप्रीतिप्रदे(दां) वैचिम् हृद्यपद्यपदैः स्फुटम् ॥ ८ ॥

तत्रान्योक्तिषु विज्ञेया बुद्धिवोधविवृद्धये ।

मरुस्थलीभवान्योक्तिः संकीर्णान्योक्तयः पुनः ॥ ९ ॥

अथ मरुस्थलान्योक्तयः ।

मरौ नास्त्येव सलिलं कृच्छ्राद्यद्यपि लभ्यते ।

तत्कटु स्तोकमुष्णं च न करोति वितृष्णताम् ॥ १० ॥

पायं पायं पिव पिव पयः सिञ्च सिञ्चाङ्गमङ्गं

भूयो भूयः कुरु कुरु सखे मज्जनानि(?)नितान्तम् ।

एषा शेषश्रमशमपटुर्दुःखिताध्वन्यबन्धुः

सिन्धुर्दूरीभवति भवतो मारवः पान्थ पन्थाः ॥ ११ ॥

भो भो किमकाण्ड एव पतितस्त्वं पान्थ कान्या गति-

स्तत्तादृक् तृषितस्य ते खलमतिः सोऽयं जलं गूहते ।

आस्थानोपगतामकालसुलभां तृष्णां प्रतिकुम्भहे(?)

त्रैलोक्यप्रथितप्रभावमहिमा मार्गो ह्यसौ मारवः ॥ १२ ॥

सत्पादपान्विपुलपल्लवपुष्पपुञ्ज-

संपत्परीतवपुषः फलभारनम्रान् ।

व्योमाग्रसिञ्जितशकुन्तसमाश्रितोरु-

शाखान्मरौ मृगयते न ततोऽस्ति मुग्धः ॥ १३ ॥

गतमतिजवाद्भ्रान्तं सर्वं समुत्कषिता च भू-

श्चिरतरमहो निःश्वासान्धं सदैन्यमवस्थितम् ।

किमिव न कृतं पान्थेनेत्थं तथापि शठो महः

प्रकृतिविरसः कष्टं यातो मनागपि नार्द्रताम् ॥ १४ ॥

किमसि विमनाः किं वोन्मादी क्षणादपि लक्ष्यसे

पुनरपि पुनः प्रेक्षापूर्वा न काश्चन ते क्रियाः ।

स्वयमजलदां जानानोऽपि प्रविश्य मरुस्थलीं

शिशिरमधुरं वारि प्राप्नुं यदध्वग वाञ्छसि ॥ १५ ॥

(इति मरुस्थलान्योक्तयः ।)

अथ संकीर्णान्योक्तयः ।

दामोदरमुदराहितभुवनं यो वहति लीलया गरुडः ।

कस्य तरोरुपरिष्ठात्खिन्नोऽसौ श्रान्तिमपनयतु ॥ १६ ॥

यः पीयूषसहोदरैः स्तपयति ज्योत्स्नाजलैः सर्वतो

यश्च त्वामधिकाधिकं ज्वलयति प्रोद्दामतापैः करैः ।

आतव्योम तयोरपि स्थितिमिह व्यातन्वतो विक्रिया-

निर्मुक्तस्य महत्त्वमेतदसमं दूरेऽधिरूढं तव ॥ १७ ॥

जम्भारिरेव जानाति रम्भासंभोगविभ्रमम् ।

घटचेटीविटः किंस्विज्जानात्यमरकामिनीम् ॥ १८ ॥

किं व्यक्तीकुरुषे सरोजमुकुलाकारामुरोजश्रियं

नीतेनाधरपल्लवे कुसुमतां किंच स्मितेनामुना ।

आकृतामृतशीतलाः श्रमयसे किंवा गिरो नागरी-

मुग्धे मानिनि किं मुधा घटयसि क्लीबे कटाक्षच्छटाः ॥ १९ ॥

SGDF

कथयत इव नेत्रे कर्णमूलं प्रयाते

सुमुखि तव कुचाभ्यां वर्त्य पश्यावर्नीं वा ।

स्खलति यदि कथंचित्ते पदाम्भोजयुग्मं

॥ २० ॥ तव तनुतरमध्यं भज्यते नौ न दोषः ॥ २० ॥

यथा यथा स्यात्स्तनयोः समुन्नतिस्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम् ।

अहो सहन्ते बत नो परोदयं निसर्गतोन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥ २१ ॥

बाले तव कुचावेतौ नियतौ चक्रवर्तिनौ ।

आसमुद्रकरग्राही देवो यस्य करप्रदः ॥ २२ ॥

निगदितुं विधिनापि न शक्यते सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम् ।

सुरतसंगतया प्रियपीडितौ बत नतिं न गतौ च्युतकञ्चुकौ ॥ २३ ॥

अणुरायरणभरियं कञ्चणकलसावि तरुणिथणजुअलम् ।

ता किं मुहम्मि कालं मसि मुद्दामयणरायस्स ॥ २४ ॥

अङ्गानि मे दहतु कान्तवियोगवह्निः

संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदयस्थितो मे ।

इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुवारि-

धाराभिरुष्णमभिसिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥ २५ ॥

उपरिनाभिसरःपरिताडिता पटकुटीव मनोभवभूपतेः ।

विजयिनस्त्रिपुरारिविजी(जिगी)षया तव विराजति भामिनि कञ्चुकी २६ ॥

यदेतन्नेत्राम्भः पतदपि समासाद्य तरुणी-

कपोले व्यासङ्गं कुचकलशमस्याः कलयति ।

ततः श्रोणीबिम्बं व्यवसितविलासं तदुचितं

स्वभावस्वच्छानां विपदपि विलासं वितरति ॥ २७ ॥

धनिनि जने चटु पटुतां जल्पतु रसना रसाशने लुब्धा ।

त्वमशनपाननिरस्तमस्तकचरणे कथं लुठसि ॥ २८ ॥

एते कूर्चकचाः सकङ्कणरणत्कर्णाटसीमन्तिनी-

हस्ताकर्षणलालिताः प्रतिदिनं प्राप्ताः परामुन्नतिम् ।

तेऽमी संप्रति पापिनापितकरभ्राम्यत्क्षुरप्रानन-

क्षुण्णाः क्षोणितले पतन्ति परितः कृतापराधा इव ॥ २९ ॥
पटु रटति पलितदूतो मस्तकमासाद्य सकललोकस्य ।
प्रभवति जरा च मरणं कुरु धर्मं विरम पापेभ्यः ॥ ३० ॥
पलितानि शशाङ्करोचिषां किमु कानीति वितर्कयामहे ।
यदमूनि वितेनिरे तरां.....नारि(?)लोचनपद्ममुद्रणाम् ॥ ३१ ॥
यदमी दशन्ति दशना रसना तत्त्वादसुखमवाप्नोति ।
प्रकृतिरियं धवलानां क्लिश्यन्ति यदन्यकार्येषु ॥ ३२ ॥

संवर्धितो मधुरमिष्टरसैकयुत्तया

कान्ताधरामृतरसैर्न तु वञ्चितोऽसि ।

संत्यज्य गात्रनिलयं रदन त्वमेको

मन्ये निदाघभयतः प्रथमं प्रयातः ॥ ३३ ॥

हे जिहे कटुकस्नेहे मधुरं किं न भाषसे ।

मधुरं वद कल्याणि लोको हि मधुरप्रियः ॥ ३४ ॥

द्वात्रिंशद्दशनद्वेषिमध्ये तिष्ठसि नित्यशः ।

तदिदं शिक्षिता केन जिहे संचारकौशलम् ॥ ३५ ॥

निजकर्मकरणदक्षा सह वसति दुरात्मनापि निरपायम् ।

किं न कुशलेन रसना दशनानामन्तरे विशति ॥ ३६ ॥

जीहे जाण पमाणं जिमियव्वे तहयजं पियव्वेय ।

अइ जिमिय जं पियाणं परिणामो दारुणो होइ ॥ ३७ ॥

सगदाम मूर्धनि निधेहि गवेधुकानां

गुञ्जामयीमुरसि धारय हारयष्टिम् ।

बाले कलावति चिरं पतितासि पल्लौ

तल्लौहमन्यदपि भूषणमेषणीयम् ॥ ३८ ॥

यदेतत्कामिन्या सुरतविरतौ पल्लवरुचा

करेणानीतः सन्वससि सह हारेण गुणिना ।

मुहुः कुर्वन्गीतं कुचकलशपीठोपरि लुठ-

त्रये वीणादण्ड प्रकटय फलं कस्य तपसः ॥ ३९ ॥

यत्पूर्वं पवनाग्निशस्त्रसलिलैश्चीर्णं तपो दुष्करं

तस्यैतत्फलमीदृशं परिणतं यज्जातरूपं वपुः ।

मुग्धापाण्डुकपोलचुम्बनसुखं सङ्गश्च रत्नावलेः

प्राप्तं कुण्डल वाञ्छसे किमपरं यन्मूढ दोलायसे ॥ ४० ॥

पृच्छे कः पुरुषः स भोगचतुरो दुस्तस्तपोऽङ्गीकृत-

मुग्रं तापकृतं सकर्णचटनं नानाविधं मेनका ।

सभ्रूरुत्तडितं सयोषिति प्रियाश्चुम्बन्ति गल्लस्थले

कामिन्याधरपानयन्ति मनसा तेनापि डोलायते ॥ ४१ ॥ (?)

स्पृशति शीतकरो जघनस्थलीमुचितमेव तदस्य कलङ्किनः ।

गुणवतस्तव हार न युज्यते परकलत्रकुचद्वयपीडनम् ॥ ४२ ॥

पतितानां संसर्गं त्यजन्ति दूरेण निर्मला गुणिनः ।

इति कथयन् रजनीनां हारः परिहरति कुचयुगलम् ॥ ४३ ॥

सद्रुत्त सद्रुण महर्घ महार्हकान्ते

कान्ताधनस्तनतटोचितचारुमूर्ते ।

आः पामरीकठिनकण्ठविलग्नभग्न

हा हार हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥ ४४ ॥

असद्रुत्तो नायं न च खलु गुणैरेष रहितः

प्रिये मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः ।

गृहाणामुं बाले तव पततु कण्ठं पुनरसा-

वुपायो नैवान्यस्तव हृदयतापोपशमने ॥ ४५ ॥

नैषा वेगं मृदुतरतनुस्तावकीनं विसोढुं

शक्ता नैनां चपल नितरां खेदयेन्दीवराक्षीम् ।

रत्यभ्यासं विदधत इति प्राणनाथस्य कर्णो-

पान्ते गत्वा निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीव ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा कुम्भसमुद्भवेन मुनिना किञ्चित्तदात्याहितं
 सिन्धावन्धुकुटुम्बदर्दुरकुलं हर्षादिदं ध्यायति ।
 गाम्भीर्याद्यदि तेन बिभ्यति नवा त्रस्यन्ति भेकीशिशो-
 रत्रागत्य सुखं वसन्तु तिमयो जातानुकम्पा वयम् ॥ ४७ ॥
 रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
 भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
 इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
 हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥ ४८ ॥
 हंसः प्रयाति शनैर्यदि जातु तस्य
 नैसर्गिकी गतिरियं हि न तत्र चित्रम् ।
 गत्या तया जिगमिषुर्वक एष मूढ-
 श्वेतो दुनोति सकलस्य जनस्य नूनम् ॥ ४९ ॥
 कल्याणं नः किमधिकमितो जीवनार्थं पथस्त्वं
 छित्त्वा वृक्षानहह दहसि आतरङ्गारकार ।
 नन्वेतस्मिन्नशनिपिशुनैरातपैराकुलाना-
 मध्वन्यानामशरणमरुप्रान्तरे कोऽभ्युपायः ॥ ५० ॥
 आतर्ग्राम्यकुविन्द कन्दलयता वस्त्राण्यमूनि त्वया
 गोणीविभ्रमभाजनानि सुबहून्यात्मा किमायास्यते ।
 किंत्वेकं रुचिरं चिरादभिनवं वासस्तथा तन्यतां
 यन्नोज्झन्ति कुचस्थलं क्षणमणि क्षोणीभुजां वल्लभाः ॥ ५१ ॥
 रे लाङ्गलिक निषद्याक्रोडे लोहं पुरा यदद्राक्षीः ।
 स्पर्शविशेषात्तदखिलमजनिष्ट सुहेम नृपयोग्यम् ॥ ५२ ॥
 नौश्च दुर्जनजिह्वा च प्रतिकूलविसर्पिणी ।
 जनप्रतारणायैव दारुणैकेन निर्मिता ॥ ५३ ॥
 दुर्गा नदी शिथिलबन्धविसर्पिणी नौ-
 रभ्युन्नता जलमुचो विषमः समीरः ।

आरूढवान्निजकुटुम्बयुतोऽध्वनीन-

स्तत्कर्णधार कुरु यत्सदृशं कुलस्य ॥ ५४ ॥

वंशः प्रांशुरसौ घुणक्षतमयो जीर्णा वरत्रा इमाः

कीलाः कुण्ठतया विशन्ति न महीमाहन्यमाना अपि ।

आरोहव्यवसायसाहसमिदं शैलूष संत्यज्यतां

दूरे श्रीर्निकटे कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः ॥ ५५ ॥

मौलिः स्वर्णकिरीटकान्तिरुचिरः केयूरभव्यौ भुजौ

तद्भृत्याः किल कञ्चुकिप्रभृतयो देवेति विज्ञाप्यसे ।

इत्थं कल्पनया कुशीलवनृपाहंकारदार्ढ्यं वृथा

नृत्यान्ते भवतो भविष्यति मषीमात्रावशेषं वपुः ॥ ५६ ॥

अमी तिलासैलिक नूनमेतां स्नेहादवस्थां भवतोपनीताः ।

द्वेषोऽभविष्यद्यदमीषु तीव्रस्तदा न जाने किमिवाकरिष्यः ॥ ५७ ॥

वक्रां नैष तनूविवर्तनगतिं गृह्णाति साचिस्मित-

स्मेरैर्दृग्वलनैरमुष्य न मनाक् चेतः परावर्तते ।

हस्ते त्वं मुनिदारकस्य पतिता कल्याणि तन्नीयतां

वेदीमार्जनबर्हिरर्पणवषट्कर्तव्यपाकैर्वयः ॥ ५८ ॥

अमरसिरोवरि ठाणं माणं लहिऊण झय वडाडोव ।

नियवंस मुवरिच्छाया न कया तह कीस धडहडसी ॥ ५९ ॥

आतः काञ्चनलेपगोपितबहिस्ताम्राकृतिः सर्वतो

मा भैषीः कलश स्थिरो भव चिरं देवालयस्योपरि ।

ताम्रत्वं गतमेव काञ्चनमयी कीर्तिः स्थिरा तेऽधुना

नान्तस्तत्त्वविचारणाप्रणयिनो लोका बहिर्बुद्धयः ॥ ६० ॥

न यत्र गुणवत्पात्रमेकमप्यस्ति संनिधौ ।

कस्तत्र भवतः पान्थ कूपेऽम्बुग्रहणादरः ॥ ६१ ॥

तम एव हि जानाति नीतिं नान्यतरो जनः ।

दीपशत्रूदये जाते तलमाश्रित्य तिष्ठति ॥ ६२ ॥

रक्षापात्रगतं खेहं प्रदीपश्रीविवर्धनम् ।

भविष्यति विना तेन भस्मत्वं भवतो गुणाः ॥ ६३ ॥

तिग्मांशोः किरणैरतीव सहितो गाढप्रतापो महा-

नङ्गारैरपि भर्जनं च तलनं तैले कटाहस्थिते ।

हंहो पर्पट सांप्रतं परजनस्यार्थे सहे यत्त्वया

दंष्ट्रान्तःपतितेन गाढरटितं धिग्लज्जितास्तद्वयम् ॥ ६४ ॥

को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण ।

तसं विकृतं मथितं केवलमुद्गिरति यत्त्रेहम् ॥ ६५ ॥

दृढतरगलकनिबन्धः कूपनिपातोऽपि कलश ते धन्यः ।

यज्जीवनदानैस्त्वं तर्षामर्षं नृणां हंसि ॥ ६६ ॥

कुदालेन विदारणं किमपरं कष्टं खरारोहणं

यत्पापिष्ठकुलालपादहननं चक्रभ्रमस्तादृशः ।

दाघो मे दहनस्य पीड्यति तनुं सर्वं सहामो वयं

ग्राम्यस्त्रीकरताडनं विधिपरं पर्यन्तदुःखायते ॥ ६७ ॥

गुणयुक्तोऽप्यधो याति रिक्तकुम्भ इव स्फुटम् ।

पूर्णो गुणविहीनोऽपि जनैः शिरसि धार्यते ॥ ६८ ॥

सद्वृत्तोऽपि सुपूर्णोऽपि विदग्धो रागवानपि ।

गृहीतुं शक्यते केन पार्थिवः कर्णदुर्बलः ॥ ६९ ॥

यत्सद्गुणोऽपि सरलोऽपि तटस्थितोऽपि

वंशोद्धतोऽपि विदधाति नृशंसकर्म ।

वक्रात्मनो बडिशदण्ड तदेतदस्य

जानामि संगतिफलं तव कण्टकस्य ॥ ७० ॥

कम्बाघातैर्वपुषि निहतैरुच्छलच्छोणितौघैः

कारागारैर्निभिडनिगडैर्लङ्घनं चुम्बनं च ।

एवं ज्ञात्वा विरम सुमते मा कुरु त्वं नियोगं

कर्णोपान्ते मलिनवदना लेखिनी पृत्करोति ॥ ७१ ॥

SGDF

Sri Ganga Darshan Foundation

निर्गुणोऽपि वरं वंशो रक्षायै मुनिदण्डवत् ।

सगुणोऽप्यर्धवंशः स्याज्जीवघाताय केवलम् ॥ ७२ ॥

शुद्धवंशजकोदण्डसरलस्त्वमभूः पुरा ।

इदानीं गुणसंयोगात्केयं तु तव वक्रता ॥ ७३ ॥

कोटिद्वयस्य लाभेऽपि नतं सद्द्वंशजं धनुः ।

शरस्त्ववंशजः स्तब्धो लक्ष्याप्तेरपि शङ्कया ॥ ७४ ॥

या पाणिग्रहलालिता गुणवती साध्वी च सलक्षणा

गौरी स्पर्शसुखावहातिसरला तन्वी सुवंशोद्भवा ।

सा केनापि हृता तया विरहितो गन्तुं न शक्तः क्षणं

किं भिक्षो तव कामिनी नहि नहि प्राणप्रिया यष्टिका ॥ ७५ ॥

जगति विदितमेतत्काष्ठमेवासि मन्ये

तदपि हि किल सत्यं यद्वने वर्धितासि ।

नवकुवलयनेत्रापाणिसङ्गोत्सवेऽस्मिन्

मुशल किसलयं ते तत्क्षणाद्यत्र जातम् ॥ ७६ ॥

घनसारो नद्धश्च तथा न वदति तदपि मृदङ्गः ।

करतलहननमुपेत्य यदि प्रणदति तदपि सरङ्गः ॥ ७७ ॥ (?)

अनिल निखिलविश्वं प्राणिति त्वत्प्रयुक्तं

सपदि च विनिमीलत्याकुलं त्वद्वियोगात् ।

वपुरपि परमेशस्योचितं नोचितं ते

सुरभिमसुरभिं वा यत्त्वमङ्गीकरोषि ॥ ७८ ॥

जातिस्तावदुदारभूरुहभवो वर्णः शशाङ्कोज्ज्वलः

सौरभ्यातिशयः स कोऽपि भणितुं यो नैव वाचां पतिः ।

आखादोऽपि मनोहरस्तव सखे कर्पूर किं वर्ण्यते

केयं कुप्रकृतिः स्थिरीभवसि यन्निर्लक्षणाङ्गारतः ॥ ७९ ॥

अपि त्यक्तासि कस्तूरि पामरैः पङ्कशङ्कया ।

अलं खेदेन भूपालाः किं न सन्ति महीतले ॥ ८० ॥

जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो

दूरे पुंसां वपुषि रचना पङ्कशङ्कां करोति ।

यद्यप्येवं सकलसुरभिद्रव्यगर्वापहारी

को जानीते परिमलगुणः कोऽपि कस्तूरिकायाः ॥ ८१ ॥

कस्तूरीति किमङ्गसांपरिमलद्रव्यं किमप्यामरं

पेया किं नहि कीदृशी मृगदृशां शृङ्गारलीलास्पदम् ।

धार्या कुत्र कुचस्थलीषु कुचयोः स्थौल्यं ततो हीयते

क्लिष्टः क्लिश्यति पक्वणैश्च बहुशः कस्तूरिकाविक्रयी ॥ ८२ ॥

कर्पूर रे परिमलस्तव मर्दितस्य

श्रीखण्ड रे परिमलस्तव घर्षितस्य ।

रे काकतुण्ड तव वह्निगतस्य गन्धः

कस्तूरिका स्वयमथाधितगन्धदृष्टा ॥ ८३ ॥

जनिस्थानं सिन्धुः सकलजलजस्यास्पदमहो

सुधालक्ष्मीचन्द्रत्रिदशपतिवैद्यप्रभृतयः ।

अमी सोदर्यास्ते त्रिनयनगले वास वसुधा

तथापि त्वं हालाहल निजगुणान्मुञ्चसि न किम् ॥ ८४ ॥

नद्याश्रयस्थितिरियं तव कालकूट

केनोत्तरोत्तरविशेषपदप्रतिष्ठा ।

...प्राङ्गणस्य हृदये वृषलक्ष्मणोऽथ

कण्ठे पुनर्वससि वाचि ततः खलानाम् ॥ ८५ ॥

कौस्तुभमुरसि मुरारेः शिरसि शशी द्योतते पुरां जयिनः ।

तनुजन्मानौ जलधेर्जग्मतुरियतीं गतिं पश्य ॥ ८६ ॥

तुल्यं भूभृति जन्म तुल्यमुभयोर्मूल्यं च तुल्यं वपु-

स्तुल्यं दार्ढ्यमुदग्रदङ्कदलनं तुल्यं च पाषाणयोः ।

एकस्याखिलवन्दनाय विधिना देवत्वमारोपितं

तद्वारे विहिता परस्य तु पदाघातास्पदं देहली ॥ ८७ ॥

तृषार्तैः सारङ्गैः प्रतिजलधरं भूरि विरुतं
 धनैर्मुक्ता धाराः सपदि पयसस्तान्प्रति मुहुः ।
 खगानां के मेघाः क इह विहगा वा जलमुचा-
 मयाच्यो नार्तानामनुपकरणीयो न महताम् ॥ ८८ ॥
 आतः पञ्जरलावक मा कुरु संतोषमन्यनिधनेन ।
 प्रातस्तथैव धातुर्वामत्वं किं न जानासि ॥ ८९ ॥
 मलोत्सर्गं गजेन्द्रस्य मूर्ध्नि काकः करोति यत् ।
 कुलानुरूपं तत्तस्य यो गजो गज एव सः ॥ ९० ॥
 ग्रासाद्गलितसिक्थस्य करिणः किं गतं भवेत् ।
 पिपीलिकस्तु तेनैव सकुटुम्बोऽपि जीवति ॥ ९१ ॥
 बन्धनस्थो हि मातङ्गः सहस्रभरणक्षमः ।
 अपि स्वच्छन्दचारी श्वा स्रोदरेणापि दुःखितः ॥ ९२ ॥
 ऊर्णो नैष दधाति नैष विषयो दोहस्य वाहस्य वा
 तृप्तिर्नास्य महोदरस्य बहुभिर्घासैः पलालैरपि ।
 हा कष्टं कथमस्य पृष्ठशिखरे गोणी समारोप्यते
 को गृह्णाति कपर्दकैरलमिति ग्राम्यैर्गजो हस्यते ॥ ९३ ॥
 उदस्योच्चैः पुच्छं शिरसि निहितं जीर्णकुटिलं
 यदृच्छादापन्नद्विपपिशितलेशाः कवलिताः ।
 गुहागते शून्ये सुचिरमुषितं जम्बुक सखे
 किमेतस्मिन्कुर्मो यदसि न गतः सिंहसमताम् ॥ ९४ ॥
 यस्यां स केसरियुवा पदमावबन्ध
 गन्धद्विपेन्द्ररुधिरारुणिताङ्गणायाम् ।
 तामद्य पर्वतदरीं धुतधूम्रलोमा
 गोमायुरेष वपुषा मलिनीकरोति ॥ ९५ ॥
 निष्कन्दामरविन्दिनीं स्थपुटितोद्देशां कसेरुस्थलीं
 जम्बालाविलमम्बु कर्तुमितरान्मूते वराही सुतान् ।

दंष्ट्रायां चतुरर्णवोर्मिपटलैराप्लावितायामिदं (यं)

यस्या एव शिशोः स्थिता विपदि भूः सा पोत्रिणी पुत्रिणी ॥९६॥

शतपदी शितपादशतैः क्षमा यदि न गोष्पदमप्यतिवर्तितुम् ।

किमियता द्विपदस्य हनूमतो जलनिधेः क्रमणे विवदामहे ॥९७॥

वृक्षान्दोलनमद्य ते क नु गतं घर्मस्थयूथस्य वा

यूकान्वेषणरोषसौख्यबहुलाश्चेष्टा मुखोत्थाः क ताः ।

कारण्ये फलपूर्णगल्लकुहरस्यान्येषु ता भीषिका

भीतः संप्रति कौशिकाद्गलचलव्यालः कोपे नृत्यसि ॥ ९८ ॥

स्पर्धन्तां सुखमेव कुञ्जरतया दिक्कुञ्जरैः कुञ्जरा

ग्राम्या वा वनवासिनो मदजलप्रस्विन्नगण्डस्थलाः ।

आः कालस्य कुतूहलं शृणु सखे प्राचीनपालीमला-

स्वादस्निग्धकपोलपालिरधमः कोलोऽपि संस्पर्धते ॥ ९९ ॥

आकर्ण्य गर्जितरवं घनगर्जितुल्यं

सिंहस्य यान्ति वनमन्यदिभा भयार्ताः ।

तत्रैव पौरुषनिधिः स्वकुलेन सार्धं

दर्पोद्धुरो वसति वीतभयो वराहः ॥ १०० ॥

इति श्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीगौतमगणधरोपमगुणसमाजसकलभट्टारकवृन्द-

वृन्दारकवृन्दारकपरमगुरुभट्टारकश्री १९श्रीविजयानन्दसूरिशिष्यभुजि-

ष्यपण्डितहंसविजयगणिसमुचित्तायामन्योक्तिमुक्तावल्यां मरु-

स्थलान्योक्तिसंकीर्णान्योक्तिनिरूपकोऽष्टमः परिच्छेदः ॥

अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ।

आसीज्जगद्गुरुरिति प्रथितावदातः

श्रीहीरहीरविजयाह्वयसूरिशक्रः ।

योऽकब्बरक्षितिपतेर्हृदयालवाले-

ऽध्यारोपयत्स्वल् कृपाव्रततिं त्रतीशः ॥ १ ॥

तत्पट्टमन्दरमहीधरनिर्झरद्रुः

सूरीश्वरो विजयसेनगुरुर्बभूव ।

निःशेषवाङ्मयमहोदधिपारदृश्वा

सौभाग्यभाग्यपरभागनिवाससद्म ॥ २ ॥

तत्पट्टदेवकुञ्जरकुम्भस्थलभूषणैकमघवानः ।

समभूवन्क्षितितिलकाः सूरिश्रीविजयतिलकाह्वाः ॥ ३ ॥

तत्पट्टाम्बरभासनभासुरतरतरुणतरणिसंकाशाः ।

अभवञ्जगदानन्दा विजयानन्दाः परमगुरवः ॥ ४ ॥

निखिलजिनराजभाषितप्रवचनकलधौतकषपट्टाः ।

प्रशमसुधारससिन्धौ शारदवरविशदहिमकिरणाः ॥ ५ ॥

श्रीमत्सुधर्मजम्बूवज्रादिकहीरविजयसूरीशान् ।

ये स्मारयन्ति सुतरां गुणैः स्वकीयैः क्षितिख्यातैः ॥ ६ ॥

त्रिभिर्विशेषकम् ।

तेषां पट्टे संप्रति विजयन्ते विजयराजसूरीशाः ।

प्रतिबोधितभव्यजनाः सुधामुधाकारिवरवचसः ॥ ७ ॥

लब्ध्या श्रीगुरुगौतमगणधरतुल्यप्रधानमहिमानः ।

धिषणानिर्जितधिषणा जनताहितकल्पतरुकल्पाः ॥ ८ ॥

युग्मम् ।

तेषां सूरिवराणां राज्ये प्राज्ये च विजयिनि प्रष्टे ।

श्रीविजयमानसूरियुवराजविराजमानविजयगणे ॥ ९ ॥

गीतिरियम् ।

किञ्च ।

श्रीविजयानन्दगुरोः क्रमकजहंसेन हंसविजयेन ।

अन्योक्तिमञ्जुमुक्तावली विद्वद्धा परममोदात् ॥ १० ॥

सुललितसुवृत्तमुक्ता मुक्ताफलमालिकेव गुणयुक्ता ।

चतुरचयचारुचञ्चलुचिचित्रविचित्रचित्रकरी ॥ ११ ॥

युग्मम् ।

एषा कृता विक्रमराजराज्यात्तर्कत्रिशैलेन्दु १७३६मिते च वर्षे ।

मुक्तावली बाहुलदिव्यमासि दीपालिकापर्वदिने प्रशस्ते ॥ १२ ॥

श्रीमत्स्वकीयगुरुपादकजप्रसादा-
 न्मुक्तावली विरचिता कविकर्णदीप्रा ।
 अस्तोकलोकपरिभूषितभूमिभागे
 माणिक्यहेममणिमौक्तिकतोरणौघे ॥ १३ ॥
 चञ्चच्चिरत्नवररत्नसुवर्णरूप्य-
 वैडूर्यवज्ररुचिरे कमलानिवासे ।
 उच्चैर्मनोज्ञजिनमन्दिरराजमाने
 श्रीस्तम्भतीर्थवरमन्दिर इभ्यपूर्णे ॥ १४ ॥

युग्मम् ।

श्रीविजयानन्दगुरुपट्टक्षोणीधरेन्द्रसिंहस्य ।
 श्रीविजयराजसूरेरादेशाद्विरचिता चेयम् ॥ १५ ॥
 संविदितलक्षणादिकनिखिलग्रन्थार्थसार्थपरमार्थैः ।
 श्रीदानविजयवाचकप्रष्टैः प्रविलोकिता चैषा ॥ १६ ॥
 प्राचीनामलवृत्तमौक्तिकगणैश्चेतश्चमत्कारिभि-
 रेषानुक्रमलेखनेन मयका मुक्तावली निर्मिता ।
 स्वस्थानं विनिवेशयन्गुरुलघुस्थित्या गुणे मौक्तिका-
 न्मालाकार इति प्रसिद्धिमतुलं नाम्नोति किं मानवः ॥ १७ ॥
 गुरुगुरुचरणसुवाङ्मयभक्तिप्राग्भारभरितनिजमनसा ।
 प्रथमादर्शं लिखिता प्रतिरेषा धीरविजयेन ॥ १८ ॥
 यत्किंचिदस्यां लिखितं विहीनं मयाहि मात्रादिभिरर्थतो वा ।
 विशारदैस्तत्परिशोधनीयं ग्रन्थान्तराणि प्रविलोक्य सम्यक् ॥ १९ ॥
 कियदेतिकया च मया सज्जनजनरञ्जनाय जनितेयम् ।
 सा दद्यादभ्युदयं सर्वाभीष्टार्थसिद्धिं च ॥ २० ॥
 यावन्नन्दति मेरुर्यावज्जिनराजशासनं जगति ।
 तावन्नन्दतु निपुणैरनवरतं वाच्यमानासौ ॥ २१ ॥
 इत्यन्योक्तिमुक्तावलीग्रन्थप्रशस्तिः ।

समाप्ता चेयमन्योक्तिमुक्तावली ।

SGDF

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १५९ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६० ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६१ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६२ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६३ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६४ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६५ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६६ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६७ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

॥ १६८ ॥ अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

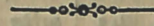
। अथ विष्णुसहस्रनाम

। अथ विष्णुसहस्रनाम

SGDF

श्रीः ।

अन्योक्तिमुक्तावलीश्लोकानां वर्णक्रमेणानुक्रमणिका ।



| पृ. श्लो. | पृ. श्लो. |
|---------------------------------|---------------------------------|
| अकस्मादुन्मत्तः प्रहरति ३६। ८८ | अनुसरति करिकपोलं ८१। ४४ |
| अखर्वखर्वगर्तासु २४। १९५ | अनुसर सरस्तीरं ७४। १८० |
| अगुरुरिति वदति लोको १२२। ११७ | अन्तः किञ्चित् किञ्चित् ९५। २३ |
| अग्निदाहे न मे दुःखं ९२। ५५ | अन्तः कुटिलतां विभ्रत् ७७। ११ |
| अङ्गानि मे दहतु कान्त १४६। २५ | अन्तः केचन केचनापि ११५। ६६ |
| अच्छ उक्ता सरस फलं १३५। २१२ | अन्तः प्रतप्तमरुसैकत ११८। ८४ |
| अणुरायरयनिभरियं १४४। २४ | अन्तः समुत्थविरहानल ३२। ५९ |
| अतिपटलैरनुयातां १०६। १११ | अन्तश्छिद्राणि भूयांसि १२४। १३५ |
| अतिविततगगनसरणि ५। ४५ | अन्तर्बलान्यहममुष्य २६। १७ |
| अत्रस्थः सखि लक्ष ६८। १२८ | अन्तर्वहसि कषायं १२२। ११६ |
| अथानुक्रमद्वाराणि ३। २५ | अन्नेहिं वि कूवजलेहिं २१। १७४ |
| अथाभिव्यक्तये ब्रूमः ९३। ८ | अन्नो को वि सहायो १०१। ६७ |
| अथाष्टमपरिच्छेदे १४२। ८ | अन्या सा सरसी ५६। ३९ |
| अथोच्यते जलधर २५। ७ | अन्यासु तावदुपमर्द ७९। ३६ |
| अदृष्टिव्यापारं गतवति ७८। २४ | अन्यास्ता मलयाद्रि ३९। १४ |
| अद्यापि न स्फुरति २८। २७ | अन्ये ते जलदायिनो ७४। १७७ |
| अद्यापि स्तनशैल ९। ७८ | अन्ये ते सुमनोलिहः ८३। ६७ |
| अद्रौ जीर्णदरीषु ४५। ५५ | अन्येऽपि सन्ति बत ७४। १७६ |
| अधः करोषि यद्रत्नं ९५। १८ | अन्योऽपि चन्दनतरो २०। १६५ |
| अध्यासीनाश्ववारै १४०। १२४८ | अन्वेषयति मदान्ध २६। १३ |
| अध्वन्यध्वनि भूरुहः १२८। १६७ | अपगततरजोविकारा १७। १४१ |
| अनन्यसाधारणसौरभा- ८२। ५६ | अपरतरुनिकरमुक्तं १३६। २२१ |
| अनया रत्नसमृद्ध्या ९५। १९ | अपसर मधुकर दूरं ८२। ५३ |
| अनसि सीदति सैकत- ४४। ४८ | अपसरणमेव शरणम् ५५। २८ |
| अनस्तमितसारस्य ८८। २५ | अपि त्यक्तासि कस्तूरि १५०। ८० |
| अनिल निखिलविश्वं १५०। ७८ | अपि दलन्मुकुले वकुले ८२। ५९ |
| अनिशं मतङ्गजानां २९। ३६ | अब्जं त्वज्जमथाब्जभूः ९४। १३ |
| अनुचितफलाभिलाषी ६८। १३२ | अब्धिना सह मित्रत्वे ९५। २२ |
| अनुमतिसरसं विमुच्य चूतं ६५। ११३ | अब्धेरर्णः स्थगित ९७। ३६ |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|---------------------------|-----------|-------------------------|-----------|
| अभिनवनलिनीविनोद | ७९। ३२ | असकृदसकृन्नष्टां | ३८। ९ |
| अभ्युन्नतेऽपि जलदे | १०५। १०५ | असद्वृत्तो नायं नच | १४६। ४५ |
| अमरसिरोवरिठाणं | १४८। ५९ | अस्ति जलं जलराशौ | ९५। २४ |
| अमी तिलास्तैलिक नून | १४८। ५७ | अस्ति यद्यपि सर्वत्र | ५५। ३० |
| अभीभिः संसिक्ते स्तव | २१। १७१ | अस्तं गतवति सवितरि | १२५। १४४ |
| अमुद्रोऽपि वरं कूपः | १०४। ९० | अस्तं गते दिवानाथे | १२५। १४३ |
| अमुष्मिन्नुद्याने | ६०। ७२ | अस्तं गते निजरिपावपि | ९९। ५० |
| अमुं कालक्षेपं त्यज | २३। १८९ | अस्तं गतोऽयमरविन्द | ७०। १४६ |
| अम्भोजिनीवननिवास | ५४। २६ | अस्मान्विचित्रवपुषः | ७५। १८७ |
| अम्भोधरेव जाताः | ७७। १७ | अस्मिन्नम्भोदवृन्दध्वनि | २९। ४१ |
| अयमवसरः सरस्ते | १०३। ८४ | अस्याननस्य भवतः | ४३। ४२ |
| अयि कुरङ्ग कुरङ्गम | ३८। ७ | अस्यां सखे बधिरलोक | ६३। ९६ |
| अयि कुरङ्ग तपोवन | ३९। १५ | अहलो पत्तावरिओ | १३०। १८० |
| अयि जलद यदि न | २२। १७७ | अहह चण्डसमीरण | १०७। ११९ |
| अयि भामिनि गर्भादलं | २६। १४ | अहिरहिरिति संभ्रमपद | ४६। ६४ |
| अये कीरश्रेणीपरिवृढ | ६०। ६७ | अहो नक्षत्रराजस्य | ८। ६२ |
| अये ताल व्रीडां व्रज गुरु | १२८। १६६ | आः कष्टं वनवासिसाम्य | ४०। २१ |
| अये नीलग्रीव क | ६९। १४० | आः कष्टं सुविवेकशून्य | ९१। ५२ |
| अये मुक्तारत्न प्रचल | ८२। ५३ | आकर्ण्य गर्जितरवं | १५३। १०० |
| अये वापी हंसा निजवसति | | आकारः कमनीयता | ५७। ४४ |
| अये वारां राशे कुलिश | ९८। ४६ | आकारो न मनोहरः | ६७। १२६ |
| अये विधातस्तव कीदृशी | ८। ७२ | आकृष्टी उण नारं | १००। ६० |
| अये वेला हेलाकुलित | २०। १६६ | आकृष्यन्ते करिणः | ३१। ५२ |
| अयं नीलस्निग्धो य इह | ८४। ७१ | आगत्य संप्रति वियोग | ५। ४७ |
| अयं पद्मासनासीनः | ७१। १५४ | आघ्रातं परिलीढमुग्र | ८९। ३९ |
| अयं बारामेको निलय इति | ९८। ४३ | आचक्ष्महे वत किमद्य | ८७। १९ |
| अर्काः किं फलसंचयेन | १३६। २२५ | आजन्मस्थितयो महीरुह | १०२। ७७ |
| अर्काः केचन केचिदक्ष | १२१। ११२ | आतपे धृतिमता सह वध्वा | ७१। १५५ |
| अलियुवा विललास | ८२। ५८ | आदाय वारि परितः | ९६। २९ |
| अलिरयं नलिनीवन | ८३। ६१ | आदौ यादोनिवासोक्तिः | ९३। ९ |
| अल्पीयसैव पयसा | २४। १९६ | आधोरणाङ्कुशभयात् | ३१। ५८ |
| अल्पीयःस्खलनेन यत्र | ४०। १८ | आपुष्पप्रसरांमनोहरतया | १२८। १६२ |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|-----------------------------|-----------|-------------------------------|-----------|
| आपूर्येत स्फुरच्छवि | ७५। १८३ | उचितं नाम नारिङ्गयां | १३९। २४१ |
| आबद्धकृत्रिमसटा | ४६। ५९ | उच्चैरुच्चर रुचिरं | ७६। ९ |
| आमरणादपि विरुतं | ६६। ११७ | उच्चैरेकतरुः फलं च | ६०। ६८ |
| आमूलाग्रनिबद्धकण्ट | १३४। २०९ | उच्चैः स्थानकृतोदयैः | १११। ९४ |
| आमोदीनि सुमेदुराणि च | १३६। २२४ | उड्डुगणपरिवारो | ९। ७६ |
| आमोदैर्मरुतो मृगाः | ११०। ३२ | उत्कटकण्टककोटी | १२७। १५६ |
| आमोदैस्तैर्दिशि दिशि | ११६। ७३ | उत्कूजति श्वसति मुह्यति | ७१। १५३ |
| आयाति याति पुनरेति | ८४। ७४ | उत्कूजन्तु वटे वटे | ६४। १०२ |
| आयाते दयिते मरुस्थल | ४२। ३५ | उत्तुङ्गैस्तरुभिः किमेभि | १४०। २५० |
| आयान्ति त्वरितं गभीरसरितां | १११। ४० | उत्तंसकौतुकरसेन | ११९। ९८ |
| आयासं रुद्धं पल्लवेहिं | १३०। १७५ | उत्तसेषु ननर्त 'न क्षितिभुजां | ९०। ४१ |
| आरामाभरणस्य पल्लव | १२२। ११९ | उत्पत्तिः पयसां निधे | १०। ८५ |
| आरामोऽयमनर्गलेन | ३५। ७९ | उत्पादिता खलु स्वयं | १६। १३० |
| आलस्यं स्थिरतामुपैति | १६। १३४ | उत्फुल्लरम्यसहकार | ११९। ९४ |
| आलोकवन्तः सन्त्येव | ७। ६० | उदयमयते दिङ्मालिन्यं | ५। ४६ |
| आश्वास्य पर्वतकुलं | २२। १७९ | उदयोच्चैः पुच्छं | १५२। ९४ |
| आसन्ननाशं सलिलं तटाके | १०१। ७५ | उदितवति द्विजराजे | १२४। १३४ |
| आसन्यावन्ति याञ्चासु | २१। १७५ | उदेति सविता ताम्रः | ५। ४० |
| आहारे शुचिताखरे | ६२। ८५ | उद्दाम्बुदनादनृत्य | १०२। ८१ |
| इक्कस्स मलयगिरिणो | ८८। २२ | उद्यन्त्वमूनि सुबहूनि | ६। ४९ |
| इक्कुच्चिय उदयगिरी | ८७। १८ | उद्यानपालकलशाम्बु | ११८। ८६ |
| इक्केण कोत्थुहेण | ९१। ५० | उपरि नाभिसरःपरिताडित | १४४। २६ |
| इतः स्वपिति केशवः | ९८। ४४ | उभौ श्वेतौ पक्षौ | ६२। ८२ |
| इदमकटुकपाटं | ६०। ६९ | उषितः कोकिलयापि | ६६। ११८ |
| इन्दुः प्रयास्यति विनङ्कयति | ७८। २३ | ऊढा येन महाधुरा | ४५। ५४ |
| इन्दुर्यद्युदयाद्रिमूर्ध्नि | ९। ७७ | ऊर्णा नैष दधाति | १५२। ९३ |
| इयं पल्ली भिल्लै | ६१। ७३ | एक एव खगो मानी | ७२। १५९ |
| इलातलभराक्रान्त | ४७। ६८ | एकस्मिन्दिवसे मया | ८९। ३८ |
| इह किं कुरङ्गशावक | ३८। ४ | एकस्य तस्य मन्ये | १७। १३८ |
| इह सरसि सहर्षं | ८३। ६३ | एकाकिनि वनवासिनि | २७। २५ |
| इहानेके सत्यं वृषमहिष | ३६। ९४ | एकेनार्के प्रकटितरुषा | ७१। १५२ |
| ईश्वरान्योक्तयस्तद्वत् | ४। ३३ | | |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|---------------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| एके भेजुर्यतिकरगताः | १४०। २५३ | कति पल्लविता न पुष्पि- | १२०। ९९ |
| एकोऽहमसहायोऽहं | २६। ११ | कथय किमपि दृष्टं | ७०। १४५ |
| एणः क्रीडति शूकरश्च | २७। २२ | कथयत इव नेत्रे कर्णमूलं | १४६। २० |
| एणश्रेणिः शशकपरि- | ११०। २९ | कनकभूषणसंग्रहणोचितो | ८९। ३६ |
| एणायाः पशवः किरात | ११८। ८७ | कन्दे सुन्दरता दले सरलता | १२१। १०७ |
| एतदत्र पथिकैकजीवितं | २२। १८३ | कम्पन्ते गिरयः पुरंदर | २४। १९४ |
| एतस्माज्जलधेर्जलस्य | ९६। ३४ | कम्बाघातैर्वपुषि निहतै | १७९। ७१ |
| एतस्मादमृतं सुरैः | ९७। ३८ | कर्णारुनुदमन्तरेण | ६६। ११९ |
| एतस्मिन्मरुमण्डले | १०३। ८५ | कर्णे चामरचारुकम्बु | ३१। ५१ |
| एतस्मिन्मलयाचले | ६९। १३७ | कर्णेजपा अपि सदा | ३। १९ |
| एतस्मिन्वनमार्गभूपरि | १२०। १०१ | कर्तव्यो हृदि वर्तते | २२। १८० |
| एतस्मिन्सरसि प्रसन्न | ४८। ८६ | कर्पूरधूलिरचितालवाल | १३८। १३६ |
| एतानि बालधवल | ४५। ५७ | कर्पूर रे परिमलस्तव | १५१। ८३ |
| एतान्यहानि किल चातक | १९। १५८ | करटिकटे भ्रश्यद्दाम | ३४। ७८ |
| एतावत्सरसि सरोरुहस्य | ५। ४२ | करभ किमिदं दीर्घश्वासै | ४३। ४४ |
| एतासु केतकिलतासु | १२७। १५४ | करभदयिते यत्तत्पीतं | ४३। ४३ |
| एते कूर्चकचाः सकङ्कण | १४४। २९ | करभदयिते योऽसौ | ४१। ३० |
| एते च गुणाः पङ्कज | १२४। १३६ | करान्प्रसार्य सूर्येण | ५। ३८ |
| एतेषु हा तरुणमरुता | २२। १८१ | करिकलभ विमुञ्च | ३५। ८५ |
| एतैर्दक्षिणगन्धवाह | ११६। ६९ | कलकण्ठ यथा शोभा | ६३। ८९ |
| एनाममन्दमकरन्द | ८३। ६४ | कलयति किं सदा फल | ११०। २५ |
| एष वकः सहसैव | ६१। ७५ | कलयतु हंस विलास | ६१। ७६ |
| ओंकारो मदनद्विजस्य | ११। ९६ | कल्पद्रुमोऽपि कालेन | २४। १९८ |
| ओंनमः शाश्वतानन्द | १। १ | कल्याणं नः किमधिक | १४७। ५० |
| और्वस्यावरणं गिरेश्च | १००। ५७ | कल्लोलेवेल्लितदृषत् | ९८। ४९ |
| कः कः कुत्र न घुर्धुरायित | २७। २३ | कल्लोलैः स्थगयन्मुखानि | ९७। ४१ |
| कज भज विकासमभितः | १२३। १२८ | कवलितमिह नालं | ७१। १४९ |
| कण्टारिकाया अन्योक्तिः | १०९। २० | कस्तूरीति किमङ्ग | १५१। ८२ |
| कण्टिल्लो सकलाओ | १३५। २११ | कस्त्वं भोः कथयामि | १३५। २१३ |
| कति कति न मदो | ३७। ३ | कस्त्वं लोहितलोचनास्य | ६१। ८१ |
| कतिपयदिवसस्थायी | १०१। ७२ | काकतुण्डोक्तिरपरा | १०८। ११ |
| | | काकैः सह विवृद्धस्य | ६२। ८६ |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|---------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| काचिद्दालकवन्महीतल | १६।१३२ | किंशुकान्योक्तयस्तद्वत् | १७९। १६ |
| काचो मणिर्मणिः काचो | ८९। ३१ | किंशुके किंशुकः कुर्यात् | ५९। ६४ |
| कान्ताकेलिं कलयतु | ११५। ६५ | किंशुके किं शुकः कुर्यात् | १३३। २०२ |
| कान्तोऽसि निलयमधुरोऽसि | १३०। १८१ | कीटगृहं कुटिलोऽन्तः | ७६। १० |
| कामं भवन्तु मधुलम्पट | १२४। १३७ | कुक्कुटान्योक्तयो ज्ञेया | ५४। २४ |
| कामं श्यामतनुस्तथा | १०६। १०७ | कुहालेन विदारणं | १४९। ६७ |
| कायः कण्टकभूषितो न च | १३१। १८७ | कुमुदशवलैः फुल्लाम्भोजैः | ४१। २८ |
| कारणवसेण सुन्दरि | ५९। ५८ | कुरु गम्भीराशयतां | १०१। ७४ |
| कारुण्यपुण्यसत्सद्य | १०८। २ | कुर्वन्तु नाम जनतोपकृतिं | १२९। १६९ |
| कालातिक्रमणं कुरुष्व | २३। १९१ | कुर्वन्षट्पदमण्डलस्य | ११०। ३३ |
| किमत्र हे चातक दीर्घकण्ठं | ७३। १६७ | कुसुमं कोशातक्या विक- | १२३। १२५ |
| किमसि विमनाः किं वो- | १४३। १५ | कुसुमं पुनरबहुफलं | ११०। २६ |
| किमेतदविशङ्कितः | ३९। १७ | कुसुमस्तवकैर्नम्राः | १२६। १४९ |
| किं कीर कोकिल मयूर | ६७। १२५ | क्षप्रभवानां परमुचि | १०४। ९१ |
| किं केकीव शिखण्डि | ६७। १२७ | क्षूपे पानमधोमुखं | ७३। १७२ |
| किं चन्द्रेण महोदधे | ९६। ३२ | क्षूष्माण्डीफलवत्फलं | १२०। १०४ |
| किं जातैर्बहुभिः करोति | ३९। १६ | कृतकृत्यमन्यः स्यात् | १७। १४२ |
| किं जातोऽसि चतुष्पथे | ११०। ३१ | कृत्वापि कोशपानं | ७९। २८ |
| किं ते नम्रतया किमुन्नत | ११४। ६० | कृष्णाय प्रतिपादयन् | ९९। ५२ |
| किं तेन संभृतवतापि | १०२। ८३ | कृष्णं वपुर्वहतु चुम्बतु | ६७। १२४ |
| किं दूरेण पयोधरा | ७०। १४२ | केका कर्णाभृतं ते | ६९। १३८ |
| किं नाम दर्दुर | ४७। ७३ | के के तमालफल साल | ११५। ६४ |
| किं नाम दुष्कृतमिदं | ७३। १७४ | केचित्कण्टकिनः कटुल | ११४। ५६ |
| किं पुष्पैः किं फलैस्तस्य | १३५। २१६ | केचित्पल्लवलीलया | १२२। ११३ |
| किं ब्रूमो जलधेः श्रियं | १६। ३३ | केचिल्लोचनहारिणः | ११५। ६७ |
| किं मालतीकुसुम ताम्यति | १२५। १४५ | केतकीकुसुमं भृङ्गः | ७९। ३५ |
| किं वाच्यो महिमा | ९८। ४७ | केतकीकुसुमं भृङ्गः | १२६। १५१ |
| किं वानया पिशुनया | ३। २० | केनासीनः सुखमकरुणं | ९१। ४६ |
| किं व्यक्तीकुरुषे सरोज | १४३। १९ | केनापि चम्पकतरो बत | ११८। ८५ |
| किं शुक किंशुकमुख | १३४। २०५ | केलिं कुरुष्व परिमुद्ग्व | ३२। ६१ |
| किंशुकाद्गच्छ मातिष्ठ | ५९। ६३ | कैवर्तकैर्कशकर | ४७। ७२ |
| किंशुकाद्गच्छ मातिष्ठ | १३३। २०१ | | |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|------------------------------|-----------|-----------------------------|-----------|
| कोकिलकलप्रलापैः | ६३ । ९७ | गतं तद्गाम्भीर्यं तटमपि | ५७ । ४३ |
| कोटिद्वयस्य लाभेऽपि | १५० । ७४ | गन्धाढ्यासौ जगति | ८४ । ७३ |
| कोटिं जीव पिबामृतं | ६८ । १२९ | गन्धाढ्यां नवमालतीं | ८४ । ७२ |
| कोपं चम्पक मुञ्च | ११७ । ७९ | गम्भीरस्य महाशयस्य | ९९ । ५४ |
| कोऽयं भ्रान्तिप्रकार | १०७ । ११७ | गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं | २९ । ४० |
| कोलः केलिमलंकरोतु | २८ । २८ | गयगन्धं वलियरसं | ८५ । ८० |
| कोशं विकासय कुशेशय | १२३ । १२९ | गरीयान्सौरभ्ये रसपरि | १२७ । १५७ |
| को हि तुलामधिरोहति | १४९ । ६५ | गर्ज त्वं यदि गर्जसि | १८ । १४९ |
| कौपे पयसि लघीयसि | ३५ । ८१ | गर्जितवधिरिकृतककुभा | ७२ । १६१ |
| कौपे वारि विलोक्य | ३५ । ८२ | गले पाशस्तीव्रश्वरण- | ३५ । ८० |
| कौस्तुभमुरसि | १५१ । ८६ | गाढग्रन्थिविसंस्थुलोऽपि | १३३ । १९९ |
| कंसारिचरणोद्धूत | ५५ । २८ | गाता कोकिल एव | ११८ । ८८ |
| कुद्रोलकनखप्रपात | ५७ । ४७ | गात्रं ते मलिनं | ६६ । १२० |
| क्रौञ्चः क्रीडतु कूर्दतां | १०३ । ८९ | गुणयुक्तोऽप्यधो याति | १४९ । ६८ |
| क्वचिज्ज्ञानीनादः | ६४ । १०१ | गुणानामेव दौरात्म्यात् | ४४ । ४६ |
| क्षणदृष्टनष्टतडितो | १७ । १४० | गुणिनं गुणयति गुणवान् | ६३ । ९४ |
| क्षणादसारं सारं वा | १०६ । १०९ | गुणिनां गुणमालोक्य | १५ । ११९ |
| क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभ | २१ । १७० | गुरुओवि न सेविज्जइ | १३५ । २१४ |
| क्षीणः क्षीणः समीपत्वं | ८ । ६७ | गुरुर्नायं भारः | ४४ । ५१ |
| क्षीणश्चन्द्रो विशति | १० । ८३ | गुरुशकटधुरंधरस्तृणाशी | ४४ । ४७ |
| क्षुत्क्षामोऽपि जरान्वितोऽपि | २९ । ३३ | गौरां चम्पककलिकां | ७९ । २७ |
| क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः | २० । १६४ | ग्रामाणामुपशल्यसीमनि | २९ । ४२ |
| खगात्पञ्चाक्षतिर्यञ्चः | ४ । २७ | ग्रावाणो मणयो | ९७ । ३७ |
| खणिओसि केण इत्थं | १०० । ६४ | ग्रासाद्गलितसिक्थस्य | १५२ । ९१ |
| खद्योतो द्योतते | ४ । ३७ | घण्टाखनो नुदतु | २७ । १८ |
| खनन्नाखुविलं सिंहः | २९ । ४८ | घनसन्तमसमलीमस | ७८ । २५ |
| खलजणसहसंगेणं | १०१ । ६९ | घनसारो नद्धश्च तथा | १५० । ७७ |
| खलसङ्गे परचित्ते | १३७ । २३१ | घासग्रासं गृहाण त्यज | ३४ । ७६ |
| ख्याता वयं समधुपा | १२५ । १४० | चकोरोक्तिः सारसोक्तिः | ५४ । २५ |
| गतमतिजवाद्भ्रान्तं सर्वं | १४३ । १४ | चक्रः पप्रच्छ पान्थं | ७१ । १५६ |
| गतास्ते विस्तीर्णस्तव | १११ । ३५ | चक्षुःश्रुतिवाग्घरणं | १७ । १३६ |
| गते तस्मिन्भानौ | ६ । ५२ | चञ्चलत्वकलङ्कं ये | १४ । ११५ |

पृ. श्लो.

पृ. श्लो.

| | |
|----------------------------|---------|
| चन्दने विषधरान्सहामहे | १३३।१९७ |
| चपलतरतरङ्गैर्दूर | ९६।३० |
| चर करभ यथेष्टं | ४२।३६ |
| चातक धूमसमूहं | ७२।१५८ |
| चातकस्य मुखचञ्चुसंपुटे | ७२।१६३ |
| चातकः खानुमानेन | १८।१४६ |
| चिञ्चिण्युक्तिः करीरोक्तिः | १०९।१७ |
| चित्रं न तद्यदयमम्बुधि | १०४।९३ |
| चिदानन्दद्वुकन्दाय | २।१० |
| चिन्तयति न चूतलतां | ८५।७६ |
| चिन्तामिमां वहसि किं | ३३।६० |
| चिन्तां मुञ्च गृहाण | ४२।३७ |
| चीयते न च न चापचीयते | ५९।५६ |
| चुलुकयसि चन्द्रदीधिति | ७५।१८२ |
| छाया कापि न पल्लवेषु | १३९।२४३ |
| छायान्वितोऽपि सरलोऽपि | १३२।१९० |
| छाया फलानि मुकुलानि | १२०।१०३ |
| छायामन्यस्य कुर्वन्ति | १०९।२२ |
| छायामायासनाशे प्रगुण | १२१।१०९ |
| छायां प्रकुर्वन्ति नमन्ति | १०२।७८ |
| छायावन्तो गतव्यालाः | ११२।४४ |
| छायासुप्तमृगः शकुन्त | १११।३४ |
| छित्त्वा पाशमपास्य | ३८।७ |
| छिन्त्से ब्रह्मशिरो यदि | १३।१०५ |
| जइ फलभरेण नमिओ | १३२।१९५ |
| जइ मण्डलेन भसिउं | ३७।९९ |
| जगति विदितमेतत् | १५०।७६ |
| जनिस्थानं सिन्धुः | १५१।८४ |
| जन्मन्तरं सिवसिओ | १३२।१९६ |
| जन्मस्थानमपां निधिः | ७७।१३ |
| जन्मस्थानं न खलु | १५१।८१ |
| जम्भारिरेव जानाति | १४३।१८ |

| | |
|------------------------------|---------|
| जयश्रियं यच्छतु पार्श्वदेवः | १।३ |
| जयश्रीसौख्यसन्तान | १४१।१ |
| जर्जरतृणाग्रमदहन् | ७८।२२ |
| जलधर एव महत्सु | १८।१५० |
| जलधर जलभरपटलै | १७।१४३ |
| जलधर तदयुक्तं किल | १८।१४८ |
| जलधरधवोऽष्टाभिः | १९।१६० |
| जले कजं तिष्ठति | १८।१५३ |
| जवासोक्तिर्युवस्योक्तिः | १०९।१८ |
| जह गम्भीरो जह रयण | १०१।६८ |
| जह जह सरिया उज्ज्वल | १००।६५ |
| जातिस्तस्य न मानसे | ६१।८० |
| जातिस्तावदुदारभूरुह | १५०।७९ |
| जातो मार्गपरिश्रमव्यपगमः | १२१।१०८ |
| जातो मार्गे सुरभिकुसुमः | ११२।४६ |
| जीमूतोन्मुक्तमुक्ताफलकण | १३९।२४६ |
| जीर्णोऽपि क्रमहीनोऽपि | २९।३७ |
| जीहे जाणयमानं जिमि | १४५।३७ |
| जुत्तं किवणेन | १७।१३७ |
| जो करिवराण कुम्भे | ३०।५१ |
| जो जाणइ जस्स गुणे | ६८।१३३ |
| ज्ञाने पदार्थाः प्रतिबिम्ब्य | ४८।१ |
| दुण्डुण्णन्तो मरीहिसि | ८५।७८ |
| तइ पच्चिय परचित्ता | १३४।२०६ |
| तटमनुतटं पद्मे पद्मे | ५८।५ |
| ततो विन्ध्याचलान्योक्तिः | ८६।१० |
| तत्तेजस्तरणे निदाघ | १३३।१७७ |
| तत्रादिमपरिच्छेदे | ४।३० |
| तत्रान्योक्तिषु विज्ञेया | १४२।९ |
| तथा दावानलान्योक्तिः | ९४।११ |
| तम एव हि जानाति | १४८।३२ |
| तरौ तीरोद्भूते | ५६।३५ |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|--------------------------|------|-------|---------------------------|------|-------|
| तव पार्श्वेश पादाब्ज | ८५। | २ | त्वं चेत्संचरसे वृषेण | १३। | १०३ |
| तवैतद्वाचि माधुर्यं | ६३। | ९८ | त्वं सेवितः किल फलाय | ८८। | २१ |
| तस्यैवाभ्युदयो | ४। | ३५ | त्वमेव चातकाधार | २२। | १७६ |
| ताटङ्कं किमु पद्मराग | ७। | ५७ | त्वयि वर्षति पर्जन्ये | २२। | १७८ |
| तातः क्षीरनिधिः | ७७। | १४ | दकर द्रुवने भूरि | ५१। | १० |
| तापापहे सहृदये रुचिरे | १३। | १०६ | दक्षमानममेधावि | ५२। | १६ |
| तापो नापगतस्तृषा | ३२। | ६४ | दक्षलक्षप्रियतमा | १०९। | १८ |
| तावद्गर्जति मण्डकः | ४८। | ७८ | दक्षलक्षक्षमः | ४९। | ३ |
| तावद्गर्जन्ति मातङ्गा | २६। | १६ | दक्षिणां सुतवधूं गतो | ७। | ५८ |
| तावद्गुणगणकलित | १५। | १२३ | दग्धा सा बकुलावली | ८२। | ५४ |
| तावद्दीपय दीपममुं | १०५। | १०१ | दंतन्यास्त्वं तमः कंस | ५२। | १५ |
| तावन्नीतिपरा | १९। | १६१ | दत्स्व वितरणं शंसूः | ५०। | ९ |
| तावन्माता पिता चैव | १५। | १२० | ददं भन्दवदं सकृद्गुरुं | ५३। | १९ |
| तावन्मौनेन नीयन्ते | ६६। | ११५ | दद साधो जरामाज | ५३। | १७ |
| तावत्सप्तसमुद्रमुद्रित | १३। | १०२ | ददशेऽपि भास्वररुचाहि | १२। | १०१ |
| तिग्मांशोः किरणैरतीव | १४९। | ६४ | दद्यान्मे तत्त्वविज्ञान | ५४। | २० |
| तीव्रो निदाघसमयो | १११। | ३८ | दनुजार्यर्च्यं मा देयाः | ५०। | ६ |
| तुच्छं पत्रफलं कषाय | १३४। | २०८ | दन्ततर्जितसत्सून | ५०। | ७ |
| तुल्यं भूमृति जन्म | १५। | ८७ | दन्तावलग सद्दशेश्वर | ५१। | ११ |
| तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः | ६६। | ११६ | दन्ताः सप्तचलं | ४४। | ५० |
| तृणानि नोल्मूलयति | १०६। | ११२ | दन्ते न्यस्तकरः प्रलम्बित | ३३। | ७२ |
| तृतीयेऽथ परिच्छेदे | ५४। | २२ | दमवंस्त्वं गतव्याज | ४९। | ५ |
| तृषं धरायाः शमयत्यशेषां | ९७। | ४० | दमीश त्वां सुधीराह | ५२। | १४ |
| तृषार्ते पाथोद प्रलपति | १८। | १५५ | दम्भोलिगंदशैलेऽकं | ५१। | १३ |
| तृषार्तेः सारङ्गैः | १५२। | ८८ | दयवन्भगवन्भावि | ४९। | ४ |
| ते सज्जनाः किल | २। | १८ | दयोदय दयोन्माद | ५०। | ८ |
| त्यक्तं जन्मवनं | ३९। | १३ | दर्भाग्रप्रतिमं देवं | ५१। | १२ |
| त्यज कुसुमित किंशुका- | १३३। | २०४ | दह पापं विशां ध्येय | ५३। | १८ |
| त्यज निजगुणाभिरामं | ८९। | ३७ | दात्यूहाः सरसं रसन्तु | ६५। | १११ |
| त्रयस्त्रिंशत्कोटित्रिदश | १०४। | ९७ | दानार्थिनो मधुकरा | ३४। | ७७ |
| त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं | ११। | ९५ | | | |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|---------------------------|-----------|--------------------------------|-----------|
| दानार्थिनो मधुकरा | ८१। ४५ | दौर्जन्यमात्मनि परं | १२९। १६८ |
| दामोदरमुदराहित | १४३। १६ | यामारोहति वाञ्छति | ९८। ४५ |
| दासेरकस्य दासीयं | १२८। १६१ | हुततरमितो गच्छ | ३८। १० |
| दासेरको रसत्येष | ४३। ४२ | द्वात्रिंशद्दशनद्वेषि | १४५। ३५ |
| दिनकरतापव्याप | ११। ९२ | द्विजपतिदयितां तां | ७९। ३३ |
| दिनमवसितं विश्रान्ताः | १०४। ९४ | द्वितीया द्विजराजोक्ती | ४। ३२ |
| दिनान्ते चक्रवाकेन | ७१। १५१ | द्वितीयेऽथ परिच्छेदे | २५। ४ |
| दीनोन्नतचलपक्षतया | ७२। १६२ | धत्तूरधूर्ततरुणेन्दु | १३९। २४४ |
| दीपो वातभयानीतः | १०५। १०० | धनिनि जने चटु पटुतां | १४४। २८ |
| दग्धेन सिक्तो निम्बो | १३२। १९१ | धन्यासि केतकिलते | १२७। १५५ |
| दुर्गानदीशिथिल | १४७। ५४ | धन्या सूक्ष्मफला अपि | १३१। १८४ |
| दुर्दैवप्रभवप्रभञ्जन | १०५। १०४ | धन्यास्त एव देवार्थं | १०८। ६ |
| दुश्चरितैरेव निजैः | ४६। ६३ | धर्मः सनातनो यस्य | १५। १२६ |
| दुष्टं वकोटनिकरोऽपि | ५६। ३७ | धवलयति समग्रं | ११। ९० |
| दुष्प्रापमम्बु पवनः | ४३। ४१ | धाराधर धरामेनां | १८। १४७ |
| दूरं नीरं तदपि विरसं | २०। १६७ | धिकनकं तव कनकगिरे | ८६। १३ |
| दूरादुज्झति चम्पकं | ८२। ५५ | धिकापि प्रलयानलै | ८०। ४१ |
| दूरादेत्य तवान्तरे | १२३। १२७ | धिक्चेष्टितानि परशो- | ११६। ७१ |
| दूरान्मार्गे ग्लपितवपुषो | ९६। ३५ | धिक् तव शुक्र पठन | ६०। ६६ |
| दूर्वाङ्कुरतृणाहारा | ३७। २ | धिग्वारिदं परिहतान्य | ७४। १७९ |
| दृढतरगलकनिबन्धः | १४९। ६६ | धिष्ण्यानि रे किमनुजो | ६। ४८ |
| दृष्टे सति प्रविलसत् | १२१। ११० | धीरध्वनिभिरलं ते | २६। १५ |
| देव त्वं सपदं धीर | ९३। ५ | धूमः पयोधरपदं | १०६। १०८ |
| देवाः पूर्वपरिच्छेदे | ३। २६ | धूलीमूलपदार्थसार्थ | ९२। ५७ |
| देवो हरिर्वहतु वक्षसि | ५। ४३ | ध्वान्तं ध्वस्तं समस्तं | ७। ५४ |
| देशत्यागं बहितापं | १३७। २३२ | न क्रोकिलानामिव मञ्जु | ६१। ७९ |
| दैवादस्तं गते सूर्ये | १०५। ९९ | नक्षत्राणि बहूनि सन्ति | १०। ८२ |
| दैवाद्यद्यपि तुल्यो | ७। ६१ | न गृह्णाति प्रासं | ३४। ७४ |
| दैवेन प्रमुणा स्वयं जगति | ७३। १७० | न च गन्धवहेन चुम्बिता | १२३। २० |
| दोषाकरे समुदिते | १२३। १२३ | न चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया | ११। ९१ |
| दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि | ८। ७४ | न चरसि गजराजः | ३४। ७३ |
| दोषैरदुष्टां सगुणैरिष्टां | ३। २४ | न तादृक्पूर्वे न च मलयजे | ११९। ९६ |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|------------------------|------|-------|---------------------------|------|-------|
| नदीकूलान्भित्त्वा | ३५। | ८४ | नित्यनम्र सुपर्वेश | ९३। | ६ |
| नद्याश्रयस्थितिरियं | १५१। | ८५ | निदाघे दाघार्तः | ३७। | ९६ |
| नद्यो नीचतरा दुराप | ५७। | ४५ | निद्रामुद्रितलोचनो | ३०। | ४६ |
| न ध्वानं कुरुषे | ४४। | ५२ | निमग्नः पङ्केऽस्मिन् | ३३। | ६७ |
| न भवति मिथुनानां | ४२। | ३२ | निमीलनाय पद्मानां | ५। | ४१ |
| नभसि निरवलम्बे | २२। | १८६ | निम्रं गच्छति निम्रगेव | १६। | १२८ |
| नमाम्यहं महावीरं | १४२। | ४ | निम्ब किं बहुनोक्तेन | १३२। | १९३ |
| न म्लापितान्यखिल | ११। | १०० | निरर्थकं जन्म गतं | ११। | ९३ |
| नयनमसि जनार्दनस्य | ८। | ७१ | निराचष्टे यष्टिं कुरवकतरो | ८३। | ६५ |
| न यत्र गुणवत्पात्र | १४८। | ६१ | निरानन्दः कौन्दे मधुनि | ८३। | ६६ |
| न लिखसि खुरैः क्षोणी | ४५। | ५८ | निर्गन्धं कुसुमं फलं | १३२। | १८९ |
| न विना मधुमासेन | ६३। | ९२ | निर्गुणोऽपि वरं वंशो | १५०। | ७२ |
| न श्वेतांशुवदन्धकार | ९१। | ४७ | निक्षेप्योष्णजले त्वचं | १३८। | २४० |
| नागवल्लीदलान्योक्तिः | १०९। | २१ | निषेव्य सरितां वपुः | ९५। | २१ |
| नाधन्यानां निवासं | ८६। | १२ | निष्कन्दा मरविन्दिनी- | १५२। | ९६ |
| नाभिषेको न संस्कारः | २७। | २४ | निष्पेषोत्थमहाव्यथापर | १३८। | २३९ |
| नाभूवन्भुवि यस्य | ३३। | ६५ | नीता कुम्भस्थलकठिनतां | ३१। | ५७ |
| नाभ्यासो नभसः क्रमे | २७। | १९ | नीरसान्यपि रोचन्ते | १३८। | २३७ |
| नारङ्गिकुसुमकण्टो | १३६। | २२३ | नीवारप्रसवान्नमुष्टि | ३१। | ५४ |
| नारिकेल्युक्तयश्चापि | १०९। | १३ | नीहाराकरसारसागर | २०। | १६३ |
| नार्ध्यन्ति रत्नानि | ८९। | ३४ | नैताः स्वयमुपभोक्ष्यसि | २४। | १९३ |
| नालस्यप्रसरो जडेष्वापि | १२४। | १३० | नैतास्ता मलयेन्द्र | ३८। | ५ |
| नालस्यप्रसरो जडेष्वापि | १६। | १२९ | नैषा वेगं मृदुतरतनुः | १४६। | ४६ |
| नालेनैव स्थित्वा | ६१। | ७४ | नो चारु चरणौ न | ६८। | १३१ |
| नालेरीह सरिच्छ | १२८। | १६५ | नो मन्ये दृढबन्धनात् | ३५। | ८३ |
| नावज्ञया न वैदग्ध्यात् | ९४। | १६ | नो मल्लीमयमीहते | ७९। | ३४ |
| नास्य भारग्रहे शक्तिः | ४४। | ४५ | नौ च दुर्जनजिह्वा च | १४७। | ५३ |
| नास्योच्छ्रायवती तनुः | २८। | २६ | न्यग्रोधान्योक्तयस्तद्वत् | १०९। | १४ |
| निखिलनाकिनिकाय | ७६। | ४ | न्यग्रोधे फलशालिनि | १२९। | १७२ |
| निगदितुं विधिनापि | १४४। | २३ | न्याय्यं यत्तमसः समूल | ७। | ५९ |
| निजकरनिकरसमृद्धा | ११। | ९८ | पइमुक्ताहविवरतरु | ११४। | ५९ |
| निजकर्मकरणदक्षा | १४५। | ३६ | पक्वं चूतफलं भुक्त्वा | ६३। | ९० |

| | | | |
|------------------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
| पक्षौ तावदतीन्द्रधाम | ५८ । ४८ | पान्थाधार इति द्विजाश्रय | ११३ । ५२ |
| पङ्कजजलेषु वासः | १२३ । १२४ | पायं पायं पिब पिब पयः | १४२ । ११ |
| पङ्कममकरिणा न | ३३ । ६६ | पिच्छसही तुम्बणिषा | १४१ । २५५ |
| पटु रटति पलितदूतो | १४५ । ३० | पिता रत्नाकरो यस्य | ७७ । १८ |
| पतितानां संसर्गं त्यजन्ति | १४६ । ४३ | पिब पयः प्रसर | ४६ । ६१ |
| पत्तावरिओ बहुसहसाहिओ | १४१ । २५७ | पीउण पाणिअं सरवरम्मि | ७० । १४४ |
| पत्युर्यत्पतितावशेष | ३६ । ८९ | पीतः पीतपयोधिना | ९ । ८१ |
| पत्रपुष्पफलच्छाया | ११२ । ४३ | पीतं यत्र हिमं पयः | ३२ । ६२ |
| पत्राणि कण्टकशतैः | १२६ । १५३ | पीतं येन पुरा पुरन्दर | ५८ । ५१ |
| पत्रं न चित्रमपि निम्न- | १३५ । २१८ | पीयूषं वपुषोऽस्य | ११ । ८९ |
| पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा | ६६ । १२१ | पीलूनां फलवत्कषाय | ४२ । ४० |
| पथि परिहृतं कैश्चिद्दृष्ट्वा | ९० । ४४ | पूर्वाह्नि प्रतिबोध्य | ७ । ५५ |
| पदं तदिह नास्ति यत्र | १३३ । १९८ | पृच्छे कः पुरुषः सभोग | १४६ । ४१ |
| पद्मे मूढजने ददासि | १४ । ११६ | पृथिवीकायिका जीवा | ४ । २८ |
| पद्मं पद्मा परित्यज्य | १५ । १२४ | पौरस्त्यैर्दाक्षिणाल्यैः | ९० । ४२ |
| परज्योतिःस्वरूपाय | १०८ । १० | प्रकाशाम्भोधरान्योक्ति | ४ । ३४ |
| परभृतशिशो मौनं | ६५ । १०८ | प्रकुर्वता संगति | ८ । ७३ |
| परमो मरुत्सखाग्नेः | १०७ । ११४ | प्रतिद्वारक्रमं चञ्चत् | ८६ । ८ |
| परवित्तव्ययं दृष्ट्वा | १३७ । २२६ | प्रतिवेशी हंसजनः | ८१ । ४६ |
| परविषयाक्रमणकला | ८ । ६८ | प्रत्यग्रैः पुष्पनिचयैः | ११२ । ४१ |
| परार्थे यः पीडामनु | १३० । १८२ | प्रत्यङ्गणं प्रतितरं | ६७ । १२३ |
| परिमलगुणेन केतकि | १३१ । १८५ | प्रथममरुणच्छायः | ९ । ७९ |
| परिमलसुरभितनभसो | २४ । २०० | प्रथमवयसि पीतं | १२८ । १६३ |
| परिसेसिअ हंसउलं | ५९ । ६२ | प्रसारितकरे मित्रे | १२४ । १३२ |
| परिहीने सिंहेन | ४१ । २६ | प्राचीभागे सरागे | ११ । ९७ |
| पलितानि शशाङ्करोचि- | १४५ । ३१ | प्राणास्त्वमेव जगतः | १०७ । ११५ |
| पाटल्या वनमध्ये | १२३ । १२१ | प्रावृषेण्यस्य मालिन्य | १७ । १४४ |
| पातालं वसति परिच्छद | ९९ । ५३ | प्रियायां खैरायां | ३९ । ११ |
| पातः पूष्णो भवति | ६ । ५१ | फलं दूरतरेऽप्यास्तां | १३५ । २१५ |
| पादन्यासं क्षितिधरसुरो | ११ । ८८ | फुल्लेषु यः कमलिनी | ८० । ३९ |
| पादाघातविघूर्णिता | ३४ । ७५ | बक चटु तपसे त्वं | ७५ । १८५ |
| पादेनापहृता येन | ८२ । ६० | बकेऽपि हंसेऽपि च | ६१ । ७७ |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|---------------------------|------|-------|---------------------------|------|-------|
| बकोट ब्रूमस्त्वां लघुनि | ६१। | ७८ | अष्टं जन्मभुवस्ततोऽम्बुधि | ११६। | ७५ |
| बद्धस्त्वं ननु राघवेण | ९६। | ३१ | अष्टं नृपतिकिरीटात् | ८९। | ३५ |
| बन्धनस्थो हि मातङ्गः | १५२। | ९२ | आतः काञ्चनलेपगो | १४८। | ६० |
| बाला तन्वी मृदुतरतनुः | ८०। | ३७ | आतप्राम्यकुविन्द कन्द | १४७। | ५१ |
| बालाया नवसंगमे | २७। | २१ | आतश्चातक कथय सखे | ७२। | १६० |
| बाले तव कुचावेतौ | १४४। | २२ | आतः कस्त्वं तमाकू | १३८। | २३५ |
| विभ्राणे त्वयि भस्म | १३। | १०४ | आतः कीर कठोर | ६०। | ७१ |
| बीजैरङ्कुरितं जटाभिरुदितं | ७३। | १६९ | आतः कोकिल कूजितेन | ६५। | ११२ |
| भग्नो सूरपयावो | २१। | १७३ | आतः कोकिल सर्वमेत- | ६५। | ११० |
| भजध्वमेनं भो भव्याः | १०८। | ३ | आतश्चन्दन किं ब्रवीमि | ११५। | ६८ |
| भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोः | ३६। | ८७ | आतः पञ्जरलावक | १५२। | ८९ |
| भद्राय मम वामेय | ९३। | ३ | आम्यद्रुङ्ग मदावनम्र | ११२। | ४८ |
| भद्रं मम महावीर | ८५। | ४ | मञ्जरिभिः पिकनिकरं | ११८। | ९० |
| भरिऊण जलं जलया | २१। | १७२ | मञ्जुमुक्ताफलान्योक्तिः | ८६। | ११ |
| भवति हृदयहारी कोऽपि | १२६। | १४८ | मणिर्छठति पादाग्रे | ८९। | ३२ |
| भव वारानिधौ कुम्भ | १०८। | ४ | मत्तेभकुम्भनिर्भेद | २६। | १० |
| भाषासु भाषां मे दद्यात् | २। | ११ | मत्वात्मनो बन्धनिबन्धनानि | १६। | १२७ |
| भीमश्यामप्रतनुवदन | १०४। | ९५ | मथितो लङ्घितो बद्धः | ९५। | २५ |
| भीष्मग्रीष्मखरांशुतापम- | ११०। | ३० | मदनमवलोक्य निष्फल | ८०। | ३८ |
| भुक्तानि यैस्तव फलानि | ११३। | ४९ | मधुकरगणश्रूतं | ८१। | ४९ |
| भुक्तं खादुफलं कृतं च | ११२। | ४५ | मधुकर तव करनिकरैः | ७९। | २६ |
| भूयः प्रयासपरिलभ्य | १०४। | ९६ | मधुकर मा कुरु शोकं | ८२। | ५२ |
| भूयो गर्जितमम्बुद | २४। | १९२ | मधुसमयादतिपल्लवितः | ११८। | ९१ |
| भूर्जः परोपकृ- | १३९। | २४२ | मन्ये मत्कुणशङ्कया | ७८। | २० |
| मृत्नाङ्गनाजनमनोहर | ५५। | ३१ | मयूर तव माधुर्यं | ६९। | १३६ |
| भेकेन कणता सरोषपरुषं | ४७। | ६७ | मरौ नास्त्येव सलिलं | १४२। | १० |
| भेकैः कोटरशायिभिः | २३। | १८८ | मलओस चन्दणचि | ११७। | ७७ |
| भो भोः करीन्द्र दिवसानि | ३३। | ७० | मलयस्य महागिरे | १०१। | ७६ |
| भो भो किमकाण्ड एव | १४२। | १२ | मलोत्सर्गं गजेन्द्रस्य | १५२। | ९० |
| भो लोकाः सुकृतोद्यता | ६८। | १३४ | महातरुर्वा भवति | १२९। | १७४ |
| भो लोका मम दूषणं | १५। | ११८ | महितो सरंहि पीओ | १००। | ६६ |
| भ्रमन्वनान्ते नवमञ्जरीषु | ७९। | ३० | महेशस्त्रां धत्ते शिरसि | १३९। | २४५ |
| भ्रमर भ्रमता दिगन्तराणि | ७९। | ३१ | मा कलकण्ठकलध्वनि | ६४। | १०५ |

| पृ. श्लो. | पृ. श्लो. |
|------------------------------|-----------|
| मा कुप्य मग्गपायव | ११४। ५८ |
| मा गर्वसुद्वह विमूढ | १३६। २०७ |
| मा गा विषादमलिपोतक | ८४। ६८ |
| माणसविणा सुहाइ | ५९। ६१ |
| माणिक्याकर पारिजात | १०१। ७१ |
| मातङ्गाः किमु वलितैः | २८। २९ |
| मातङ्गानां मदान्धभ्रम | ३५। ८६ |
| मातङ्गेन मदावलिप्त | १०३। ८६ |
| मायद्दिग्गजदानलिप्त | १०३। ८६ |
| मामभ्युन्नतमागतोऽयमिति | १९। १५६ |
| मा मालति म्लायसि यद्य | १२६। १४७ |
| मार्गे कर्दमदुर्गमे | ४४। ४९ |
| मार्गे भूरि मरुर्जलं | २१। १६८ |
| मार्गे विहाय गिरिकन्दर | १११। ३९ |
| मालतीमुकुले भाति | ८४। ७४ |
| मालत्युक्तिर्बालकोक्तिः | १०९। १२ |
| मालिन्यं भुवनातिशायि | ६५। १०९ |
| मित्रे कापि गते सरोरुह- | ७०। १४७ |
| मीलितेक्षणमिव | ३६। ९२ |
| मुखे यद्वैरस्यं वपुरपि | १३१। १८३ |
| मुञ्च मुञ्च सलिलं | २३। १८५ |
| मुत्तूण पत्तनिपरं जडाण | १२६। १५० |
| मुरारातिर्लक्ष्मीं त्रिपुर- | ८७। १५ |
| मूकीभूय तमेव कोकिल | ६३। ९९ |
| मूर्तिर्नैव रसायनं | १२२। ११४ |
| मूलदेव यदस्य विस्तृ- | १३०। १७९ |
| मूलं भुजङ्गैः शिखरं विहङ्गैः | ११६। ७४ |
| मूलं योगिभिरुद्धृतं | ११२। ४७ |
| मृगानिजक्षुद्रतया | ३६। ९१ |
| मृगेन्द्रं वा मृगारिं वा | २५। ९ |
| मृगैर्नष्टं शरैर्लीनं | २६। १२ |
| मृदूनां स्वादूनां लघुरपि | ११५। ६२ |
| मैव मंस्थाः स्थितिपदमदं | ५८। ५४ |
| मौलिः खर्णकिरीटकान्ति | १४८। ५६ |
| मौलौ सन्मणयो गृहं गिरि- | ४६। ६६ |
| म्रदीयस्त्वाधिक्यान्न | १२६। १४६ |
| यच्छञ्जलमपि जलदो | ५। ३९ |
| यज्जातोऽसि पयोनिधौ | १०। ९६ |
| यत्त्वद्भजितमूर्जितं | १८। १५४ |
| यन्नादपि कः पश्येत् | ७०। १४३ |
| यत्पादाः शिरसा | ६। ५३ |
| यत्पार्श्वदेवः समभीप्सितानि | १। ५ |
| यत्पूर्वं पवनाग्निशस्त्र | १४६। ४० |
| यत्प्रोन्मत्तमतङ्गाज्ज | ८०। ४२ |
| यत्रापि तत्रापि गता भवन्ति | ५९। ५५ |
| यत्सद्गुणोऽपि सरलोऽपि | १४९। ७० |
| यथा भग्नः पन्था | ४५। ५३ |
| यथा यथा स्यात्स्तनयोः | १४४। २१ |
| यथेष्टं चेष्टध्वं | २८। ३० |
| यदपि किल वसन्ते | ११९। ९७ |
| यदपि जन्म बभूव | ९। ७५ |
| यदमी दशन्ति दशना | १४५। ३२ |
| यदास्ति पात्रं न तदास्ति | १३०। १७८ |
| यदि काको गजेन्द्रस्य | ३७। ९८ |
| यदि तारकततिरपरिमिता | २४। १९७ |
| यदिन्दोरन्वेति व्यसन | ९। ८० |
| यदि नाम दैवगत्या | ५५। २९ |
| यदि नाम सर्षपकणं | ३७। ९७ |
| यदि मत्तोऽसि मतङ्गज | ३६। ९० |
| यदि यदि सन्ति कथं | १८। १५१ |
| यदेतत्कामिन्या सुरत | १४५। ३९ |
| यदेतन्नेत्राम्भः पतदपि | १४४। २७ |
| यद्यपि च दैवयोगात् | ३०। ४७ |
| यद्यपि चन्दनविटपी | ११६। ७० |
| यद्यपि दिशि दिशि तरवः | ११८। ९ |
| यद्यपि न भवति हानिः | १२७। १६० |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|--------------------------|------|-------|---------------------------|------|-------|
| यद्यपि निशि दिशि | १०२। | ७९ | ये जात्या लघवः सदैव | १०६। | ११३ |
| यद्यपि बद्धः शैलैः | ९५। | २६ | येनानन्दमये वसन्त | ६४। | १०० |
| यद्यपि रटति सरोषं | ३०। | ४८ | येनानर्गलकालकेलि | २९। | ३५ |
| यद्यपि वसति करीर | १३५। | २१७ | येनामोदिनि पङ्कजस्य | ८३। | ६२ |
| यद्यपि शिरोऽधिरोहति | ८। | ६६ | येनास्यभ्युदितेन | १०। | ८४ |
| यद्यपि स्वच्छभावेन | ९५। | २७ | येनोदितेन कमलानि | ७। | ५६ |
| यद्यप्याम्रतरोरमुष्य | ८१। | ४८ | येनोन्मथ्य तमांसि | ६। | ५० |
| यद्यस्ति व्याख्यानसमाज | ३। | २३ | येनोषितं रुचिरपल्लव | ६६। | ११४ |
| यद्वीचीभिः स्पृशसि गगनं | ९७। | ४२ | ये पूर्वं परिपालिताः | ११३। | १४ |
| यन्नादृतस्त्वमलिना | ११७। | ८२ | येऽमी ते मुकुलोद्गमा | ११९। | ९५ |
| यन्माता विष्णुनाभिः | १२४। | १३१ | ये वर्धिताः कनकपङ्कज | ५८। | ५३ |
| यन्मुक्तामणयोऽम्बुधे | ९१। | ५१ | ये वर्धिताः करिकपोल | ८२। | ५७ |
| यस्मादर्धजो मनो | १३२। | १९४ | ये संतोषसुखप्रबुद्धमनसः | ८७। | १४ |
| यस्मिन्नुच्चैर्विषम | ४१। | २९ | यो दिव्याम्बुजवृन्दमत्त | ५६। | ३८ |
| यस्मै ददाति विवरं | ४६। | ६२ | यो दृष्टः स्फुटदस्थि | १२०। | १०० |
| यस्य दृष्टिसुधावृष्टि | ९३। | २ | यो भृङ्गानां क्लिश्यतां | ५। | ४४ |
| यस्य वज्रमणेर्भेदे | ८८। | २६ | योऽयं वारिधरो धरा | ७४। | १७५ |
| यस्याः संगमवाञ्छया | ८१। | ५० | यः कृष्णं कुरुते मुखं | ७४। | १७८ |
| यस्यां स केसरियुवा | १५२। | ९५ | यः परप्रीतिमाधातुं | १२२। | ११८ |
| यस्याकर्ण्य वचःसुधां | ६४। | १०३ | यः पार्श्वशम्भुर्जयसौख्य | १। | ६ |
| यस्यादौ व्रजमण्डलस्य | ४५। | ५६ | यः पीयूषसहोदरैः स्नपय | १४३। | १७ |
| यस्या महत्त्वभाजो | १०५। | १०२ | यः शौर्यावधिरेव | ३०। | ४५ |
| यस्याम्बुकणमादाय | १८। | १४५ | यः संतापमपाकरोति | ५७। | ४२ |
| यस्यावन्ध्यरुषः प्रताप- | ३०। | ४४ | रज्ज्वा दिशः प्रवितताः | ३९। | १२ |
| यस्यासीन्नवपीलुपत्र | ४२। | ३८ | रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि | ११४। | ६१ |
| यस्योत्तमाङ्गके सप्त | १। | २ | रक्ताब्जपुञ्जरजसारुणितान् | ७३। | १७१ |
| यातु यातु किमनेन | ८२। | ५१ | रक्तेन च विरक्तेन | १३३। | २०३ |
| या पाणिग्रहलालिता | १५०। | ७५ | रक्षापात्रगतं स्नेहं | १४९। | ६३ |
| यावत्फलोदयमुखः | १२०। | १०५ | रत्नाकरस्तव पिता | १३। | १०७ |
| या स्वसद्मनि पद्मेऽपि | १५। | १२७ | रत्नानां न किमालयो | ८८। | २४ |
| युक्तोऽसि भुवनभारे | ४०। | ६९ | रत्नानि रत्नाकरमाव- | ९८। | ४८ |
| यूथान्यग्रेतनानि | ३३। | ६९ | रत्नैरापूरितस्यापि | ९४। | १७ |
| ये गृह्णन्ति हठात्तृणानि | ९०। | ४३ | रमियाण पन्थियाणय | ६९। | १३५ |

| पृ. श्लो. | पृ. श्लो. |
|--------------------------|-----------|
| रयणाय रती रट्टियाण | १०० । ६२ |
| रयणायस्स न हुया | १०० । ६१ |
| रयणेहि निरंतर | १०१ । ७० |
| रवेरस्तं तेजः समुदयति | १२५ । १४२ |
| रवेरेवोदयः श्लाघ्यः | ४ । ३६ |
| रसालशिखरासीनाः | ६२ । ९३ |
| रागो हि दोषपोषाय | १३७ । २३३ |
| रात्रिर्गमिष्यति भवि- | १४७ । ४८ |
| रुचिमानुडुपरिवार | ८ । ७० |
| रुद्राङ्गं छगणानि पङ्कज- | १०५ । ९८ |
| रुक्मा स्वपल्लवव्यौम | ९२९ । १७३ |
| रुक्षं वपुर्न च विलो | ४२ । ३३ |
| रुक्षस्यामधुरस्य | ६७ । १२२ |
| रुढस्य सिन्धुतटमुपगतस्य | १४० । २५१ |
| रूपसौरभसमृद्धिसमेते | ११७ । ८१ |
| रे कण्टकैर्निशित | १३६ । २२२ |
| रे कारेऽल्लिहयासेचडिया | १४१ । २५६ |
| रे कीर कैतव सुगीरिति | ६४ । १०७ |
| रे पक्षिन्नागतस्त्वं | ४८ । ७७ |
| रे पद्माकर यावदस्ति | १०३ । ८८ |
| रे पद्मिनीजरुहस्तव | १२५ । १३९ |
| रे पद्मिनीदल तवात्र | १२४ । १३८ |
| रे बालकोकिलकरीर | ६४ । १०६ |
| रे भ्रमरहितं- | १२५ । १४१ |
| रे माकन्दमरन्दसुन्दर- | १२१ । १०६ |
| रे मातङ्ग मदाम्बुडम्बर- | ३ । ४३ |
| रे रङ्ग हेमकलया | ९२ । ५६ |
| रे राजहंस किमिति | ५६ । ३६ |
| रे रे काक वराक- | ६८ । १३० |
| रे रे कोकिल मा भज | ६२ । ९५ |
| रे रे चातक सावधान- | ७२ । १६४ |
| रे रे भेक गलद्विवेक | ४८ । ७५ |
| रे रे सर्प विमुञ्च | ४६ । ६५ |
| रे रे शिष्टबकोट | ६२ । ८३ |
| रे लाङ्गलिकनिषया | १४७ । ५२ |
| रेवापयःकिसलयानि | ३३ । ७१ |
| रेवावारिणि वारणेन | ३२ । ६३ |
| रोमन्थमारचय | ४० । २४ |
| रोलम्बस्य चिराय | १२६ । १५२ |
| रोलम्बैर्न विलम्बितं | ११२ । ४२ |
| रोहणाचलशैलेषु | ८९ । २३ |
| लक्ष्मि त्वत्करुणाकटाक्ष | १४ । १०९ |
| लक्ष्मि क्षमस्व वचनीय | १४ । ११० |
| लक्ष्मीः सर्पति नीच | १९ । १३१ |
| लक्ष्मीरात्मगृहोद्भवेति | १६ । १३३ |
| लक्ष्मीर्यादोनिधेर्यादो | १४ । ११३ |
| लक्ष्मीसंपर्कजाताय | ११४ । १३३ |
| लक्ष्म्यास्त्वं निलयो | १०० । ५८ |
| लच्छी धूया जा- | १०० । ५९ |
| लब्धं जन्म सह श्रिया | १० । ८७ |
| लहुओ विहु सेविज्ज | १२७ । १५९ |
| लाङ्गूलचालनमधः | ३७ । ९५ |
| लाटीतरोरनुपकारि | १२७ । १५८ |
| वक्रग्रीवमुदीक्षसे | ४२ । ३४ |
| वक्रां नैष तनूविवर्तन | १४८ । ५९ |
| वडविडवि किं न लज्जसि | १२० । १७६ |
| वणिगधिपते किञ्चि- | ९० । ४५ |
| वने वने सन्ति वनेचरा | ११० । २८ |
| वन्दामहे मलयमेव | ८८ । २० |
| वन्यो हस्ती स्फटिकघटिते | ३१ । ५६ |
| वपुःपरीणाहगुणेन | ८९ । ३० |
| वपुर्विषमसंस्थानं | ४१ । २७ |
| वयं स्मरामस्त्रिशला | ८६ । ५ |
| वरतरुविघटनपटवः | १०६ । ११० |

SGDF

Gargacharya Foundation

| पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. | |
|---------------------------|-----------|-----------------------------|-----------|
| वरमश्रीकता लोके | १२३ । १२६ | विस्तीर्णो दीर्घशाखाश्रित | १२९ । १७१ |
| वरं करीरो मरुमार्गवर्ती | १३६ । २२० | वीवाहादौ प्ररोहस्तव | १३७ । २२७ |
| वर्त्मनि वर्त्मनि तरवः | १०९ । २३ | वृक्षान्दोलनमय ते | १५३ । ९८ |
| वर्धितैः सेवितैः किं तैः | १२९ । १७० | वृद्धिर्यस्य तरो मनोरथ | ११४ । ५५ |
| वर्थतुर्यपरिच्छेदे | ७६ । ७ | वृषभान्योक्तयस्तद्वत् | २५ । ६ |
| वल्लीनां कति न स्फुरन्ति | १४० । २५२ | वेगज्वलद्विटपपुञ्ज | ६९ । १३९ |
| वसिरुण सगलोए | ८५ । ७९ | वेदमानि च्छादययजलघ | १४० । २४७ |
| वसन्त्यरण्येषु चरन्ति | ४० । २० | वंशः प्रांशुरसौ घुणक्षत | १४८ । ५५ |
| वहसि बलिभुजां कुलानि । | १२१ । १११ | व्यजनैरातपत्रैश्च | ७५ । १८६ |
| वाचंयमेश शं देहि | ८५ । ३ | व्यज्यमानकलङ्कस्य | ८ । ६५ |
| वातान्दोलितपङ्कज | ५५ । ३४ | शक्रादरक्षि यदि | ८७ । १७ |
| वापीतोयं तटस्वनं | ७० । १४८ | शङ्खान्योक्तिर्मत्कुणोक्तिः | ७६ । ८ |
| वारांराशिरसौ प्रसूय | १४ । १०८ | शङ्खाः सन्ति सहस्रशो | ७७ । १६ |
| वासः शैलशिखान्तरेषु | ११६ । ७२ | शतगुणपरिपाट्या | ७१ । १५० |
| विचक्षणजनश्रेणी | १०८ । ९ | शतपदी शितपादशतैः | १५३ । ९७ |
| विच्छायतां व्रजसि किं | १२२ । ११५ | शत्रुंजयादिसत्तीर्थ | २ । १३ |
| विजयागुणानमूलं | १३८ । २३४ | शफर संहार चञ्चलता | ४७ । ७१ |
| विज्ञातनिःशेषपदार्थ | ४९ । २ | शरदि रविरश्मितप्ता | १०१ । ७३ |
| वितर वारिद वारि | २२ । १८४ | शर्करासर्पिःसंयुक्तं | १३२ । १९२ |
| विदिताखिलसद्वस्तु | १४१ । २ | शशविश्रामिणः सर्वे | ११० । २७ |
| विध्वस्ता मृगपक्षिणो | १०६ । १०६ | शशिदिनकरौ व्योम्नि | ७८ । २१ |
| विन्ध्यमन्दरसुमेरुभूभृतां | ८७ । ६ | शाखाभिर्विततीभवि- | १११ । ३७ |
| विपन्नं पद्मिन्यामृत- | ११३ । ५० | शाखाभिर्हरिता दिशः | १०७ । ११६ |
| विमलतां वचनस्य | ७७ । १२ | शाखाशतचित्तवृत्तयः | १०९ । २४ |
| विरम चातक दैन्यमपास्यतां | ७३ । १६७ | शाखासंततिसंनिरुद्ध | १३७ । २२८ |
| विरम तिमिर साहसाद | ८ । ६१ | शाखोटशाल्मलिपलाश | ११३ । ५१ |
| विरम रत्न मुधा तरलायसे | ८९ । ३७ | शालेयेषु शिलातलेषु | २० । १६२ |
| विलपति मृषा सारङ्गोऽयं | २३ । १८७ | शाल्मल्यन्योक्तयश्चैवं | १०९ । १५ |
| विलोकयन्ति ये स्वामिन् | ९३ । १ | शाल्मल्यपुराशेरधिगम्य | ३ । २२ |
| विशालं शाल्मल्यां नयन | १३१ । १८८ | शिरसा धार्यमाणोऽपि | ८ । ६४ |
| विश्रं वपुः परवध | २८ । ३१ | शिवश्रिये श्रीचरमो | २ । ८ |
| विश्वोपजीवोऽपि | ७५ । १९१ | शुक यत्तव पठन | ५९ । ६५ |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|------------------------------|-------|-------|--------------------------|-------|-------|
| शुद्धप्राग्वटवंशाम्र | ७६ । | ६ | सज्ज्ञानमञ्जुमाणिक्य | १०८ । | ७ |
| शुद्धवंशजकोदण्ड | १५० । | ७३ | सत्पादपान्विपुलपल्लव | १४३ । | १३ |
| शैल्यं नाम गुणस्तवैव | ९४ । | १२ | सत्यं सत्यं सुनेर्वाक्यं | ७२ । | १५७ |
| शैलशिखानिकुञ्जशयितस्य | २९ । | ३४ | सत्साङ्गल्यमवाप्य | ६० । | ७० |
| शोषं गते सरसि | २३ । | १९० | सदा मन्दमन्दस्य | ३० । | ४९ |
| श्यामतया स्थूलतया | ८५ । | ७५ | सद्वृत्त सद्गुणमहर्ष | १४६ । | ४४ |
| श्यामतां वहतु वातु | १८ । | १५२ | सद्वृत्तोऽपि सुपूर्णोऽपि | १४९ । | ६९ |
| श्रमणप्रकरैर्वन्द्य | १०८ । | ५ | सन्त एव सतां नित्य | ३१ । | ५३ |
| श्रियो वासोऽम्भोजे | ८४ । | ६९ | सन्त्यन्यत्रापि वीची | ५८ । | ५२ |
| श्री इन्द्रभूतिं वसुभूतिभूतं | २ । | १२ | सन्त्यन्ये क्षपकेतनस्य | ९१ । | ४९ |
| श्रीगौतमगणाधीश | १४३ । | ७ | सन्त्येव मिलिताकाशा | ११५ । | ६३ |
| श्रीदातारं विश्वाधारं | ८६ । | ६ | समयवशेन यदद्य | ११९ । | ९२ |
| श्रीपरिचयाज्जडा अपि | १५ । | १२२ | समुद्रिरसि वाचः किं | ६२ । | ८७ |
| श्रीमच्चन्दनवृक्ष सन्ति | ११७ । | ७६ | समुद्रस्यापत्यं प्रथित | १७ । | १३५ |
| श्रीमच्छङ्खपुरस्कार | ८५ । | १ | सरलितगलनार्ली | ४१ । | ३१ |
| श्रीमत्तपागच्छ स्वच्छ | ९३ । | ७ | सरसि बहुशस्ताराच्छाया | ५५ । | ३३ |
| श्रीमत्तपागणनभोज्जण | ३ । | २१ | सर्वधर्मोपदेशारं | १४२ । | ६ |
| श्रीवर्धमानः स्तात्सिद्धौ | २ । | ९ | सर्वाशापरिपूरिहुंकृति | ७७ । | १५ |
| श्रीवर्धमान सर्वज्ञ | २ । | १४ | सर्वासामपि नारीणां | १५ । | १२१ |
| श्रीविजयानन्दगुरुं | ८६ । | ७ | सर्वास्तुमन्यः समकटुरसाः | १४१ । | २५४ |
| श्रीसंयुक्तं गुणागारं | १४१ । | ३ | सर्वे वनस्पतिकायाः | ४ । | २९ |
| श्रीसोमसोमविजया | २ । | १७ | सर्वेषामपि वृक्षाणां | १३३ । | २०० |
| श्रुत्वा कुम्भसमुद्भवेन | १४७ । | ४७ | सर्व्वेसि तुमं पावेसि | ५९ । | ६० |
| श्रेयः श्रियं दिशतु | ७६ । | २ | सहकारे चिरं स्थित्वा | ६२ । | ८८ |
| श्रेयः श्रियं वितनुतां | १ । | ७ | सांप्रतं सुखबोधाय | १०८ । | ८ |
| श्रेयः श्रियां विलसन्तो | २५ । | १ | सा तादृक्षन्तुभक्षलक्ष | १२० । | १०२ |
| श्रेयः श्रियामाश्रय | २५ । | २ | साधारणतरुबुद्ध्या | ११७ । | ७८ |
| श्लाघ्यं कर्पासफलं यस्य | १३८ । | २३८ | साधु साधु कृतं मौनं | ६३ । | ९१ |
| श्लाघ्यैव नारिकेर्या | १२८ । | १६४ | सामान्यपादपान्योक्तिः | १०८ । | १० |
| सकललोकन्धकोरनिशाकर | ७६ । | ३ | सामान्यभूधरान्योक्तिः | ८६ । | ९ |
| सक्षारो जलधिः सरांसि | २१ । | १६९ | सामोपायनयप्रपन्न | २८ । | ३२ |
| सगुणैः सेवितोपान्तो | १०४ । | ९२ | | | |

| | पृ. | श्लो. | | पृ. | श्लो. |
|----------------------------|-------|-------|------------------------------|-------|-------|
| सारङ्गो न लतागृहेषु | ४० । | १९ | संतप्तायसि संस्थितस्य | ९४ । | १४ |
| साहीणेसुन रञ्चसि | ८५ । | ७७ | संप्रति न कल्पतरवो | १७ । | १३९ |
| सिंहः करोति विक्रम | २९ । | ३९ | संवर्धितो मधुरमि- | १४५ । | ३३ |
| सिंहः शिशुरपि निपतति | २५ । | ८ | स्तोकाम्भःपरिवर्तित | १०३ । | ८७ |
| सिंहस्यान्योक्तयो ज्ञेया | २५ । | ५ | स्तोष्ये श्रीविजयानन्द | २५ । | ३ |
| सिंहिकासुतसंज्ञस्तः | ४१ । | २५ | स्त्रैणभूषणमणेः कमलायाः | १४ । | ११२ |
| सिक्खेसि गयं सिक्खेसि | ६२ । | ८४ | स्थलीनां दग्धानां | ३८ । | ६ |
| सिद्धयेऽस्तु महावीर | ९३ । | ४ | स्थानं कल्पतरोः सुधा | ९९ । | ५६ |
| सिद्धिधिया किं निहिताः | ७६ । | १ | स्थित्वा क्षणं विततपक्षति | ५५ । | ३२ |
| सिन्धुस्तरङ्गैरुपलाल्य | ९१ । | ४८ | जेहं विमुच्य सहसा खल | १३७ । | २२९ |
| सुखयसि तृषोत्ताम्य- | १९ । | १५७ | स्पर्धन्तां सुखमेव | १५३ । | ९९ |
| सुजन भो सुतरां च | ७६ । | ५ | स्पृशति शीतकरो जघन | १४६ । | ४२ |
| सुदुःस्थितः स्थूल | ३३ । | ६८ | स्फटिकविमलं पीत्वा वापी | ७२ । | १६६ |
| सुधाकरकरस्पर्शात् | ८९ । | २९ | स्फटिकस्य गुणो योऽसौ | ८९ । | २८ |
| सुरतरुकुसुमे मधु | ७९ । | २९ | स्फारकासारसाधूक्तिः | ९३ । | १० |
| सुवर्णवर्णेन वृणीष्व गौरवं | ११७ । | ८३ | स्फुराः स्फटाः सप्त विभान्ति | १ । | ४ |
| सूरिश्रीविजयानन्द | २ । | १६ | स्मरसि सरसि वीची | ५६ । | ४१ |
| सूरीशविजयानन्दपद्मं | ५४ । | २१ | स्रग्दाम मूर्द्धनि निषेहि | १४५ । | ३७ |
| सूरोऽसि परदलभाजणो | ३७ । | १०० | खचित्तकल्पितो गर्वः | ७५ । | १८४ |
| सूर्यस्यान्योक्तयः पूर्वं | ४ । | ३१ | खच्छन्दोच्छलदच्छ- | १०२ । | ८० |
| सेयं स्थली नवतृणाङ्कुर | ४० । | २३ | खच्छन्दं दलय हुमान् | ३६ । | ९३ |
| सेवितं साधु निःस्फारं | १४२ । | ५ | खच्छन्दं मन्दराद्रि | ९९ । | ५१ |
| सोऽपूर्वो रसनाविपर्यय | ८० । | ४३ | खच्छन्दं हरिणेन | ४० । | २२ |
| सोमकान्तो मणिः खच्छः | ८८ । | २७ | खच्छं सज्जनचित्तवत् | ९४ । | १५ |
| सोलकलासंपुण्णो | ११ । | ९९ | खयमफलवान्नेदं छेदं | १३४ । | २१० |
| सो सद्गो धवलत्तणं | ७८ । | १९ | खर्णैः स्कन्धपरिग्रहो | २४ । | १९९ |
| सोसन्न गओगओ | १०० । | ६३ | खल्पन्नायुवसावशेष | ४६ । | ६० |
| सौभाग्यं कुसुमावलीषु | ११७ । | ८० | खस्त्यस्तु विद्रुमवनाय | ९५ । | २८ |
| सौरभ्यगर्भमकरन्द | ११९ । | ९३ | खामोदवासितसमग्र | ८० । | ४० |
| सौवर्णानि सरोजानि | १२३ । | १२२ | हरिभामिनि सिन्धुसंभवे | १४ । | ११४ |
| संकेतं मधुपावलीविरचितं | ११४ । | ५७ | हरमुकुटे सुरतटिनी | ८ । | ६३ |
| संख्येया न भवन्ति | ९७ । | ३९ | हरिरलसविलोचन | २७ । | २७ |

| | पृ. श्लो. | | पृ. श्लो. |
|------------------------------|-----------|-----------------------------|-----------|
| हरेः प्रदत्तापि निजेन पित्रा | १४।१११ | हे हेलोजितबोधिसत्त्व | ९९।५५ |
| हा धिक् परव्यसन | ७३।१७३ | हे हंसास्तावदम्भोरुह | ५६।४० |
| हारीताः सरसं रसन्तु | ६९।१४१ | होहिति खलो मुणिउण | १३७।२३० |
| हा हेम किं न तत्रैव | ९२।५४ | हंस त्वं शरदिन्दुधाम | ५७।४६ |
| हिमसमयो वनवहि- | ११३।५३ | हंसः प्रयाति शनकैः | १४७।४९ |
| हृथा नयः कमलसरसी | २२।१८२ | हंसान्योक्तिः शुकान्योक्तिः | ५४।२३ |
| हे कोकिल क्षपय | ६४।१०४ | हंसाः पद्मवनाशया मधु | १३१।१८६ |
| हे दावानल शैलाग्र | १०५।१०३ | हंसैर्लब्धप्रशंसैः | १०२।८२ |
| हे माणिक्य तवैतदेव | ९०।४० | हंसोसि तुमं सरमण्डणोसि | ५९।५७ |
| हे मेघ मानमहितस्य | १९।१५९ | हंहो दग्ध समीर सर्पति | १०७।११८ |
| हे जिह्वे कटुकलेहे | १४५।३४ | हंहो पान्थ किमाकुलः | १११।३६ |
| हे लक्ष्मि क्षणिके | १५।११७ | हंहो मरुस्थलमहीरुह | १३५।२१९ |
| हेलानिद्वलिय गयन्द | ३०।५० | हंहो शाल्मरवीराः | ४८।७४ |
| हेलोल्लालितकल्लोल | ९५।२० | हंहो हंस महामते | ५८।४९ |

ग्रन्थस्यास्य संप्रहीतुरवस्थितिसमयादि ग्रन्थान्ते ग्रन्थप्रशस्तौ द्रष्टव्यम् ।